गुरु ग्रंथ साहिब वाणी एवं सिद्धान्त

डॉ. जोध सिंह



पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

गुरु ग्रंथ साहिब

वाणी एवं सिद्धान्त

डॉ० जोध सिंह



पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला


श्री गुरु ग्रंथ साहिब अध्ययन विभाग,
पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

GURU GRANTH SAHIB : VANI EVAM SIDDHANT *(Hindi)*

द्वारा

जोध सिंह (डॉ.)
एडीटर-इन-चीफ
इनसाइकलोपीडिया ऑफ सिक्खिज़म
पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

ISBN 81-7380-977-1

2005
कापियाँ : 500
मूल्य : 250.00

लेज़र टाईप-सैटिंग
सन कम्पयूटर सैंटर, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला के सामने

डा. परम बख्शीस सिंह सिद्धु, रजिस्ट्रार, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला द्वारा
प्रकाशित तथा फुलकियाँ प्रिंटिंग प्रैस, पटियाला द्वारा मुद्रित ।

प्राक्कथन

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की विषय वस्तु सम्पूर्ण मानवता के लिए है। गुरु नानक देव जी ने भारत भर में यात्राए करके जब सन्तों भक्तों की वाणियां एकत्र की थीं तो ऐसा करते समय उन्होंने जाति, धर्म और क्षेत्र का तनिक मात्र भी ख्याल नहीं किया। उन्होंने वाणियों के चयन में केवल एक तथ्य ध्यान में रक्खा कि सन्तों की वाणियां धर्म के वास्तविक स्वरूप को जनसाधारण को समझाने वाली हो और सर्वसाधारण को व्यर्थ के कर्मकाण्डों में उलझाने वाली न हों। वे वाणियां दूसरे, तीसरे और चौथे गुरु साहिबान के माध्यम से पाँचवें गुरु अरजनदेव जी तक पहुँची जिन्होंने चार सौ वर्ष पहले (गुरु) ग्रंथ साहिब का संकलन-सम्पादन किया जिसे प्रारम्भ में 'पोथी साहिब' भी कहा जाता था। बाद में गुरु गोबिन्द सिंह जी ने नौवें गुरु तेग बहादुर जी की वाणियों को भी इसमें अंकित किया और सन् १७०८ ई. में परम ज्योति में विलीन होने से पहले गुरु परम्परा को एक नया रूप देकर ग्रंथ को ही अर्थात 'शब्द' को ही गुरु का रूप मानने का आदेश सिक्खों को दिया।

गुरु ग्रंथ साहिब के सभी ३६ वाणीकारों की महान रचनाएं आध्यात्मिकता से सराबोर तो हैं ही साथ ही साथ वे सब सामान्य जीवन को समाज और देश के लिए और अधिक उपयोगी होने का संदेश भी देती है। गुरु ग्रंथ साहिब के पहले 'प्रकाश' के चार सौवें वर्ष के सन्दर्भ में गुरुवाणी के संदेश को लोगों तक पहुंचाने के लिए इस विश्वविद्यालय ने कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सैमीनार पिछले वर्ष से लेकर अब तक आयोजित किए हैं जिनमें भाग लेने वाले विद्वानों ने गुरु ग्रंथ साहिब के विभिन्न आयामों पर विशद चर्चाएं की हैं। चार सौवें प्रकाश पर्व के सितंबर २००५ में समापन के अवसर के लिए 'गुरु ग्रंथ साहिब : वाणी एवं सिद्धान्त' नामक यह पुस्तक लिखने का कार्य डॉ. जोध सिंह को सौंपा गया था जो इस समय पाठकों को समर्पित करते हुए मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। आशा है यह पुस्तक सभी वर्गों के पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला

स्वर्ण सिंह बोपाराय
(कीर्ति चक्र)
उपकुलपति

विषय-सूची

वाणी खण्ड

श्री गुरु ग्रंथ साहिब

जिस प्रकार पवित्र कुरान शरीफ मुसलमानों की, बाइबल ईसाइयों की, वेद शास्त्र एवं उपनिषद आदि हिन्दुओं की धर्म पुस्तकें हैं उसी प्रकार सिक्ख अपने धर्म ग्रंथ को श्री गुरु ग्रंथ साहिब कहते हैं। श्री गुरु ग्रंथ मूल रूप में पंजाबी भाषा और गुरमुखी लिपि में लिखा गया १४३० पृष्ठ का बृहद ग्रंथ है जिसे प्रत्येक गुरुद्वारे में ऊंचे आसन पर सुन्दर वस्त्रों में शोभायमान कर प्रतिष्ठापित किया जाता है। जो वस्त्र श्री गुरु ग्रंथ के ऊपर तथा नीचे बिछाए जाते हैं उन्हें पंजाबी भाषा में 'रुमाला' कहते हैं और श्री गुरु ग्रंथ को आदर पूर्वक ऊँचे मंच पर पढ़ने के लिए प्रतिष्ठापित करने को श्री गुरु ग्रंथ साहिब का "प्रकाश करना" कहते हैं।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब का कोई भी व्यक्ति (स्त्री पुरुष दोनों) चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का हो बिना किसी भेदभाव के, स्वच्छ होकर एवं सिर को ढककर गुरुद्वारे में या जहाँ भी श्री गुरु ग्रंथ साहिब उपलब्ध हो पाठ कर सकता है।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में क्या लिखा है

१४३० पृष्ठों के श्री गुरु ग्रंथ में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विभिन्न अवसरों पर भारत वर्ष के विभिन्न संतों-भक्तों द्वारा ईश्वर की स्तुति में कही गई मानव जीवन के लिए उपयोगी वाणियां एकत्र की गई हैं। यह संकलन पांचवें गुरु अरजन देव जी ने किया और इस महान कार्य में प्रमुख रूप में भाई गुरदास नामक विद्वान सिक्ख ने गुरु जी की सहायता की। गुरु ग्रंथ में संकलित पदों को सिक्ख 'सबद' (शब्द) कहते हैं। इन सारे शब्दों का राग ताल के अनुसार गायन किया जा सकता है क्योंकि सभी शब्द विभिन्न रागों और छन्दों में लिखे गए हैं। गुरु नानक देव जी का अभिन्न साथी एक मुसलमान था जो कि बहुत अच्छा संगीतकार था। इस संगीतकार का नाम मरदाना था और यह "रबाब" नामक वाद्य यन्त्र बजाने में सिद्धहस्त था। भक्ति भावना में विभोर हो उठने की स्थिति में गुरु नानक देव ने अपनी यात्राओं के दौरान भारत और भारत के बाहर के प्रतिनिधि संतों और पहुँचे हुए सूफी फकीरों से मुलाकातें की और उनकी अधिक लाभदायक वाणियों का भी संग्रह किया। इस सारे खजाने को बाद में गुरु नानक देव जी ने अपने परम शिष्य गुरु अंगद देव को दे दिया और इस प्रकार इसमें गुरुजनों की वाणी जुड़ती गई। यह सारा वाणी

भंडार गुरु अरजन देव जी तक पहुँचते पहुँचते काफी प्रसिद्ध हो गया था। गुरु अरजन देव जी ने इन सारी वाणियों को राग क्रम और गुरु-सन्तक्रम में रक्खा और गुरु ग्रंथ का सम्पादन किया जिसे पहले 'पोथी साहिब' अथवा ग्रंथ साहिब के रूप में जाना गया और बाद में गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा इसे गुरु पद से अभिहित किए जाने पर (१७०८ से) इसे गुरु ग्रंथ साहिब कहा और माना जाने लगा।

गुरु ग्रंथ के प्रारम्भ में "१ ओअंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि" लिखा है। गुरु नानक देव जी की इस रचना को सिक्ख मूलमंत्र कहते हैं। इस मूलमंत्र के बाद गुरु नानक देव की महान् कृति 'जपु' जी है जिसमें बड़ी ही सूत्रात्मक एवं संकेतात्मक भाषा में मन की चंचलता, श्रवण, मनन, पंचजन, परमात्मा की व्यापकता एवं परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सच्चे योग, भक्ति एवं आध्यात्मिक विकास के मार्ग का निरूपण किया गया है। यह कहा जा सकता है कि परमात्मा के स्वरूप का वर्णन मूलमंत्र में है और जपुजी मूलमंत्र की विस्तृत व्याख्या है तथा सारे गुरु ग्रंथ में जपुजी की विशद व्याख्या की गई है। गुरु ग्रंथ के अन्तिम पृष्ठों पर गुरु तेगबहादुर के श्लोक, गुरु अरजन देव की "मुंदावणी" का पद तथा सबसे अंत में रागमाला है। रागमाला में विभन्न ८४ राग-रागनियों के नाम गिनाए गए हैं हालांकि वे सब राग गुरु ग्रंथ में प्रयुक्त नहीं हुए हैं। गुरु तेगबहादुर के ५७ श्लोकों में शान्तरस की सरिता बह निकली है और दोहा, सोरठा छंद में जहाँ एक ओर संसार की असारता दिखाई गई है वहीं साथ ही साथ आत्म चिन्तन, एवं अच्छे कार्यों में संलग्न होने के लिए किसी भी समय और अवधि को उचित ठहराया है।

गुरु ग्रंथ साहिब के रागों के नाम

गुरु ग्रंथ में ३१ स्वतन्त्र रागों में वाणियां संकलित हैं। ये राग क्रम से निम्नलिखित हैं :-

१-सिरी राग	२-माझ
३-गउड़ी	४-आसा
५-गूजरी	६-देवगंधारी
७-बिहागड़ा	८-वडहंस
९-सोरठ	१०-धनासरी
११-जैतसरी	१२-टोडी
१३-बैराड़ी	१४-तिलंग
१५-सूही	१६-बिलावल

१७-गोंड	१८-रामकली
१६-नट नाराइन	२०-माली गउड़ा
२१-मारू	२२-तुखारी
२३-केदारा	२४-भैरव
२५-बसंत	२६-सारंग
२७-मलार	२८-कानड़ा
२६-कलिआन	३०-प्रभाती
३१-जैजावंती	

इनके अतिरिक्त तिलंग-काफी, सूही-ललित आदि कुछ मिले जुले राग भी प्रयुक्त किए गए हैं।

गुरु ग्रंथ में वाणियों का क्रम

१. सबद (शब्द)
२. असटपदी (अष्टपदी)
३. छंत (छन्द)
४. वार
५. लम्बी वाणी
६. भक्तों की वाणियां। भक्तों की वाणियां सभी रागों में नहीं हैं वे ३१ में से केवल २२ रागों में हैं।

गुरु ग्रंथ के रचनाकार

१. सिक्ख गुरु साहिबान।
२. मध्यकालीन संत एवं भक्त (सूफियों सहित)
३. भट्ट समुदाय।
४. अन्य।

सिक्ख गुरु

केवल छः गुरुओं की वाणी गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित है। ये गुरु हैं, गुरु नानक देव, गुरु अंगद देव, गुरु अमर दास, गुरु रामदास, गुरु अरजन देव और गुरु तेगबहादुर जी। सभी गुरु साहिबान ने अपनी वाणियों में 'नानक' नाम का प्रयोग किया है और सम्पादन करते समय गुरु अरजन देव जी ने प्रत्येक पद के पहले महला १, महला २, ३, ४ अथवा ५ लिखकर बता दिया है कि यह पद पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे अथवा पांचवें

गुरु साहिब का है। इसी प्रकार नौंवें गुरु तेग बहादुर जी की वाणी को महला ६ अंकित किया गया है।

संत एवं भक्त

१५ भक्तों, संतों एवं मुसलिम सूफियों की वाणियां गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित हैं। ये निम्नलिखित हैं :-

१-जयदेव	२-नामदेव
३-त्रिलोचन	४-परमानन्द
५-सधना	६-वेणी
७-रामानन्द	८-धन्ना
६-पीपा	१०-सैण
११-कबीर	१२-रविदास
१३-शेख फरीद	१४-शेख भीखन
१५-सूरदास (केवल एक पंक्ति)	

भट्ट समुदाय

इस श्रेणी में उन विद्वानों के सवैया छंद है जो विभिन्न स्थानों, मठों डेरों पर घूम-घूम कर विभिन्न प्रकार के तर्क वितर्क का भली-भांति निरीक्षण कर रहे थे। इन के पदों में गुरुजनों की संगत, सेवा, लंगर और प्रभु प्रेम की भावना आदि का भारतीय ऋषियों एवं उनके चिन्तन की पृष्ठभूमि में स्मरण किया गया है। भट्ट समुदाय के प्रमुख विद्वान निम्नलिखित हैं :-

१-कल्ह/कलसहार	२-कीरत
३-जालप	४-भिक्खा
५-भल्ह	६-सल्ह
७-गयंद	८-नल्ह
६-बल्ह	१०-मथुरा
११-हरिवंश	

अन्य

अन्य वाणीकारों में, उपर्युक्त रचनाकारों के अतिरिक्त सुन्दर, मरदाना, सत्ता और बलवंड का नाम आता है।

गुरु ग्रंथ साहिब और भारतीय दर्शन

वैदिक सँस्कृति और श्रमण सँस्कृति ऐसी दो विचारधाराएं हैं जो भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित हैं। वैदिक संस्कृति तो आर्यों के भारत प्रवेश और पक्के तौर पर बस जाने के साथ-साथ फली-फूली परन्तु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाईयों से प्राप्त मुद्राएँ और सीलों आदि से स्पष्ट है कि आर्यों के आने से पहले ही भारत में कठोर साधना करने वाले ऋषि मुनि मौजूद थे। ऋगवेद (१०.१३६) के केशी सूक्त में मन्त्रदृष्टा ऋषि एक लम्बे बालों वाले नागा संन्यासी को देखकर हैरानी प्रकट करता है। ऋगवेद (८.१७.१४) में इन्द्र को मुनियों का मित्र कहा गया है - "इन्द्रो मुनिनाम सखा"। इन्द्र जो कि वैदिक ब्राह्मण वर्ग का प्रतिनिधि माना गया है और यज्ञ यागों की बलियों को प्राप्त करने और देने वाला माना गया है, त्यागी मुनियों का मित्र तो नहीं माना जा सकता परन्तु इस वाक्य से यह स्पष्ट है कि वैदिक युग में तपस्वी मुनि अवश्य विद्यमान थे जो वास्तव में श्रमण सँस्कृति के साथ सम्बन्धित भारत के आदि निवासी थे जिन्हें आर्यों ने पंजाब (पंचनद, जिसे बैदिक साहित्य में सप्त सिन्धु प्रदेश भी कहा गया है) के मार्ग से भारत में प्रवेश करके पराजित किया और इस श्रमण सँस्कृति को कुछ शताब्दियों के लिये दब जाने के लिये विवश कर दिया। बाद में यही धारा उपनिषदों के समय में पुनः महात्मा बुद्ध और महावीर के श्रमण आन्दोलन के रूप में प्रकट हुई और इसने भारत के अनेक राजाओं महाराजाओं को प्रभावित किया।

वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट है कि ये ग्रन्थ मुख्य तौर पर उत्तर भारत और विशेष तौर पर पंजाब और उसके आसपास के क्षेत्र में सम्बन्धित वर्णन ही सामने लाते हैं। दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत के पार के क्षेत्र के बारे में ये ग्रन्थ चुप हैं। इस तथ्य का एक अन्य प्रमाण यह है कि वैदिक साहित्य में सात ऋषि प्रमुख माने गए हैं। ये सप्तऋषि हैं - वसिष्ठ, कश्यप, अंगिरस, विश्वमित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज। ये सातों के सात ऋषि उतर भारत के साथ सम्बन्धित हैं जिन्होंने आर्यों के राजकाज को पक्के तौर पर स्थापित करने में पूरा-पूरा योगदान दिया। इन सातों में से पाँच किसी न किसी रूप में पंजाब के साथ सम्बन्धित रहे हैं। ऋगवेद (७.३३.३-७) और बाद के वैदिक ग्रन्थों में बताया गया हैं कि वसिष्ठ ने इन्द्र के साथ सिन्धु नदी को पार किया था। इन्द्र की सहायता के साथ उसने पहले रावी (इरावती) नदी के किनारे और फिर निर्णायक युद्ध में राजा

सुदास को यहाँ के आदिवासी दस राजाओं के विरुद्ध लड़ाई में जीत दिलाने में सहयोग दिया था। विश्वमित्र भी सुदास के पारिवारिक पुरोहित थे और वसिष्ठ को दिये जाने वाले अधिक आदर सत्कार से ईर्ष्या खाकर शायद इन्होंने यहाँ के मूल निवासियों के दस राजाओं को राजा सुदास के खिलाफ खड़ा किया था। ये दोनों पुरोहित विशेष तौर से पंजाब के व्यास (विपाशा) और सतलुज (शतुद्रि) नदी के मध्य वाले भाग (दोआब) के साथ सम्बन्धित थे और बाद में दोनों ही कोशल नरेश दशरथ के पुरोहित बने। अयोध्या में भी इनकी परस्पर ईर्ष्या ही चलती रही। इसी प्रकार सुदास के दादा दिवोदास के कुल पुरोहित भरद्वाज ऋषि थे जो सातों ऋषियों में विशेष स्थान रखते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण (३.२४४-२४७) के अनुसार इन्होंने भी सिन्धु-नदी के पास मानुषा नामक स्थान पर ऋगवेद में वर्णित दस राजाओं की लड़ाई में भाग लिया था। अत्रि ऋषि भी अपरोक्ष रूप में सिन्धु के इस युद्ध में सलाहकार के तौर पर सम्बन्धित थे। यह विरोधी दस राजाओं में से त्रसदस्यु और तरयरुण के साथ सम्बन्धित थे जमदग्नि ऋषि भी भरत वंशजों की इक्ष्वाकु वंशजों के विरुद्ध सहायता करने वाले माने गए हैं। (जैमिनीय ब्राह्मण ३.२३७-३८)।

वैदिक साहित्य ने लगभग पिछले तीन चार हजार सालों से भारतीय उपमहाद्वीप के जीवन को प्रभावित किया है। वैसे तो वैदिक साहित्य का प्रसार बहुत विशाल है परन्तु यहां हम पंजाब के साथ मूल रूप में सम्बन्धित ऋगवेद, साँख्य, योग और वेदान्त तथा श्रीमदभगवद गीता आदि महान् ग्रन्थों के प्रभाव और "गुरुमत-साहित्य" के उद्भव और विकास आदि विषयों पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

मैक्समूलर और बाल गंगाधर तिलक जैसे विद्वानों ने वेदों का रचनाकाल चार हजार ईसवी पूर्व से बारह सौ ईसवी पूर्व तक माना है। प्राचीन भारतवासियों ने अपनी धार्मिक, साहित्यिक और राजनैतिक उपलब्धियों से सम्बन्धित वाद-विवाद तो बहुत किए हैं, साहित्य की रचना भी बहुत की गई है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इन उपलब्धियों का भरोसे योग्य रिकार्ड रखने का और अपना नाम, स्थान आदि देने का प्रयत्न इनमें कहीं भी प्राप्त नहीं होता। ऋगवेद आदि की ऋचाएं भी प्राचीन प्राग-ऐतिहासिक काल से श्रुति के माध्यम से ही अधिकारी व्यक्तियों के पास पहुँचती रही हैं और हिन्दू धर्म के अनुयायी आमतौर पर यह मानते रहे हैं कि ये ऋचाएँ मानवकृत नहीं हैं। इसीलिये हजारों वर्षों से यह धारणा चली आ रही है कि या तो परमात्मा ने इन मन्त्रों को सीधे स्वयं ऋषियों को सिखाया अथवा ऋषियों को समाधि में इन मन्त्रों के दर्शन हुए; इसीलिये ऋषियों को मन्त्रदृष्टा भी कहा जाता है।

ऋगवेद के दस मण्डलों में से अधिकतर की रचना पंजाब की धरती पर ही हुई है। ऋगवेद के विस्तार के रूप में ही सामवेद, यजुर्वेद आदि की रचना हुई है और इस

वैदिक साहित्य ने हिन्दू धर्म की धार्मिक और सामाजिक संरचना की रूपरेखा ही नहीं दी अपितु इस साहित्य को ही आधार मानकर अनेकों नियम कानून बनाए गए जिन्होंने कालान्तर में भारतवासियों की मानसिक रुचियों और सामाजिक-राजनैतिक विवशताओं को भी उजागर किया है। ऋगवेद में बेशक अधिकतर वर्णन आर्यों के भारत में प्रारम्भिक रूप से स्थापित होने को लेकर किए गए युद्धों का और भरपूर फसल तथा सोमरस आदि के उपार्जन का ही है परन्तु इसी महान ग्रन्थ में धार्मिक और दार्शनिक चिंतन के भी भरपूर दर्शन होते हैं। दसवें मण्डल में सृष्टि रचना के बारे में कई विधियों से अनुमान लगाए गए हैं। ऋगवेद में एक ओर अत्यन्त विशाल पुरुष के शरीर से सृष्टि रचना और भिन्न-भिन्न वर्णों की उत्पत्ति दिखाई गई है वहीं दूसरी ओर दार्शनिक स्तर पर शून्य (असत्) में से सत् अर्थात दृष्टमान जगत का विकास दिखाया गया है। एक अन्य मन्त्र में प्रजापति के तप से सृष्टि का विकास माना गया है। स्वर्ग, धरती आदि की उत्पत्ति ऋगवेद में एक स्थान पर हिरण्यगर्भ से हुई मानी गयी है जो कि स्वयं सोने के अण्डे के रूप में जल में तैरता हुआ बताया गया है। आमतौर पर सृष्टि रचना में जल की उत्पत्ति पहले ही मानी गई है।

ऋगवेद में तैंतीस देवता माने गए हैं। इनको ग्यारह-ग्यारह के हिसाब से तीन भागों अर्थात धरती, वायुमण्डल और स्वर्ग के नियन्ता माना गया है। इन देवताओं में अग्नि, इन्द्र, बृहस्पति, मरुत, वरुण, सूर्य, सवित्र आदि प्रमुख माने गए हैं। देवताओं की चर्चा तो ऋगवेद में हैं परन्तु मूर्ति पूजा अथवा मूर्तियों की चर्चा को इस महान ग्रन्थ में कहीं भी स्थान नहीं मिला है। बाद में ब्राह्मण ग्रन्थों में जब कर्मकाण्ड को प्रमुखता मिली तो साथ ही साथ मूर्ति पूजा का रिवाज भी शुरू हो गया। वैदिक धार्मिक अभ्यास और कर्मकाण्डों के तीन पहलू देखने में आते हैं।

सबसे पहले तो इस बात पर ज़ोर है कि किस प्रकार निर्विवाद रूप में दयालु देवताओं को अपने पक्ष में किया जाए।

वैदिक कालीन आर्यों की दूसरी प्रमुख समस्या यह लगती है कि कैसे तथाकथित राक्षसों पर विजय प्राप्त की जाए और इसी उद्देश्य को सामने रखकर जो साधनाएँ और कर्मकाण्ड किए जाते हैं वे धार्मिक ना रहकर जादू टोने का रूप धारण कर जाते हैं।

वैदिक काल के आर्यों का तीसरा रुझान पित्र पूजा के साथ सम्बन्धित है। इस पूजा में देवताओं की पूजा और राक्षसों से भय का मिलाजुला रूप देखने को मिलता है। पित्रों की पूजा तो देवताओं की तरह ही की जाती हैं, श्राद्ध वगैरह किए जाते हैं परन्तु यह नहीं चाहा जाता कि ये पित्र जीवित लोगों के साथ रहें या उन्हें दिखाई भी दें।

वैदिक यज्ञ-याग और बलि क्रिया का मूल रूप प्रार्थनामय है जिसमें भविष्य की सुख

शान्ति और अन्न-धन की प्राप्ति के लिये विनती की जाती है। प्राप्त हो चुके के लिये धन्यवाद रूप वाले मन्त्रों का ऋगवेद में लगभग अभाव ही है। इस सबके अतिरिक्त स्वर्ग-नरक और अन्तिम संस्कार आदि के वर्णन ऋगवेद में विद्यमान हैं। ऋगवेद में ही दार्शनिक चिंतन के रूप में सर्वेश्वरवाद, ऐकेश्वरवाद और अद्वैतवाद आदि के रूप भी दिखाई देते हैं।

साँख्य अनीश्वरवादी दर्शन है और कपिल मुनि को इस दर्शन का मूल प्रणेता चिन्तक माना जाता है। श्रुति, स्मृति, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन रचनाओं में सांख्य-योग के विचार पाए जाते हैं। गीता में कपिल को सिद्धों में से श्रेष्ठतम सिद्ध माना गया है। कपिल का "तत्व समास" साँख्य का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है परन्तु कपिल के बाद ईश्वरकृष्ण विरचित सुप्रसिद्ध साँख्य कारिका ही है जिसमें कुल ७२ कारिकाएं (पद) हैं। इन कारिकाओं पर अनेकों टीकाएं, वृत्तियाँ और भाष्य आदि लिखे गए हैं। साँख्य के दो अर्थ किये गए हैं - सँख्या और ज्ञान। साँख्य में तत्वों की गणना की गई है तथा प्रकृति-पुरुष समेत सारे संसार की उत्पत्ति पच्चीस तत्वों से हुई मानी गई है। दूसरे अर्थों में इस तत्वज्ञान को प्रकृति और पुरुष की भिन्नता अर्थात शरीर और आत्मा के अलगाव को समझने वाला ज्ञान माना गया है। गुरु ग्रन्थ साहिब के सम्पादन में प्रमुख सहायक भाई गुरदास साँख्य शास्त्र को अथर्ववेद का मन्थन मानते हैं। वास्तव में अथर्ववेद को तन्त्रमन्त्र जादू टोने की भरपूर चर्चा के कारण यहां के मूल निवासियों का ग्रन्थ माना जाता है और ऋग यजुर, सामवेद से अलग समझा जाता है। नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य जैसे विद्वान यह स्पष्ट मानते हैं कि साँख्य वैदिक विचार धारा का शास्त्र नहीं है ; वैदिक पंडितों ने बाद में इसकी शोध क्रिया अर्थात शुद्धिकरण करके जबरदस्ती इसे वेद का अनुगामी बनाया है और इसके पुरुष को ब्रह्म के रूप में ढाला गया है। कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य और विज्ञानभिक्षु जैसे पंडितों ने इस कठिन कार्य को पूर्णता प्रदान की है। शंकराचार्य अपने 'शारीरिक भाष्य' (२.१.१) में कहते हैं कि कपिल का सिद्धान्त (साँख्य शास्त्र) केवल वेद विरोधी ही नहीं अपितु मनु आदि उन व्यक्तियों का भी विरोधी है जो वैदिक परम्परा से सम्बद्ध हैं। इसलिए वेदान्त के कथनों की स्थापना और प्रचार के लिये साँख्य और इसी प्रकार की अन्य पद्धतियों को सुधारना पड़ेगा। विज्ञानभिक्षु ने भी अपने 'सांख्य सूत्र' की भूमिका में खुलकर कहा है कि उसका उद्देश्य सांख्य शास्त्र की शुद्धि करना है। भाई गुरदास ने साँख्य के सिद्धान्त को सार रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

कपल रिखीसुर साँखि मथि अथरवण वेद की रिचा सुणाई।।
गिआन महा रस पीअ कै सिमरे नित अनित निआई।
गिआन बिना नहि पाइऐ जो कोई कोटि जतनि करि धाई।

करमि जोग देही करे सो अनित खिन टिके न राई।
गिआन मते सुख उपजै जनम मरण का भरम चुकाई।
गुरमुखि गिआनी सहजि समाई।। १२ ।।

साँख्य द्वैतवादी दर्शन है जो जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग के फलस्वरूप सृष्टि के विकास की बात करता है। इसके अनुसार पुरुष अकर्ता और क्रिया विहीन है। प्रकृति अविद्या है और पुरुष ज्ञान स्वरूप है जो प्रकृति के मोहजाल में फंसकर अपने आपको बन्धन में डाल लेता है। साँख्य मत के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग के फलस्वरूप सबसे पहले महत् अथवा बुद्धि, फिर अहंकार, फिर मन, फिर पंच तन्मात्राएं (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श), फिर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ और फिर स्थूल संसार बनता है। वेदान्त, साँख्य और गीता में अहंकार की उत्पति प्रकृति से मानी गई है परन्तु गुरु ग्रन्थ साहिब में अंकित गुरु नानक देव की एक लम्बी वाणी 'सिध गोसटि' में सृष्टि की उत्पति से सम्बन्धित एक प्रश्न के उत्तर में गुरु नानक देव कहते है कि वास्तव में अहंकार (अहम्) से ही सारे संसार की उत्पत्ति हुई है और अपने सार तत्व प्रभु-नाम को भुला कर यह संसार दुख उठाता रहता है – 'हउमैं विचि जग उपजै पुरखा नामु विसरिए दुख पाई'। यह गुरु नानक की मौलिकता है और हम देखते हैं कि गुरु वाणी में वेदान्त साँख्य और गीता में दिए हुए सृष्टि क्रम को उलटाकर समझा गया है। साँख्य में पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि माने गए हैं और इन दोनों के उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न हैं। साँख्य में प्रकृति अचेतन और जड़ है। पुरुष चेतन तो अवश्य है परन्तु क्रिया विहीन होने के कारण वह न तो स्वयं प्रकृति के साथ संयोग कर सकता है और यदि उसके साथ इसका संयोग हो जाए तो वह उससे अलग नहीं हो सकता। इसका परिणाम यह हो सकता है कि सृष्टि का सदैव विकास ही चलता रहेगा, कभी प्रलय नहीं हो सकता, नाश नहीं हो सकता जो कि वास्तव में हकीकत नहीं है। सांख्य के अनुसार प्रकृति ही जगत का निमित्त और उपादान कारण मानी गई है। एक ओर तो प्रकृति को अंधी, जड़ और अचेतन माना गया है तथा दूसरी ओर हम देखते हैं कि संसार में एक व्यवस्था है, बाकायदगी है, नियम बद्धता है एक साम्य है; इसलिए प्रकृति और पुरुष की इस द्वैतवादी कार्यवाही को समझना समझाना कठिन प्रतीत होता है। गुरु ग्रंथ साहिब मैं इस सारे जड़ चेतन संसार से उपर एक परम पुरुष परमात्मा को स्वीकार किया गया है और 'आसा की वार' में यह बताया गया है —आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाउ।। दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।। दाता करता आपि तू तुसि देवह करहि पसाउ।। तू जाणोई सबसे दे लैसहि जिंदु कवाउ।। करि आसणु डिठो चाउ।। अर्थात प्रकृति की रचना परमात्मा स्वयं करता है और आप आसन जमा कर तटस्थ होकर प्रकृति के खेल को देखता है। जब इच्छा होती है इस

खेल को समेट लेता है और जब फिर चाहता है तो इसका विस्तार कर देता है – 'आपन खेलु आपि करि देखै। खेल संकोचै तउ नानक एकै।।' गुरु गोबिंद सिंह जी भी इस क्रिया को 'उद्‌करखन' (उत्कर्षण) और 'आकरखन' (आकर्षण) का नाम देते हैं। गुरुवाणी में यह भी माना गया है कि यह क्रिया अनंत बार हो चुकी है और आगे भी होती रहेगी – कई बार पसरिओ पासार।। सदा सदा इकु एकंकार।।

योग दर्शन सांख्य शास्त्र का क्रियात्मक रूप है। पुरुष को प्रकृति से अलग करने के लिए कौन सी क्रियाओं की आवश्यकता है, इसको योग के विभिन्न ग्रंथों में समझाया गया है। कठ्, तैत्रेयी, मैत्रेयी, जाबाल उपनिषद, गीता, जैनमत बौद्धमत, आदि सारे ही योग की क्रियाओं प्रक्रियाओं को प्रकारान्तर से मान्यता देते हैं। पतंजलि ने इन विभिन्न प्रकार की इधर उधर बिखरी हुई मान्यताओं को परिमार्जित ढंग से अपने योग सूत्रों के रूप में प्रस्तुत किया है और 'पातंजल योग सूत्र' को आजतक योग से संबंधित सब से अधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। गुरुवाणी के व्याख्याकार और प्रसिद्ध चिंतक भाई गुरदास भी पतंजलि के बारे में अपनी रचनाओं में कहते हैं –

सेखनाग पातंजल मथिआ गुरमुख सासत्र नागि सुणाई।
वेद अथरवण बोलिआ जोग बिना नहि भरमु चुकाई।
जिउ करि मैली आरसी सिकल बिना नहि मुखि दिखाई।
जोग पदारथ निरमला अनहद धुनि अंदर लिव लाई।
असट दसा सिधि नउनिधी गुरमुखि जोगी चरनी लाई।
त्रिहु जुगा की बासना कलिजुग विचि पातंजलि पाई।
हथो हथी पाइए भगति जोग की पूर कमाई।
नाम दानु इसनानु सुभाई।। १४ ।।

गुरु नानक और गुरु गोबिंद सिंह से शताब्दियों पहले हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष पद्धति आदि ग्रंथों के आधार पर पातंजल योग की कई प्रतिकृतियां और विकृतियां प्रचारित हो चुकी थी। गुरु साहिबान के समय तक पहुंचते पहुंचते योग मार्ग ऋद्धियों सिद्धियों को एकत्र करने और दूसरों को भयभीत करने का साधन मात्र बन कर रह गया था। गुरु नानक देव जी की कई गोष्ठियां इस प्रकार के योगियों के साथ हुई थी जिन्होंने उन्हें कई प्रकार के इंद्रजालों के माध्यम से प्रभावित करके उन्हें अपने मार्ग में सम्मिलित करना चाहा था। भाई गुरदास ने ही अपनी रचना 'वारा' (पहली वार पउड़ी ३९-४४) में ऐसे स्पष्ट संकेत दिए हैं।

योग के उद्देश्यों का यदि सूक्ष्म निरीक्षण किया जाए तो जहां इसमें शरीर और उसकी शक्तियों की अनन्त सम्भावनाओं के बारे में पता लगता है वहीं साथ ही साथ यह भी स्पष्ट

दिखाई देता है कि हठयोग और लययोग आदि में इन शक्तियों को जगाने और उनसे काम लेने के लिए शरीर के प्राकृतिक व्यवहारों को उलटाने पर जोर लगाया गया है तथा साथ ही साथ सृजन शक्ति के निरंतर अधोमुखी प्रवाह को विपरीत दिशा अर्थात ऊर्ध्वमुखी करने के लिए कड़ी तपस्या, संयम और लम्बे जीवन की आवश्यकता को भी अनुभव किया गया है। कालान्तर में यह भी माना जाने लगा कि इस सब कुछ के लिए जंगल पहाड़ी गुफाएं कन्दराएं आदि ही उचित स्थान हैं। गुरु साहिबान ने सैद्धान्तिक रूप से अपनी वाणियों में योग की शब्दावली का प्रयोग किया है और आत्म साक्षातकार की उपादेयता को खुले मन से स्वीकार किया है परन्तु यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि योग की पारिभाषिक शब्दावली की व्याख्या श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सामाजिक समानता, भाईचारे और आपसी सहयोग के दृष्टिकोण से ही की गई है। योग और गुरबाणी का उद्देश्य एक होते हुए भी जहाँ योग उसकी प्राप्ति के लिये कठिन प्रक्रियाओं को अपनाने की प्रेरणा देता है वहीं उसी उद्देश्य के लिये गुरबाणी मानवता की भलाई के लिये 'गुरमति' के नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन को अपनाने की प्रेरणा देती है।

'जाबाल उपनिषद', 'गोरक्ष शतक' और 'हठ योग प्रदीपिका' की तरह श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में हमें शरीर में स्थित छः चक्रों, सोलह आधारों, नौ द्वारों, प्राण-अपान के अतिरिक्त अन्य अनेकों प्रकार की वायु का सिलसिलेवार ब्यौरा तो नहीं मिलता परन्तु एक तथ्य यहाँ अवश्य स्पष्ट किया गया है कि परमात्मा के नाम रूपी अमृत का निवास कहीं बाहर नहीं इसी शरीर में ही है। सारा ब्रह्माण्ड शरीर में ही है और जो उसे खोज ले वह उसे पा सकता है – 'जो ब्रह्मण्डे सोई पिण्डे जो खोजे सो पावै'। इस शरीर में अनेकों वस्तुएँ हैं और जो नौ द्वारों से उपर उठकर दसवें द्वारा में अनहद शब्द सुनता है वही मुक्त है। ब्रह्माण्ड को जीतने, प्राप्त करने और नौ द्वारों से उपर उठकर अनहद शब्द सुनने के लिए काया शुद्धि के वास्ते गुरु ग्रन्थ के अनुसार व्यक्ति को गुरमुख बनना पड़ेगा अर्थात शब्द-गुरु को ग्रहण करके उस पर चलना होगा। आध्यात्मिक रूप से अन्धा व्यक्ति बाहरी शरीर को बार-बार धोने के बावजूद भी मन की मैल को दूर नहीं कर सकता – निवली करम भुअंगम भाठी रेचकपूरक कुम्भ करे। बिन सतगुर किछु सोझी नाहीं भरमे भूला बूडि मरै। अन्धा भरिआ भरिभरि धोवै अंतर की मलु कदे ना लहै। नाम बिना फोकट सभि करमा जिओं बाजीगरु भरमि भुले। भक्त रविदास भी उस व्यक्ति की चाण्डाल के साथ तुलना करते हैं जो हर कर्म तो करता है, अच्छे खानदान के साथ भी सम्बन्धित है परन्तु प्रभु भक्ति को मन में नहीं बसाता। गुरु गोबिन्द सिंह भी स्पष्ट कहते हैं – कहाँ भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठ रहओ बक धियान लगाइओ। न्हात फिरओ लिओ सात समुद्रन लोक गइओ परलोक गवाइओ... साचु कहु सुन लेतु सभै जिन प्रेम किओ तिन ही प्रभु पाइओ।

षट चक्र वर्णन के संकेत श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में मिलते हैं परन्तु अधिक चर्चा उलट-कमल और नाभि-कमल (स्वाधिष्ठान चक्र) की ही की गई है। जब उलटा कमल-अनाहत चक्र खिल उठता है तो परमात्मा सर्वत्र साकार हो उठता है - ऊँध कवलु जिसु होए प्रगासा तिन सरबु निरंजन डीठा जीओ। गुरु नानक कहते हैं कि परमात्मा के नाम के माध्यम से हिंसा ममता (अहंकार), क्रोध और लोभ की चारों अग्निओं का शमन करने पर ही हृदय का कमल खिलता है और अमृतपान करके साधक प्रसन्न हो जाता है। नाभि कमल का वर्णन "सिध गोसटि" वाणी में कई बार आया है जहाँ इस नाभि कमल को योगियों द्वारा प्राण वायु का घर और आधार माना गया है जोकि इसमें स्थित रहती है। गुरु नानक यह मानते हैं कि इस नाभिकमल में स्थित ना बने रहने की सूरत में भी व्यक्ति के प्राणों का निवास परमात्मा में बना रहता है - "नाभि कमलु असथंभु ना होतो ता निज घरि बसतओ पवनु अनरागी।"

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि उलटा कमल जिसे हृदय कमल भी कहा गया है उसे लय योग के अनाहत चक्र के रूप में भी जाना जा सकता है। हाँ, यहाँ एक अन्य तथ्य भी ध्यान देने योग्य है। योग साहित्य में षट चक्रों को कुण्डलिनी के द्वारा भेदन की बात कही गई है परन्तु जहाँ एक ओर गुरु ग्रन्थ साहिब में कुण्डलिनी का कोई वर्णन तथा महत्व स्वीकार नहीं किया गया है वहाँ साथ ही साथ गुरु वाणी में कमलों के पीड़ादायक भेदन की बात न करते हुए कमलों के खिलने की बात की गई है जोकि गुरु साहिबान की सौंन्दर्यपूर्ण दृष्टि की ओर संकेत करती है। सम्पूर्ण गुरु ग्रन्थ साहिब में कुण्डलिनी का वर्णन केवल एक बार भट्टों के सवैये (पृष्ठ १४०२) में गयन्द भट्ट द्वारा किया गया है। वहाँ पर यह स्पष्ट किया गया है कि कुण्डलिनी जागरण वास्तव में सतुसंगत में ही होता है और मन, वचन तथा कर्म को आचरण के माध्यम से एक सीधी रेखा में ले आना अर्थात् जो मन में है वही कहना और उसी के अनुरूप आचरण करना 'कुण्डलिनी को जगा लेने और सीधा करने के समान है तथा इस कार्य के लिये साधसंगत ही उपयुक्त स्थान है ना कि कोई कन्द्रा या विशेष प्रकार की मुद्रा इसके लिये आवश्यक है - कुण्डलिनी सुरझी सति संगति परमानन्द गुरु मुख मचा। सिरी गुरु साहिब सब उपर मन बच क्रम सेविए सचा।'

इसी प्रकार अनहद शब्द, अमृत वर्षा आदि को भी गुरु ग्रन्थ साहिब में नैतिक स्तर को ऊँचा करके तथा समाज के लिये उपयोगी बनकर प्राप्त करने की बात कही गई है। पतंजलि के पाँच यमों में से अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी ना करना) और अपरिग्रह (कुछ भी इकट्ठा करके ना रखना) की महानता को तो गुरुजनों ने भी स्वीकार किया है परन्तु ब्रह्मचर्य के प्रति उनकी अपनी ही धारणा है और उन्होंने गृहस्थ जीवन को ही सबसे उत्तम माना है क्योंकि इसी जीवन के माध्यम से संसार के साथ जुड़े रहा जा सकता है। शौच,

सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि पाँच नियमों में से गुरु ग्रन्थ साहिब में सन्तोष और ईश्वर प्रणिधान को सबसे ऊँचा माना गया है। शौच (स्वच्छता पवित्रता) गुरु ग्रन्थ साहिब में अधिकतर मानसिक है और केवल शारीरिक स्वच्छता का ही विशेष महत्व नहीं माना गया है। इसी प्रकार योगी के वेश को भी गुरु ग्रन्थ साहिब में कोई महत्व नहीं दिया गया है। उसकी विशेष उपलब्धि ऋद्धियों सिद्धियों को भी गुरु ग्रन्थ साहिब में निचले स्तर की उपलब्धि के रूप में ही माना गया है और आत्म साक्षात्कार तथा भक्ति भावना के माध्यम से अहंकार (हउमै) के त्याग पर विशेष बल दिया गया है।

वेदान्त दर्शन का सबसे प्रभावशाली व्याख्याकार शंकराचार्य को माना जाता है। शंकर के सिद्धान्तों का आधार हैं - उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता। शंकराचार्य सत्कार्यवाद को मानते हैं और कहते है कि हर कार्य का कारण उसी में निहित होता है और दरअसल कार्य तो होता ही नहीं है ; केवल कारण ही हमें भिन्न भिन्न रूपों में आभासित होता है। कारण सत्य है जबकि कार्य मिथ्या आभास मात्र है। इस प्रकार सत्कार्यवाद के रूप परिणाम वाद को न मानकर शंकर इस के दूसरे रूप विवर्तवाद को मानते हैं। सांख्य का मत प्रकृति परिणामवाद है और रामानुज का ब्रह्म परिणामवाद। परिणामवाद के अनुसार कार्य (effect) कारण (cause) का वास्तविक विकार है जैसे दही दूध का, घड़ा मिट्टी का और गहना सोने का विकार है। परन्तु शंकराचार्य के विवर्तवाद के अनुसार यह विकार दरअसल विकार नहीं अपितु एक भ्रम अथवा आभास मात्र है ; आकार में बदलाव परिवर्तन नहीं माना जा सकता। शंकर कहते हैं कि पारमार्थिक दृष्टि से सृष्टि मिथ्या है और इस मिथ्या पदार्थ को किसी का सच्चा परिणाम नहीं माना जा सकता ; सारी सृष्टि ब्रह्म पर अध्यास रूप में है और इसमें केवल ब्रह्म ही सत्य है और संसार मिथ्या है। विवर्त होने के कारण जगत मिथ्या है और हम अज्ञानवश इसे सत्य माने जा रहे हैं। शंकराचार्य के अनुसार कारण सत्य है परन्तु कार्य असत् है।

गुरु ग्रंथ साहिब में परमात्मा को परम सत्य स्वरूप में स्वीकार किया गया है और साथ ही साथ यह भी माना गया है कि उस परम सत्य से जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है वह भी सत्य है। सत्य में से सत्य ही पैदा होगा असत् नहीं। ये खण्ड, ब्रह्माण्ड मात्र परछाई नहीं हैं, ये एक हकीकत हैं। गुरु ग्रंथ में इनसे भागने की बजाय इनमें संतुलित जीवन जीने की कला सिखाई गई है और बताया गया है सांसारिक पदार्थो में सुखपूर्वक बसने के लिए इनको अपने अहम् की तृप्ति का साधन न मानकर उस प्रभु की रज़ा में रहने का साधन रूप माना जाए और सदैव प्रभु को याद रखा जाए - जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि।। तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि।। संसार का होकर जीवन व्यतीत करना है परन्तु सांसारिक बनकर नहीं जीना है। यह सारा संसार परिवर्तनशील है इसलिए इसे क्षणभंगुर तो कहा जा सकता

है परन्तु मिथ्या नहीं माना जा सकता। जीवन के जितने भी क्षण प्राप्त हुए हैं वे मूल्यवान हैं उनका सदुपयोग होना चाहिए – इस देही कउ सिमरहि देव।। सो देही भजु हरि की सेव।। अथवा "भई परापति मानुख देहुरीआ।। गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।। इस अवसर का संसार में रहकर पूरा लाभ उठाना चाहिए न कि संसार को मिथ्या परछाई मानकर इसका त्याग करना चाहिए। नैतिक उत्तरदायित्व से बचने का यह आध्यात्मिक तरीका सिक्ख जीवन और उसके मूल स्रोत गुरु ग्रंथ साहिब में मान्य नहीं है।

श्री गुरु ग्रंथ से उद्भूत गुरमति साहित्य में जीवन के सौंदर्य और स्वाभिमान को बरकरार रखने वाली जीवन पद्धति की रूप रेखा बनाने का प्रयत्न किया गया है। कीर्तन, सत्य, संतोष विचार आदि को भक्ति, प्रेम की कैनवस पर चित्रित किया गया है। आज कल हर विचार हर तथ्य का मूलस्रोत वैदिक साहित्य को मानने की एक परम्परा सी बन गई है। वेदों के आधार पर जिसे भक्ति कहा जाता है वह वास्तव में प्रेम पूर्ण भक्ति न होकर वैदिक धर्म के आरम्भ में यज्ञ और कर्मकाण्डों की एक जटिल प्रणाली में बंधी हुई उपासना पद्धति थी जिसमें संस्कारों और क्रियाओं की प्रमुखता थी। यज्ञों के कर्मकाण्डी धर्म में भी श्रद्धा के लिए थोड़ा बहुत स्थान था परन्तु उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों के अद्वैत चिन्तन में कर्म और ज्ञान का विकास-विलास तो मिलता है पर भावनात्मकता के अभाव के कारण यह विकास मात्र पांडित्य दर्शन के अहंकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। कुमारिल भट्ट द्वारा वैदिक कर्मकाण्डों की पुर्नस्थापना के प्रचार ने और उससे भी अधिक शंकराचार्य के अद्वैतवाद ने भक्ति भावना के रास्ते पर सबसे मज़बूत अवरोध खड़ा किया।

अद्वैतवाद ने ब्रह्म और जीव की एकता के सिद्ध करने पर ज़ोर लगा दिया और दरअसल यह ठीक ही है कि जब ब्रह्म और जीवात्मा एक ही हैं तो भक्ति जैसी भावना शंकराचार्य के अनुसार तो अज्ञानमूलक ही कही जाएगी। भक्ति का संबंध तो सदैव दो के बीच में होता है। शंकराचार्य ने अपनी असाधारण प्रतिभा के बल से और शास्त्रार्थों के बल-बूते भक्ति की जड़ों को हिला कर रख दिया। परन्तु दक्षिण में आलवार भक्तों ने शंकराचार्य की कोई परवाह नहीं की। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दि में आचार्य नाथ मुनि हुए हैं जिन्होंने वैष्णवों का संगठन किया, आलवार भक्तों के गीतों का 'नालायर दिव्य प्रबन्धम' के रूप में संग्रह किया और वैष्णव सिद्धान्तों की व्याख्या की जिससे भक्ति परम्परा को नया बल मिला। नाथ मुनि के उतराधिकारियों में से ही रामानुज हुए जिन्होंने अपने श्री भाष्य में शंकर के अद्वैतवाद का पूरे तर्कयुक्त ढंग से खंडन किया और ब्रह्म को अद्वैत सत्ता मानते हुए भी जीव और ब्रह्म को एक नहीं माना। रामानुज के विशिष्टाद्वैत का अर्थ ही यह है विशिष्ट सत्ता ब्रह्म और जीव का एक विशेष प्रकार का अद्वैत है। "भारतीय दर्शन" में पंडित बलदेव उपाध्याय के शब्दों में – 'जो मुख्य होता है वह नियामक

(Controller) होता है और उसको विशेष कहते हैं। जो गौण होता है वह नियम्य (Controlled) अथवा विशेषण कहलाता है। यहां नियामक और प्रधान होने के कारण ईश्वर विशेष्य है और नियम्य तथा अप्रधान होने के कारण जीव और जगत विशेषण हैं। विशेषण सदैव अलग ना रहकर विशेष के साथ ही जुड़े रहते हैं। इसलिये विशेषणों वाले विशेष्य अर्थात विशिष्ट की एकता की कल्पना तर्कपूर्ण है। इस प्रकार जीव और ब्रह्म का अन्तर स्पष्ट करते हुए जीव को ब्रह्म से हीन सिद्ध किया गया है और इसी स्थिति में जीव द्वारा ब्रह्म की भक्ति को ठीक स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त रामानुज ने ईश्वर के पाँच रूपों की कल्पना की और सगुण स्वरूप को मान्यता दी जो कि प्रकारान्तर में अवतारवाद की ही पुष्टि है। रामानुज ने विष्णु की उपासना का प्रचार किया और दासभाव वाली भक्ति पर विशेष बल दिया। उनके बाद अनेकों अन्य आचार्य हुए हैं परन्तु प्रमुख रूप से द्वैतवादी मध्वाचार्य (११९९-१३०३) ने बड़ी उग्रता से शंकर के मायावाद का खंडन करके विष्णु की भक्ति का प्रचार किया। द्वैताद्वैतवाद के संस्थापक निम्बार्क (१२-१३वीं शताब्दी) ने लक्ष्मी-विष्णु के स्थान पर राधा-कृष्ण की भक्ति का प्रचार किया और शुद्धाद्वैतवाद के संस्थापक वल्भाचार्य (१४७९-१५३०) ने बाल कृष्ण की उपासना का समर्थन किया। रामानुज की परम्परा में १४वीं सदी में रामानन्द हुए जिन्होंने सीता-राम भक्ति का प्रचार किया। इसके बाद वाले समय में सगुण मार्गियों में राम और कृष्ण की ही भक्ति का प्रचार अधिक हुआ और इन दोनों में से भी कृष्ण की भक्ति का प्रचार सर्वाधिक हुआ। कृष्ण के भी रासलीला रूप की स्थापना ही ज्यादा हुई और उसके लोक रक्षक रूप की परवाह कम ही की गई है।

वैदिक साहित्य के बाद उपनिषदों, सूत्रग्रन्थों, जैन-बौद्ध साहित्य और महाकाव्यों का विकास हुआ। इन ग्रन्थों पर टीकाएँ, भाष्य एवं वार्तिक ग्रन्थों की रचना भी साथ ही साथ चलती रही। पंजाब के साथ सम्बन्धित इन सबमें प्रमुख महाभारत महाकाव्य माना जा सकता है जिसमें धर्म-अधर्म की व्याख्या के साथ परमार्थ, स्वार्थ, दुष्टता, दानवीरता, त्याग और शूरवीरता को निखार कर प्रस्तुत किया गया है। इसी ग्रन्थ के भीष्मपर्व में वेद-वेदांग और उपनिषदों के सार रूप में अठारह अध्यायों में विभक्त सात सौ बीस श्लोकों की रचना श्रीमद भगवदगीता के दर्शन होते हैं। परम्परा के अनुसार वह माना जाता है कि यह कुरुक्षेत्र के युद्ध के मैदान में उच्चारित की गई रचना है। खैर, इसका उच्चारण जहाँ भी किया गया हो अथवा इसे बाद में महाभारत में जोड़ दिया गया तो इस बात का कोई खास महत्व नहीं परन्तु गीता हिन्दू धर्म के सार सारांश को सामने लाने वाली एक ऐसी अद्वितीय रचना है जिसको हर हिन्दू परिवार आवश्यक तौर पर पढ़ना अथवा सुनना चाहता रहता है। गीता पर अनेकों टीकाएँ और भाष्य लिखें गए हैं तथा प्रस्थानत्रयी में से गीता भी एक है। गीता

पर लिखी गई व्याख्याओं में से शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और वर्तमान समय के बाल गंगाधर तिलक की व्याख्या प्रसिद्ध है। तीनों ही विद्वानों ने अपने समय के अनुरूप गीता के प्रमुख सिद्धान्त अलग-अलग माने हैं। शंकराचार्य ज्ञान प्राप्ति को गीता का सार तत्व मानते हैं, रामानुज गीता में से भक्ति के संदेश की प्रमुखता को मानते हैं जबकि बाल गंगाधर तिलक इसमें कर्मयोग की प्रधानता को महत्व देते हैं। कुछ भी हो गीता ने दुनिया भर के विद्वानों का ध्यान अपनी तरफ खींचा है।

गीता पर शंकराचार्य का भाष्य शायद सबसे पुराना व्याख्यापरक कार्य है जोकि वर्तमान समय में भी मौजूद है। भारतीय दर्शन के प्रसिद्ध इतिहासकार सुरेन्द्र नाथ दासगुप्ता के अनुसार शंकराचार्य की गीता की व्याख्या, इस सिद्धान्त पर सबसे अधिक बल देती है कि सत्य ज्ञान की प्राप्ति और वैदिक कर्त्तव्यों अथवा स्मृतियों के विधान का पालन इकट्ठे नहीं चल सकते। यदि अज्ञानवश अथवा मोह के कारण एक व्यक्ति का मन वैदिक कर्मकाण्ड करते रहने पर और बलि, भेंट तथा तपस्या के फलस्वरूप निर्मल हो जाता है और उसे अंतिम सत्य, ब्रह्म के स्वरूप के बारे में सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है और अब यदि उसके लिये कोई कारण नहीं है कि वह कर्म करता चला जाए परन्तु फिर भी वह कर्म करता है और दूसरों को भी कर्म करने की प्रेरणा देता है तो उसके कर्म उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान के साथ मेल नहीं खाएंगे। जब एक व्यक्ति बिना किसी उद्देश्य अथ्वा इच्छा के कर्म करता है तो उसका वह कार्य कर्म नहीं माना जाएगा। परन्तु विवेकशील व्यक्ति जिसको अपने कर्मो के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं है बेशक एक साधारण व्यक्ति की तरह काम में लगा हुआ दिखाई दे परन्तु फिर भी उसे हम शब्द कर्म के सही अर्थो के अनुरूप काम करता हुआ नहीं समझ सकते। शंकराचार्य के अनुसार गीता का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि मुक्ति की प्राप्ति केवल ज्ञान के माध्यम से ही हो सकती है, ज्ञान और कर्म को मिलाकर नहीं। शंकराचार्य मानते हैं कि अज्ञान में ही सभी कर्म हमें अच्छे लगते हैं, ज्ञान की अवस्था में नहीं। एक बार जब ब्रह्म के साथ तद्रूप होने का ज्ञान हो जाता है तो अविद्या अथवा अज्ञान समाप्त हो जाते हैं ; कर्म करने कराने और उनके प्रति जिम्मेदारी के लिए जरूरी द्वैतभाव समाप्त हो जाता है। गीता के तीसरे अध्याय के पहले श्लोक में ही कहा गया है - ज्यायसी चेतकर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन। ततकिं कर्मणि घोरे मा नियोजयसि केशव - अर्थात हे जनार्दन, यदि आपका यही मत है कि कर्म की अपेक्षा बुद्धि (ज्ञान) ही श्रेष्ठ है तो हे, केशव, मुझे युद्ध के बुरे और घोर कर्म में क्यों लगाते हो। इस श्लोक की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य अन्य व्याख्याकारों की, जो यह मानते है कि ज्ञान मिलने के बाद कर्तव्यों का त्याग नहीं किया जाना चाहिये, आलोचना करते हुए स्मृति ग्रन्थों का हवाला देते हुए कहते हैं कि केवल कर्म ना करने के कारण बुरे परिणाम प्राप्त नहीं

हो सकते क्योंकि कर्महीनता तो केवल एक निषेध (Negation) है और निषेधात्मक व्यवहार का सकारात्मक (Positive) परिणाम कैसे प्राप्त हो सकता है। कर्त्तव्यों के प्रति कर्महीनता का बुरा प्रभाव केवल उन्हीं पर पड़ता है जिन्होंने पूर्ण रूप में कर्म का त्याग नहीं किया होता। परन्तु जिन्होंने ज्ञान प्राप्त करके सारे कर्म छोड़ दिए हैं वे वेदों की आज्ञाओं से भी परे चले जाते हैं और स्मृतियाँ आदि भी अब उन्हें प्रभावित नहीं करतीं। संक्षेप में शंकराचार्य के कथन के अनुसार विवेकपूर्ण व्यक्ति के लिये कोई जिम्मेदारी और कर्तव्य नहीं होता। इस सारी चर्चा को दृष्टि में रखते हुए सुरेन्द्र नाथ दासगुप्त 'ए हिसटरी आफ इंडियन फिलासफी' के दूसरे भाग में कहते हैं-

Shankaras interpretation of the Gita presupposes that the Gita holds the same philosophical doctrine that he does.

अर्थात शंकराचार्य की गीता की व्याख्या पहिले ही माने बैठी है कि गीता के दार्शनिक सिद्धान्त वही हैं जो शंकराचार्य के अपने सिद्धान्त हैं। कर्म न करने की प्रेरणा देने वाले गीता के भाष्यों और व्याख्याओं ने भारत को कितना हानि-लाभ पहुंचाया है यह किसी व्याख्या का मोहताज नहीं है ; दसवीं शताब्दी के बाद के पांच सौ वर्षों में उत्तर-पश्चिम की ओर से होने वाले साठ-सत्तर आक्रमणों को सहन करने का भारत का इतिहास इसकी मुंह बोलती तस्वीर है।

वस्तुपरक दृष्टिकोण से देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य एक ओर तो आर्य सभ्यता, आर्यों के जुझारू स्वभाव, उनकी विस्तावादी रूचियों का विस्तृत वर्णन करता है परन्तु दूसरी ओर साथ ही साथ भारतीय दर्शन के अनेकों पड़ावों के बारे भी संकेत देता है। वैदिक साहित्य ने कालान्तर में सुदूर दक्षिण में गोविंदपाद, गौड़पाद और उनके शिष्य शंकराचार्य को ईसवी सन् की नौवीं शताब्दी में अद्वैत वेदान्त का अग्रगामी प्रतिपादक बनाया और बाद में इसी अद्वैत को आधार बना कर भारतीय चिंतन ने दक्षिण के अन्य चिंतकों को भी झकझोरा। फलस्वरूप रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्य का द्वैतवाद, वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद और निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद अस्तित्व में आया।

वैदिक सिद्धान्तों को स्वार्थी तत्वों ने इस प्रकार तोड़ मरोड़ कर लोगों के सामने रखा कि भारतवासी अनेकों जातियों उपजातियों में बंट गए। श्रमण संस्कृति ने बैद्ध एवं जैन धर्म के रूप में जोर पकड़ा और हिन्दु धर्म के खोखले कर्मकांड और बलिदानों का समय तो जैसे बीते युग की बात बन कर रह गया। बौद्ध धर्म भी हीनयान, महायान में बंट गया और इन दो संम्प्रदायों के भी अनेकों उपमत बन चुके थे। हिन्दूधर्म तथा बौद्धधर्म एक दूसरे में घुल मिल कर इतने सारहीन से हो गए थे कि धर्म की संजीवनी शक्ति से लाभ उठाने वाली भारतीय जनता लगभग निराश्रित सी अनुभव करने लगी थी। शंकराचार्य

ने वाद-विवादों के माध्यम से बुद्ध धर्म को तो भारत से खदेड़ दिया परन्तु विकल्प के तौर पर संन्यासियों के झुंड़ों के अतिरिक्त वे कुछ न दे सके। फलस्वरूप हम देखते हैं कि कैसे आक्रमणकारी कुछ सैंकड़ों की ही गिनती में, पंजाब अथवा सिंध के मार्ग से भारत में प्रवेश करते और जहां एक ओर सोमनाथ तक और दूसरी ओर दूर नालन्दा तक बेरोक-टोक लूटमार करते हुए हीरे जवाहिरातों के गट्ठर बंधवा कर यहां के लोगों के ही सिर पर उठवाकर उन्हें गुलाम बनाकर कौड़ियों के भाव बेचने के लिए गज़नी आदि के बाज़ारों तक ले जाते थे। भारतीय जनता ने यह अनुभव कर लिया था कि सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए अकेला श्रमण जीवन अर्थात संन्यासी जीवन की काफी नहीं है तथा दूसरी ओर न केवल आध्यात्मिक उड़ानें भरने वाला वेदान्त का दर्शन, सांख्य का कैवल्य अथवा मीमांसा का कर्मकाण्ड ही सहायक है।

पंजाब ने जैसे प्राचीन काल में आर्यों के धार्मिक ग्रंथों के रूप में वेद वेदांग भारतवासियों को दिए थे, अब फिर लोकमन घोर संकट में घिरा हुआ कुछ कर गुज़रने के लिए तिलमिलाने लगा। सिक्ख सिद्धान्तों की सार्थकता को बताते हुए गुरु ग्रंथ साहिब से उदभूत् इस स्थिति का जे. डी. कनिंघम ने बड़ा ही यथार्थ चित्र अपनी पुस्तक 'हिस्टरी आफ द सिक्खस' में दिया है :-

सोलहवीं सदी के आरम्भ में हिन्दू मस्तिष्क प्रगतिहीन और स्थिर न रह सका ... रामानन्द और गोरख ने धार्मिक एकता का उपदेश दिया। चैतन्य ने उस धर्म का प्रतिपादन किया जिस से जातियां सामान्य स्तर पर आईं। कबीर ने मूर्तिपूजा की मनाही की और अपना संदेश लोक-भाषा में सुनाया, वल्लभाझार्य ने अपनी शिक्षाओं में भक्ति और धर्म का तालमेल स्थापित किया। परन्तु ये महान् सुधारक जीवन की क्षणभंगुरता से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनकी दृष्टि में समाज के उद्धार का दृष्टिकोण बिलकुल नगण्य था। उनके प्रचार का उद्देश्य केवल ब्राह्मण वर्ग की शक्तिमत्ता से छुटकारा दिलाना, मूर्तिपूजा और बहुदेववाद की स्थूलता भर दिखाना था। उन्होंने वैराग्यवान और शान्त पुरुषों का संगठन तो किया और आत्म-आनन्द के लिए सब कुछ त्याग दिया परन्तु अपने भाईयों को सामाजिक और धार्मिक बंधनों को तोड़ने का ऐसा उपदेश वे ने दे सके जिससे ऐसे समाज का निर्माण होता जो रूढ़िवादी परम्पराओं और आडम्बरों से विहीन होता। उन्होंने अपने मतों में तर्क-वितर्क, वाद-विवाद पर तो विशेष बल दिया परन्तु ऐसे उपदेश न दे सके जिनसे राष्ट्र निर्माण का बीजारोपण होता। शायद यही कारण भी था कि उनके सम्प्रदाय विकसित न हो सके और लगभग वहीं के वहीं रह गए जहां से प्रारम्भ हुए थे। (हिस्ट्री आफ द सिक्खस, पृ. ३८)

वास्तव में सातवीं आठवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान अथवा

सहजयान में परिवर्तित हो चुका था और भोग विलास की क्रियाएं इसमें प्रवेश कर चुकी थीं। शैवमत भी अनेक शाखाओं में बंट गया था जिनमें वामाचार को खास स्थान दिया गया था। सामाजिक और नैतिक स्तर के इस पतन ने साधारण व्यक्ति को बहुत प्रभावित किया और फलस्वरूप भोग विलास की प्रवृति बढ़ती ही चली गई। बौद्ध, जैन और शैव मत के मुकाबले में पौराणिक धर्मों को मानने वालों ने भी भक्ति का एक ऐसा रूप पेश किया जिसमें प्रेम प्रधान हो गया और श्रद्धा घटती गई। नौवीं शताब्दी के आस पास रचित श्री मदभागवत पुराण में भक्ति के ऐसे रूप का चित्रण है जिसमें कृष्ण और गोपियों के शारीरिक प्रेम-प्रसंग ऐसे उत्तेजक रूप में दिखाए गए हैं जो पूर्ववर्ती पुराण ग्रंथों से कहीं अधिक बढ़े चढ़े हुए हैं। इतना ही नहीं भागवतकार ज्ञान अथवा श्रद्धा भाव पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। क्या गोपियों को ईश्वर के अलौकिक रूप का ज्ञान था ? इस प्रश्न का उतर देते हुए स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि गोपियों के प्रेम का झुकाव शुद्ध सांसारिकता प्रेरित था। दरअसल भक्ति की यह विकृति बौद्ध एवं शैव धर्म के मुकाबले में अपनी महानता एवं सर्वोपरिता बनाए रखने के लिए ही हुई थी।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब भक्ति को रोटियों के उद्देश्य की पूर्ति का साधन नहीं मानता। गुरु नानक देव ने भक्ति के नाम पर हो रहे पाखण्डों को बनारस, गया, जगन्नाथपुरी और मथुरा आदि स्थानों पर स्वयं देखा था। गुरु ग्रंथ की वाणी 'वार आसा' में इन पाखण्डों के प्रति गुरु के हृदय में उठी भावनाओं को देखा जा सकता है। गुरुवाणी के अनुसार मानव मन में गुणात्मक परिवर्तन लाए बिना और अहम् के त्याग के बिना भक्ति जैसी पवित्र भावना के संचार की कोई संभावना नहीं है - 'सभि गुण तेरे मैं नाही कोइ।। विणु गुण कीते भगति न होइ।।' गुरु अमरदास भी भक्ति और गुणों के परस्पर संबंध के बारे में बताते हुए कहते हैं - 'बिन गुरु गुण न जापनी बिनु गुण भगति न होइ। कैसे भक्ति की इस पवित्र भावना को वाद-विवादों में फंसाया गया है यह हम ने संक्षेप में उपर्युक्त पंक्तियों में देखा है। अपने तामसिक और राजसिक अहम् को अखिल ब्रह्मांडीय सात्विक अहम् के अधीन करके प्रभु के हुकुम को रज़ा के रूप में मानने को स्वभाव बनाना भक्ति भावना का प्रमुख लक्षण श्री गुरु ग्रंथ साहिब में माना गया है। गुरु अंगद देव और गुरु अमरदास क्रमशः शाक्त पंथ और वैष्णव मार्ग को त्याग कर सिक्ख धर्म में प्रविष्ट हुए थे; वे भी स्पष्ट कहते हैं - भगति करहि मूरख आपु जणावहि।। नचि नचि टपहि बहुत दुख पावहि।। नचिऐ टपिऐ भगति न होइ। सबदि मरै भगति पाए जनु सोइ।। ३ ।। भगति वछलु भगति कराए सोइ।। सची भगति विचहु आपु खोइ।।

भक्ति-मार्ग के दोषों से बचाने के लिए गुरु ग्रंथ साहिब में भरपूर प्रयत्न किया गया है। डॉ. जय राम मिश्र ने अपने 'गुरु ग्रंथ दर्शन' में भक्ति मार्ग के तीन दोष प्रमुख माने हैं। पहला दोष तो यह है कि इष्टनाम भेद के कारण परस्पर झगड़े अधिक होते हैं। दूसरा यह दोष है कि अंधी श्रद्धा में डूबे लोग आम तौर पर अपने इष्टों की मर्ज़ी पर इतने ज्यादा

निर्भर हो जाते हैं कि व्यवहारिक जीवन में अपने हाथों अपना कार्य करने संवारने की अपेक्षा एक दम निकम्मे और आलसी बन जाते हैं और अपनी कमज़ोरियों को न मानकर उन्हें इष्ट के मत्थे मढ़ कर चुप हो जाते हैं। तीसरा दोष यह है कि अंध विश्वास का जाल कभी कभी इतना मज़बूत हो जाता है कि लोग दंभी और पाखण्डियों के चक्कर में पड़कर बहुत दुख उठाते हैं। गुरु ग्रंथ से विकसित गुरमति साहित्य में इन सारे दोषों की जड़ में अपनी सुविधा के अनुकूल मानी और अपनाई गई ब्रह्म की अवधारणाओं को देखा गया है। गुरु ग्रंथ साहिब के प्रारम्भ में ही 'मूलमंत्र' में ओअंकार को केवल और केवल एक ही माना है और उसको सर्वमान्य नाम सति (सत्) दिया है जो समय स्थान की सीमाओं से प्रभावित नहीं होता। आगे जा कर गुरु अरजनदेव जी ने भी 'किरतम नाम कथे तेरे जिहबा।। सतिनामु तेरा परा पूरबला' कहकर व्यक्ति को जीवन के आचरण में सत्य के प्रति संवेदनशील बनने की प्रेरणा दी है।

दूसरे दोष से बचने के लिए और आलस्य तथा निकम्मेपन से भारतवासियों को बचाने के लिए एक ओर तो गुरु नानक देव ने संन्यासियों के झुण्डों की गिनती बढ़ाने से रोकने के फिर प्रवृति मार्ग और उत्तरदायित्वपूर्ण गृहस्थ जीवन पद्धति को अपनाने की बात कही तथा दूसरी ओर परमात्मा को ही सही अर्थों में सबका पिता मानकर भारतवासियों पर हो रहे अत्याचारों को देखकर चुप न बैठने की दुहाई दी। सम्पूर्ण भक्ति साहित्य में गुरु नानक ही ऐसे हैं जिन्होंने पंजाब पर बाबर के हमले को भारत पर आक्रमण माना और भक्ति साहित्य में पहली बार 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग किया। गुरु ने पुकार पुकार कर कहा कि लोगों ने कुत्तों की तरह परस्पर झगड़ों में उलझकर रत्नों जैसे इस देश को मिट्टी में मिला दिया है। ऐसे कर्महीन और जिम्मेदारियों से भागने वाले लोगों को मरने खपने के बाद कोई भी नहीं पूछेगा – 'रतन विगाड़ विगोए कुती मोइआ सार न काई।' करुणा पूर्ण होकर गुरु नानक ने सेवा की अवधारणा दी और प्रेम-भक्ति को मौखिक जमा खर्च का हिसाब न मानकर, केवल हमदर्दी वाला प्रेम न मान कर उसे सेवा भावना से परिपूर्ण प्रेम के रूप में प्रस्तुत किया जो बाद में लंगर आदि संस्थाओं के रूप में विकसित हुआ। तीसरे दोष से बचने के लिए गुरुबाणी ने बाहरी आडम्बरों और पाखण्डों से दूर रहने की प्रेरणा दी जिसे बाद में गुरु गोबिंद सिंह जी की रचनाओं में भी देखा जा सकता है। एक सच्चे भक्त की रूप रेखा को उजागर करते हुए गुरु गोबिंद सिंह कहते हैं कि वास्तविक भक्त वह है जो भक्ति के फलस्वरूप उत्पन्न ज्ञान के झाडू से मानसिक असहायता के कूड़े को अन्तःकरण से बाहर निकाल फेंकता है –

धंन जीउ तहि को जग में मुख ते हरि चित में जुध बिचारै।।
देह अनित न नित रहे जस नाव चड़े भव सागर तारै।
धीरज धाम बनाइ इजै तन बुध सु दीपक जिउ उजीआरै।
गिआनह कीं बढ़नी मनहु हाथ लै कातरता कुतवार बुहारै।।

(दसम ग्रंथ-कृष्णावतार २४९२)

परम सत्य परमात्मा

गुरु ग्रंथ साहिब में आध्यात्मिक अनुभूति के स्वरूप को समझने के लिए पहले यह जानना परम आवश्यक है कि यह भक्ति रूपी अनुभूति जिस परमात्मा के प्रति समर्पित है उस परमात्मा का स्वरूप गुरु ग्रन्थ साहिब में क्या है ? परमात्मा में विश्वास के बिना किसी भी धर्म की वही स्थिति है जो कि आत्मा के बिना शरीर की होती है। आध्यात्मिक मूल्यों की स्वीकृति हमारी बुद्धि को स्वतः ही ईश्वर में विश्वास की ओर ले जाती है। जिन धर्मों में ईश्वर की अवधारणा को अनावश्यक समझा जाता है उनमें भी अंततः धर्मावलंबियों के कर्मकाण्डों एवं पूजा के ढंगों में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से ईश्वर जैसा विश्वास पाया जाता है। इस तथ्य को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम जैन एवं बौद्ध धर्मों के सिद्धान्त एवं साधना पक्ष को देख सकते हैं। तीरथंकर और बोधिसत्वों की मंदिरों में प्रति-स्थापना देवताओं के रूप में ही की जाती है। वस्तुतः परमात्मा में अथवा परमात्मा जैसी किसी शक्ति में विश्वास मानव को जीवन संघर्ष में प्रवृत्त बने रहने के लिए साहस और क्षमता प्रदान करता है। धर्मशास्त्रियों के अनुसार परमात्मा इस प्रकार की अध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक है जो मनुष्य को एक आदर्शवादी लक्ष्य की ओर ले जाती है। परमात्मा केवल मानवतावादी मूल्यों का स्रोत एवं उन्हें धारण करने वाला ही नहीं है बल्कि वह उन मूल्यों का विस्तार करने वाला तथा उनकी सुरक्षा करने वाला भी है। परमात्मा वह आरम्भिक शक्ति है जिसे प्लैटो ने 'इरोस' के नाम से व्हाइट हेड ने 'साहसिक एकात्मता' (Unity of Adventure) के नाम से और भारतीय संस्कृति ने शिवम् के नाम से जाना है।[1]

जब से मानव में आध्यात्मि क चेतना का विकास हुआ है संसार में अनेकों धर्मों का प्रवर्तन हुआ है। इनमें से अधिकांश धर्म परमात्मा में विश्वास रखते हैं। अधिकांश धर्म एक ऐसी शक्ति में विश्वास रखते हैं जो चाहे कुछ भी हो परन्तु मनुष्य से श्रेष्ठ शक्ति है। उस परमात्म-शक्ति को विभिन्न वादों, सिद्धान्तों और मानसिक स्तरों पर विभिन्न तर्कों और प्रमाणों के आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया है। उसके अस्तित्त्व को सिद्ध करने के लिए गुरु नानक तथा अन्य गुरुजन किसी तर्क वितर्क का आश्रय नहीं लेते। वे परमात्मा को अनादि सत्य मानते हुए उसकी उपस्थिति का अनुभव करते हैं।[2]

केनोपनिषद[3] में ब्रह्म वर्णन के संदर्भ में मनुष्य की अक्षमता को स्वीकार किया गया है। मुंडक उपनिषद[4] में यह स्पष्ट किया गया है कि ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उच्चारण विज्ञान, कर्मकांड, संहिताओं, व्याकरण, व्योतपत्ति, छंद शास्त्र और ज्योतिष

आदि में निहित निम्न श्रेणी के ज्ञान (अपरा विद्या) के माध्यम से सांसारिक बौद्धिकता प्राप्त होती है। उच्च ज्ञान (परा विद्या) के माध्यम से ही उस अपरिवर्तनीय (परमात्मा) की अनुभूति होती है। गीता में इसी उच्च ज्ञान (Higher Knowledge) को दिव्य नेत्रों की संज्ञा दी गई है और श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है कि हे अर्जुन तू मुझे अपने इन नेत्रों से वास्तविक रूप में नहीं देख सकता; तू मुझे देख सके इसके लिए मैं तुझे दिव्य नेत्र (उच्च ज्ञान) प्रदान करता हूँ।[५] गुरु नानक, परमात्मा को पूर्ण रूप से समझ कर उसका वर्णन कर सकने में अपनी असमर्थता स्वीकार करते हैं।[६] गुरु अरजन देव, भैतिक चक्षुओं के माध्यम से अर्जित ज्ञान द्वारा आत्मा की (परमात्मा संबंधी जिज्ञासा की) प्यास को बुझाना असम्भव मानते हैं। वे कहते हैं-

लोइण लोई डिठ पिआस ना बुझै भू घणी।
नानक से अखड़ीआं बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी।।[७]

अर्थात् इन आँखों से मेरी प्यास नहीं बुझती; वे आँखें दूसरी हैं जिनके द्वारा प्रियतम को देखा जा सकता है। यहां 'वे आँखें' परा विद्या या उच्च ज्ञान की प्रतीक हैं जो तर्क वितर्क के मार्ग पर न ले जाकर जीव को अनुभूति मार्ग पर ले जाती है।

परमात्मा से सम्बन्धित अवधारणा को सिक्ख धर्म में गुरु ग्रंथ साहिब के प्रारम्भ में, मूल मंत्र में अत्यन्त सूत्ररूप से कहा गया है। मूल मंत्र का सिक्ख धर्म, दर्शन एवं जीवन में बहुत ही महत्त्व है, क्योंकि मूल मंत्र में जो उपाधियां परमात्मा की मानी गई हैं और उन्हें जिस विशिष्ट क्रम में रक्खा गया है वे उपाधियां और क्रम धर्मावलम्बियों के लिए एक सुसंस्कृत, निर्भय, स्वावलम्बी और सुदृढ़ समाज बनाने के लिए दिशा निर्देश हैं। यह मूल मंत्र निम्नलिखित हैं -

"१ ओअंकार सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।"

गुरु नानक देव ने अपने गहन् चिन्तन के फलस्वरूप उपर्युक्त मूल मंत्र दिया है जिसके प्रत्येक शब्द का विचार गुरु ग्रंथ साहिब में परमात्मा की अवधारणा को स्पष्ट करता है।

१ ओअंकार

यदि संख्या वाचक १ को अभी छोड़ दें तो गुरु ग्रंथ साहिब को और मूलमंत्र का पहला शब्द 'ओंकार' जिसे गुरु ग्रंथ में विभिन्न स्थानों पर एकंकार एक ओअंकार रूपों

में लिखा गया है प्रत्येक स्थान पर ब्रह्म का ही प्रतीक है। गुरु अरजन देव 'ओअं' को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए साधु और सतगुरु को नमस्कार करते हैं;[८] क्योंकि यही 'ओंकार' सृष्टि का आदि मूल माना गया है। कबीर के अनुसार यह जगत नाशवान है अतः अविश्वसनीय है। जो इस ओंकार का साक्षात्कार कर लेते हैं अपने को नष्ट होने से बचा लेते हैं।[९] वैदिक साहित्य से लेकर मध्य युग तक इस ओंकार को परब्रह्म के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया गया है। छांदोग्य उपनिषद में भी ओंकार को ही सारे जगत विस्तार का कारण माना गया है और मांडूक्योपनिषद में भी ओंकार को ही सृष्टि का मूल कहा गया है –

'ओमित्येतदक्षरमिंद सर्व तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविऽयदिति सर्वमोंकार एव। यच्चन्यत्त्रिकालातीतं तदर्प्योकार एवं'[१०]

'ओंकार' को अ, उ तथा म के रूप में विश्लेषित करते हुए योग चूड़ामणि उपनिषद (श्लोक ७५-७८) में इसी व्याख्या इस प्रकार से की गई है- 'अकार' स्थूल विराट और विश्वजनीन है, 'उकार' हिरण्यगर्भ है जो प्रकाशमान् एवं सूक्ष्म है तथा 'मकार' शुद्ध बुद्धि तत्व का प्रच्छन्न कारण है। 'अकार' क्रियाशील (रजस) लाल वर्ण का ब्रह्मा है, 'उकार' सात्विक, श्वेत वर्ण का विष्णु है तथा 'मकार' जड़ (तमस) काले वर्ण का रुद्र के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार प्रणव से ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र प्रकट हुए। यह प्रणव (ओंकार) परा तत्व है जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों समाहित हो जाते हैं। केवल प्रणव (ओंकार) ही प्रकाश युक्त एवं स्थायी रहता है।

गुरु रामदास जी गुरु नानक देव के सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि यह ओंकार ही सब स्थानों में व्याप्त है और सब इसी में समाहित होंगे।[११] यह ओंकार ही विभिन्न रूपों में प्रतिभासित होकर सबको अपनी आज्ञा में कार्य करवाता है। गुरु नानक देव ने एक पूर्ण लम्बी वाणी 'ओअंकार' (५४ पद) लिखी है जो गुरु ग्रंथ में संग्रहीत है। इसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि ओंकार ही सारे विश्व का मूल है। ब्रह्मा, चित्त, युग, पहाड़, वेद आदि सब ओंकार प्रसूत हैं। यही नहीं कि भक्तजन केवल ओंकार का ध्यान कर मुक्त हो जाते हैं बल्कि तीनों लोकों का सार भी ओंकार ही है।[१२] यही ओंकार पातंजल योग सूत्र में 'प्रणव' के नाम से जाना गया है[१३] तथा इसे ही गुरु गोबिन्द सिंह ने भी सृष्टि का आदि स्वरूप कहा है।[१४]

ओंकार (ओम) के अ उ म रूप में उपर्युक्त विश्लेषण तथा तद्नुरुप ब्रह्मा विष्णु एवं महेश की त्रिमुर्ति की अवराधणा ने ही वैष्णव और शैव मतों और मतावलंबियों को जन्म दिया। शैव और वैष्णवों में अपने अपने इष्ट देवों को ऊँचा सिद्ध करने के लिए

संघर्ष तथा होड़ का होना नितान्त आवश्यक बन गया। इस संघर्ष तथा वर्ण व्यवस्था को गलत रूढ़िवादी ढंग से समझने के कारण भारतवासी कई सम्प्रदायों जातियों तथा प्रजातियों में बंट गये। गुरु नानक ने सम्पूर्ण भारत और कई अन्य देशों का भ्रमण किया; स्थिति की गम्भीरता को समझा और गहन चिन्तन किया। उन्होंने अनुभव किया कि बहुदेववाद वास्तव में धर्म और धार्मिक जीवन में रुचि को क्षीण करता है तथा लोगों को मात्र कर्मकाण्ड में उलझा कर उनके जीवन को खोखला बना देता है। गुरु नानक देव ने 'ओंकार' के बारे में व्याप्त भ्रमों को दूर करने के लिए मूलमंत्र के निश्चय बोधक संख्या १ लगा दी ताकि उनके शिष्यों में बहुदेववाद को त्याग कर मात्र एक परमात्मा के प्रति रुचि उत्पन्न हो सके। गुरु ग्रंथ में अन्य स्थानों पर भी गुरु नानक तथा अन्य गुरुजनों ने इसी तथ्य की बार बार पुष्टि की है। गुरु नानक कहते हैं-

(क) आपे पटी कलम आपि उपरि लेखु भि तू।
एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू।।[१५]

(ख) जेता सबदु सुरति धुनि तेती जेता रूपु काइआ तेरी ।।
तूं आपे रसना आपे बसना अवरु न दूजा कहउ माई।।१।।
साहिबु मेरा एको है। एको है भाई एको है।। १ ।।[१६]

(ग) एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरबु विआपै।
अंतर बाहरि एकु पछाणै इउ घरु महलु सिञापै।
प्रभु नेड़ै हरि दूरि न जाणहु एको स्रिसटि सबाई।।
एकंकारु अवरु नही दूजा नानक एकु समाई।।[१७]

सिक्ख गुरुजनों ने परम तत्व-चिन्तन में भारतीय परम्पराओं में जहाँ एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया वहीं साथ ही साथ भारत में स्थाई रूप से बस चुके मुस्लिम विश्वासों का भी हिन्दु विश्वासों के साथ यथा-सम्भव समनृवय किया। गुरु अरजन देव कहते हैं-

(क) कहु नानक गुरि खोए भरम।
एको अलहु पारब्रहम।।[१८]

(ख) अलहु गैबु सगल घट भीतरि हिरदै लेहु बिचारी।
हिंदू तुरक दुहूं महि एकै कहै कबीर पुकारी।।[१९]

सतिनामु

सिक्ख गुरुजन ईश्वर के सत्य स्वरूप पर बहुत अधिक जोर देते हैं। नानक वाणी 'सिध गोसटि' में ही लगभग ४५ बार गुरु नानक देव ने सत्य और परमात्मा में एकात्मता स्वीकार की है। गुरु नानक जपु जी के मंगलाचरण में भी कहते हैं कि सत्य ही प्रारम्भ में था, वर्तमान में भी सत्य ही सर्व व्यापक है तथा भविष्य में भी सत्य ही होगा (आदि

सचु जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु।।) ब्रह्म को 'सत्य' या 'परम सत्य' मानते हुए इस बात की पूरी सम्भावना है कि हम 'सत्य कया है ?' जानने के बारे में उत्सुक हों। इस प्रश्न का उत्तर ढूँढता हुआ व्यक्ति निश्चित रूप में सत्याचरण की ओर उन्मुख होगा तथा परम सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। परिणामस्वरूप परम सत्य और उसके संसार-चक्र के साथ संबंध के रहस्य खुलने शुरु हो जाएंगे तथा व्यक्ति के भीतर चल रहे द्वन्द और तनावों का शमन हो सकेगा। सिक्ख धर्म का यह विश्वास है कि परमात्मा के सभी तथाकथित नाम केवल उसकी विभिन्न क्रियाओं पर आधारित विभिन्न नाम हैं। ये अलग-अलग नाम उसकी सम्पूर्णता, समग्रता को प्रदर्शित करने के लिए अपर्याप्त हैं और साथ ही साथ उसकी अनंतता को सीमित करने का भी परोक्ष साधन हैं। उसका वास्तविक नाम 'सतिनामु' या 'सत्य ही हो सकता है[२०] क्योंकि सत्य के साथ उपर लिखे दोष घटित नहीं होते। गुरु नानक कहते हैं कि सत्य न तो कभी पुराना होता है ओर न ही कभी खण्ड-खण्ड होता है।[२१] हमेशा यही सम्पूर्ण, समग्र एवं व्यापक होता है।'

करता पुरखु

गुरु नानक देव ब्रह्म को कर्ता पुरुष मानते हैं। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती हे कि विश्व के पदार्थो को देख कर उनकी रचना की कल्पना बिना किसी कर्ता के करना असंभव सा लगता है। पदार्थ स्वयं ही उत्पन्न हो गए होंगे या शून्य से पैदा हो गए होंगे मानना भी असंगत हैं। यद्यपि मानव में अद्‌भुत मानसिक शक्तियां हैं और उनके द्वारा वह प्रकृति को काफी हद तक काबू कर लेने में भी समर्थ हो चुका है परन्तु फिर भी अभी तक उसने स्वयं को विश्व का कर्ता होने का दावा नहीं किया। विश्व की रचना की बात तो दूर रही वह स्वयं इस महान विश्व में एक छोटी की कृति है। जब पदार्थ स्वयं उत्पन्न नहीं हुए और न ही मनुष्य ने उन्हें बनाया है तो निश्चय ही प्रकृति और मनुष्य की रचना करने वाला कोई और ही है। यह वही अगम्य कर्ता पुरुष है जिसने गुरु नानक के कथनानुसार विभिन्न प्रकार के गुणों और रंगों से भरपूर विश्व का निर्माण किया है।[२२] सभी चिन्तक परोक्ष या अपरोक्ष रूप से यह स्वीकार करते हैं कि इस विश्व के पीछे कोई महान् अज्ञात शक्ति है। इसी सृजनात्मक शक्ति को गुरु नानक 'कर्ता पुरखु' कहते है। अपनी इसी अवधारणा की पुष्टि में गुरु नानक उसे आदि पुरुष (आदि पुरखु) भी कहते हैं और इस प्रकार सांख्यवादियों की पुरुष की अवधारणा जिसके अन्तर्गत सांख्यवादी प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि मानते हैं तथा पुरुष को निष्क्रय अकर्ता मानते हैं से भिन्न अपना मत व्यक्त करते हैं। सिक्ख दर्शन में केवल ब्रह्म को अनादि माना है और उसे प्रकृति का भी कर्ता माना गया है।[२३]

संसार की बृहदता और उपादानों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि कर्ता पुरुष

एक विराट शक्ति का भंडार है अथवा वह अद्वितीय रूप से शक्तिशाली है। केवल इतना ही नहीं विश्व की जटिल किन्तु अद्‍भुत संरचना स्व पूर्णता एवं संगठन इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि यह 'कर्ता पुरुष' अपनी सर्म्पूण रचना के परम ज्ञान का अधिष्ठान है। परम तत्व का कर्ता आयाम हमें यह अनुभव कराता है कि हमें अत्यधिक रूप से सक्रिय जीवन्त और योजनाबद्ध होना है ताकि हम भी जीवन में विश्व के उस महान् कर्ता के अनुरूप नियमबद्धता, सौष्ठव एवं नियंत्रण स्थापित कर सकें।

यह तथ्य कि सृष्टि किसी 'कर्ता' की रचना है, सिद्ध करता है कि यह विश्व जब नहीं था, कर्त्ता उस समय भी था। जब परमात्मा इस विश्व की रचना कर सकता है तो इस विश्व में कोई भी आपात् परिवर्तन करने का अधिकार भी उसके पास है। गुरु नानक कहते हैं कि यदि वह (कर्ता पुरुष) चाहे तो शेर, बाज और मांसाहारी जीव घास खाने लग जाएँ और शाकाहारी जीव मांसाहारी बन जाएं। वह चाहे तो नदियों में द्वीप बना दे और वह चाहे तो रेगिस्तानों को समुद्र में परिवर्तित कर दे।[२४] कर्ता पुरुष वह शक्ति है जो सारी सृष्टि को लय कर सकता है और यदि चाहे फिर इसे चेतनता प्रदान कर सकता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यह कर्त्ता पुरुष विश्व से पूर्णतया स्वतन्त्र है जबकि सर्म्पूण विश्व अपने अस्तित्व और अनुरक्षण के लिए उस कर्ता पर आधारित है। इस प्रकार विश्व स्वयं सिद्ध कर रहा है कि कर्ता पुरुष सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, स्वयंभू, जीवन्त, क्रियाशील, दयालु बुद्धिमान एवं अनादि है। यह वही 'कर्ता पुरुखु' है जिसे गुरु नानक, अन्यत्र, सहस्त्रों चक्षुओं वाला परन्तु फिर भी चक्षुहीन, सहस्त्रों पैरों वाला परन्तु फिर ही पदविहीन परमात्मा कहते हैं। इस कर्ता की आरती[२५] गगन रूपी थाली में रवि और चंद्र को दीपक बना कर, तारिकाओं को मोती मान कर, मलयानिल समीर को धूप-बत्ती, पवन को चंवर और सारी बनस्पति को फूल मान कर की जा रही है।

सांख्य की अवधारणा के अनुसार पुरुष असंख्य हैं। सिक्ख धर्म में वह पुरुष केवल एक है और बाकी सारी सृष्टि उसके लिए स्त्री रूप हैं।[२६] सारी सृष्टि स्त्री के प्रतीकात्मक रूप में उस एक की पुरुष (परमात्मा) के द्वार पर खड़ी उसके द्वार में प्रवेश की इच्छुक है।[२७] लेकिन इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि गुरु नानक देव ने परम तत्व को किसी मनुष्य की आकृति के रूप में माना है। इस तथ्य को ये गुरु ग्रंथ में अन्यत्र स्पष्ट करते हुए कहते हैं:

सुंन मंडल इक जोगी बैसे। नारि न पुरखु कहो कोउ कैसे।[२८]

अर्थात् (मेरे) शून्य मंडल में एक योगी विराजमान है जो न तो नारी है और न ही पुरुष है।

निरभउ निरवैरु

परमात्मा के ये विशेषण उसे किसी विशेष जाति, सम्प्रदाय या देश का परमात्मा न मानकर सारी मानवता का परमात्मा घोषित करते हैं। परम तत्व की इन उपाधियों के आधार पर ही सिक्ख धर्म में मानव मात्र के भ्रातृत्व और एक परमात्मा के पितृत्व की भावना भरी गई है। परमात्मा के नियम न्यायपूर्वक कार्यरत हैं। केवल वही निर्भय और बैर रहित हो सकता है जो सभी को सम्पूर्ण रूप से जानता है परन्तु फिर भी किसी विशेष से सम्बन्धित नहीं है। वह "निरभउ निरवैर" ब्रह्म के सिवा अन्य कोई और नहीं हो सकता।

अकाल मूरति

इस शब्द का सिक्ख धर्म के विश्वास और साधना पक्ष से घनिष्ठ संबंध है। इसके माध्यम से कालातीत प्रभु के अनादि होने की ओर संकेत किया गया है। गुरुवाणी में अन्यत्र भी गुरु नानक उसे अलक्ष्य, अगम्य और कालातीत मानते हैं। गुरु अमरदास मानते हैं कि अदृष्य सर्वव्यापक परमात्मा को अदृष्य 'शबद' की साधना के फलस्वरूप ही अनुभव किया जा सकता है। उसकी बराबरी का कोई नहीं है और वह कालातीत है।[२९]

अजूनी

इस शब्द के माध्यम से ब्रह्म का वर्णन करते हुए गुरु नानक अवतारवाद के सिद्धान्त के प्रति अपनी अनास्था प्रकट करते हैं। अवतारवाद के सिद्धान्त के फलस्वरूप उत्पन्न अनेकों मत मतान्रों के गोरखधन्धों से बचने की बात जहाँ गुरु नानक कहते है वहीं साथ ही साथ परमतत्व को जन्म मरण और आवागमन से भी परे मानते हैं।[३०]

सैभं

इस शब्द की संस्कृत मूल धातु 'स्वयंभू' है जिसका अर्थ स्वयं प्रकाशित होना है। परमात्मा किसी की रचना नहीं हैं। गुरु ग्रंथ के प्रारम्भ में ही इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि न तो उस परमात्मा की स्थापना की जा सकती है और न ही उसे कोई बना सकता है।[३१] वह स्वयंभू है। गुरुमत ब्रह्मा विष्णु महेश और अन्य देवताओं को परमात्मा की ही रचना मानता है। यही नहीं बल्कि सामान्य जीवों की तरह ये देवी देवता भी उस परमात्मा के बारे में बहुत कम जानते हैं।[३२]

गुर प्रसादि

उपर्युकत गुणों वाला ब्रह्म गुरु की कृपा से प्राप्त किया जा सकता है जो कि गुरु नानक के अनुसार मानव और दैवी दोनों गुणों का धारक कोई ब्रह्मज्ञानी ही हो सकता है जिसे बाद में गुरु अरजन देव जी ने परमेश्वर ही माना है।

गुरु नानक का ब्रह्म माला के धागे की तरह सभी मनकों में समाया हुआ भी है और सबका आधार भी है। वह गहन-गंभीर-अनंत-अपरिर्वतनीय और केवल एक ही एक है - 'आपे होवहि गुपतु आपे परगटीऐ। कीमति किसै न पाइ तेरी थटीऐ। गहिर गभीरु अथाहु अपारु अगणतु तूं। नानक वरतैं इकु इको इकु तूं'[३३]। आध्यात्मिक आकर्षण की तीव्रता के अन्तर्गत वह आमतौर पर अप्रकट मानवी संवेदनाओं का विषय बन जाता है और गुरु नानक ने एक समर्पित भक्त और उत्साह से सराबोर रहस्यवादी होने के नाते निर्गुण ब्रह्म को अपने आत्मचिन्तन का मुख्य विषय बनाया है ; परन्तु गुरु नानक का ब्रह्म तटस्थ निर्गुणवादी नहीं है जिसे इस संसार के दुःख-क्लेशों, प्रताड़नाओं से कुछ भी लेना-देना नहीं है। शोषण, लूट और भारतीयों के कत्लेआम को देखकर गुरु नानक का यही निर्गुण सारे गुणों समेत सगुण हो उठता है और गुरु नानक भारत की दुर्दशा का जिम्मेदार जहां भारतीयों को स्वयं मानते हैं वही साथ-ही-साथ उस प्रभु को भी स्वामियोचित सामर्थ्य दिखाने के लिए ललकारते हैं। बाबर के भारत पर आक्रमण को गुरु नानक ने अपनी आँखों से देखा था। इस आक्रमण के फलस्वरूप पैदा हुई कड़वाहट, भारतवासियों की बेबसी को उन्होंने अपनी रचना बाबरवाणी में बिना किसी संकोच के प्रकट किया है-

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराइआ ....
एती मार पई करलाणें तैं की दरद न आइआ।[३४].......

तथापि गुरु ग्रंथ साहिब का मुख्य स्वर निर्गुण ब्रह्म ही है जिसे आवश्यक तौर से गुणविहीन न मानकर सभी गुणों से परे माना जाना चाहिए। इस तरह वह सगुण भी है और निर्गुण भी। वह आदिकाल में भी सत्य था, युगादि में भी सत्य था, वह वर्तमान में भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य रहेगा। इस सत्य को भक्ति, समर्पण और गहन् विश्वास के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। यहां यह बताना भी अनुपयुक्त नहीं है कि गुरुवाणी में परमात्मा अधिकतर या तो सत्य अथवा सत्य स्वरूप में माना गया है। गुरुग्रंथ साहिब का गम्भीर अध्ययन यह बताता है कि गुरुजन प्रभु अनुभूति, स्मरण की बात तो करते ही हैं पर सत्य के स्वरूप और आवश्यकता पर भी वे कम जोर नहीं देते। कुछ स्थलों पर तो गुरु नानक सत्य को सर्वोपरि मानते हुए यहां तक कह जाते हैं कि सत्य से भी ऊँचा सत्याचरण है; जो व्यक्ति को आदर्श व्यक्ति 'गुरुमुख' बनाता है। जपुजी की प्रमुख समस्या सत्य की अनुभूति है और जपुजी का अन्त भी सचखंड के वर्णन पर होता है। नानक वाणी 'सिधगोसटि' में भी गुरु नानक प्रारंभ में ही योगियों से पूछते हैं कि हे योगियो, क्या तीर्थ भ्रमण अथवा मात्र देशाटन से सच्चा और पवित्र हुआ जा सकता है। सत्य के प्रति गुरुवाणी की विशेष चिन्ता यह बताती है कि जब तक सत्याचरण नहीं बनता, सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध नहीं जगता, एक दूसरे के यथार्थ को अनुभव नहीं किया

जाता, परमात्मा की बात करना कोई अर्थ नहीं रखता। सत्यानुभूति ही वास्तव में परमात्मा की अनुभूति है जिसे यहीं इस संसार में रहकर अनुभव किया जा सकता है और इसके लिए वनों-कन्दराओं में जाकर समाधिस्थ होने की आवश्यकता नहीं है। गुरु नानक ने जपुजी में परमात्मा को 'सचखंड' (सत्य प्रदेश) का निवासी बताया है जहां वह चिरन्तन आनन्द में सराबोर हो लगातार कार्यशील है – 'सचखंडि वसै निरंकार। करि करि वेखै नदरि निहाल।'[३५] यह सचखंड (सत्य प्रदेश) कोई भौगोलिक स्थान नहीं वरन् स्थानातीत है। इसलिए यह कहना कि परमात्मा 'सचखंड' में निवास करता है यह कहने के तुल्य ही है कि निराकार परमात्मा स्वयं निराकार 'सचखंड' अथवा सत्य ही है। डॉ. सुरेन्द्र नाथ दास गुप्ता के अनुसार मध्य युग में प्रागैतिहासिक कथाओं का जनसाधारण में इतना अधिक प्रचलन था कि उस पौराणिक विश्वास से भक्त भी अछूते नहीं रह सके जिसके अनुसार परमात्मा का विशेष आकार वस्त्र, गहने आदि होते हैं। इन भक्तों ने कभी यह सोचने की चेष्टा नहीं की कि इन कथाओं और इनके पात्रों को प्रतीकात्मक रूप से किसी अन्य तरीके से भी समझा-समझाया जा सकता है। भक्तों ने भी इन मानवीकृत रूपों को हूबहू सही मान लिया और वैष्णवी भक्ति धारा के माध्यम से अपनी संवेदनाओं का प्रकटीकरण करते रहे। यह बड़ी आसानी के साथ कहा जा सकता है कि हाथों-पैरों और वस्त्रों वाला परमात्मा तो नाशवान होगा, परंतु इस तथ्य को इस प्रकार भी समझा जा सकता है। क्योंकि परमात्मा के आकार, निवास स्थान आदि पराभौतिक जगत का खेल माने गए हैं इसलिए नश्वरता के भौतिक नियम उस पर लागू नहीं किए जा सकते।[३६] प्रभु की विराटता और रहस्यात्मकता हमेशा भक्तों के लिए आकर्षण का अनन्त स्रोत रहे हैं।

तथापि परमात्मा के अवतारवादी रूप को गुरु ग्रंथ साहिब में अमान्य ठहराया गया है। गुरु नानक देव यह मानते हैं कि पहले से ही सर्वशक्तिमान मानी जाने वाली परमसत्ता प्रभु की महानता में यह कह कर और अधिक चार-चांद नहीं लगाए जा सकते कि उसने रावण अथवा कंस को मारा है।[३७] परमात्मा एक अद्भुत जादूगर है जिसके लिए अपना ही तमाशा अपने लिए कोई हैरानी पैदा करने वाला नहीं हो सकता। वह स्वयं ही पति-पत्नी है, संसार की रचना करके वह स्वयं ही इसका आनन्द लेता है। ब्रह्म स्वयं ही गाय, बछड़ा और दूध है और स्वयं ही सारे शरीरों का आधार है। वह स्वयं ही कार्य, कर्ता और स्वयं ही गुरमुख बन कर अपना चिंतन स्वयं ही करता रहता है।[३८] वह स्वयं ही सागर, बुलबुला और स्वयं ही सूक्ष्म बीज है जो सृष्टि रूपी स्थूल रचना बना हुआ है और जिसकी शाखाएं सम्पूर्ण देश-काल में फल-फूल रही है।[३९] ब्रह्म का यही सगुण स्वरूप है जिसे गुरु ग्रंथ साहिब में भक्तों द्वारा मां, पिता, भाई, मित्र पति आदि कहा गया है। वह तो एक महान् सुलतान है जिसे मामूली सिपहसालार कह कर उसकी महिमा गाने की कोशिश की जा रही है।[४०]

विनम्रता से भरे हुए गुरु नानक देव मानवता की इस कमज़ोरी को भली भांति समझते हैं और उस प्रभु को ही गुरुओं का भी गुरु स्वीकार करते हैं।[४१]

गुरु नानक देव ने परमात्मा के लिए तत्कालीन प्रचलित शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। उन्होंने परमात्मा को भगवंत गोसाई, जगन्नाथ गोपाल, गोबिंद, नारायण, राम, वासुदेव आदि कहने में कोई संकोच नहीं किया है परन्तु वे अवतारवाद में बिलकुल विश्वास नहीं करते। वैसे भी गुरु नानक देव की अवधारणा के आदर्श जीवन में देवी देवता समायोजित नहीं हो पाते क्योंकि गुरु नानक अज्ञान, दुविधा, निष्क्रयता, घृणा और सांप्रदायिक वैमनस्य आदि के बंधनों से आज़ादी के लिए समूची मानवता के परस्पर सामूहिक प्रयत्न की मांग करते हैं। इसीलिए समूची मानवता के एक मात्र परमात्मा को गुरु ग्रंथ साहिब के प्रारम्भ में केवल एक और एक ही परमसत्ता मानते हैं।[४२] अन्य सभी देवी देवता आदि को गुरु साहिबान ने साधारण और महामानवों के वर्ग में ही रक्खा है। शिव, ब्रह्मा, इन्द्र को परमात्मा के द्वार पर स्तुतिगान करते हुए दिखाया गया है।[४३] गुरु नानक इन सब को उन्हीं के अन्तर्गत मानते हैं जो उस अनन्त, अदृष्ट परमात्मा के रहस्यों को जानने के लिए व्याकुल हैं।[४४] तथाकथित अवतारों को गुरु ग्रंथ साहिब में ऐसे महामानव राजागण के रूप में देखा गया है जिन्होंने अपने अपने युग में लोक भलाई के इतने कार्य किए कि लोग उन्हें प्रभु का अवतार समझ कर ही उनका स्तुतिगान करने लगे - जुगहि जुगहि के राजे कीए गावहि कर अवतारी (गु. ग्र. सा. पृ. ४२३)। मूर्तिपूजा को गुरु ग्रंथ साहिब कोई महत्व नहीं देता क्योंकि इसमें यह माना गया है कि परम सता की न तो सृजना भी जा सकती है और न ही उसकी स्थापना की जा सकती है ; वह अरूप एवं गुणातीत है। गुरु ग्रंथ के वाणीकारों की यह तीव्र इच्छा प्रतीत होती है कि दुराग्रहों के कारण पैदा होने वाली साम्प्रदायिक संकीर्णताओं को मिटा कर लोगों को धार्मिक जीवन की परिधि में लाया जाए और दर्शन को आत्मदर्शन के अर्थों में जीवन की क्रियाओं में प्रयुक्त किया जाए न कि खंडन, मंडन और शत्रुभाव को बढ़ाने के लिए इसका प्रयोग किया जाए।

संदर्भ

१. डॉ. लक्ष्मीनिधि शर्मा- 'धर्म दर्शन' वाराणसी, १९७२, पृष्ठ ३१७

२. (क) कि जाहर जहूर है।। कि हाजर हजूर है।। गुरु गोबिंद सिंह, जापु साहिब

(ख) जह जह देखा तह तह सोई- गुरु अरजन देव, गुरु ग्रंथ, पृष्ठ १३४३

(ग) बेद कतेब संसार हभाहूं बाहरा।
नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा-वही-पृष्ठ ३१७

३. १.३

४. १.१.५

५. ८.११

६. तेरी गति मिति तूहै जाणहि किआ को आख वखाणै-गुरु नानक गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ६४६

७. गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ५७७

८. 'ओअं साध सतगुर नमसकारं'- गुरु ग्रंथ, पृष्ठ २५०

९. 'ओअंकार आदि मैं जाना। लिख अरु मेटै ताहि न माना।।
ओअंकार लखे जउ कोई। सोइ लखि मेटणा न होइ।। गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ ३४०

१०. २, २३, ३

११. ओअंकारि एको रवि रहिआ सभु एकस माहि समावैगो।
एको रूपु एको बहु रंगी सभु एकतु बचनि चलावैगो- गुरु ग्रंथ, पृष्ठ १३१०

१२. ओअंकारि ब्रहमा उतपति। ओअंकारु कीआ जिनि चिति।
ओअंकारि सैल जुग भए। ओअंकारि बेद निरमए।...
ओनम अखर सुणहु बीचारु। ओनम अखरु त्रिभवण सारु। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ६२९

१३. १.२३

१४. ओअं आदि रूपै।। अनादि सरूपै।। १२८।। जापु साहिब।

१५. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ १२६१

१६. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ ३५०

१७. वही- पृष्ठ ६३०

१८. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ ८६७

१९. गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ ४८३

२०. गुरु अरजन देव-किरतम नाम कथे तेरे जिहबा।। सतिनामु तेरा परा पूरबला। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ १०८३

२१. सचु पुराणा होवै नाही सीता कदे न पाटै।। गुरु ग्रंथ साहिब, पृष्ठ ६५५

२२. तूं करता पुरखु अगंमु है आपि स्रिसटि उपाती।
रंग परंग उपारजना बहु बहु बिधि भाती।। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ १३८

२३. गुरु नानक देव- "आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाउ।
दुयी कुदरति साजीअ करि आसणु डिठो चाउ।। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ४६३

२४. सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह।
घाहु खानि तिनां मासु खवाले एह चलाए राहु।। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ १४४

२५. गगन मैं थालु रवि चंदु दीपकु बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती।
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती। अनहता सबद वाजंत भेरी।।
गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ६६३

२६. गुरु नानक- "ठाकुर एक सबाई नारि"-गुरु ग्रंथ, पृष्ठ १३३

२७. वही- इको कंतु सबाईआ जिती दरि खड़ीआह

नानक कंते रातीआ पुछहि बातड़ीआह।। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ७६०

२८. वही, पृष्ठ ६८५

२९. तू अकाल पुरखु नाही सिरि काला।
तू पुरखु अलेख अगंम निराला।। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ११३८

३०. साहिबु मेरा सदा है दिसै सबदु कमाइ।
उहु अउहाणी कदे नाहि न आवै न जाइ।। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ५०१

३१. थापिआ न जाइ कीता न होइ। आपे आपि निरंजन सोइ। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ २

३२. गुरु अरजन देव- 'महिमा न जानहि बेद। ब्रहमे नहीं जानहि भेद।
अवतार न जानहि अंतु। परमेसरु पारब्रह्म बेअंतु ।। रहाउ।।
संकरा नहीं जानहि भेव। खोजत हारे देव।। गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ८९४

३३. वही, पृ. २६६

३४. वही, पृ. ३६०

३५. वही, पृ. ७

३६. ए हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी, जिल्द IV, पृ. २६

३७. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. ३५०
'पउणु उपाइ धरी सभ धरती जल अगनी का बंधु कीआ।
अंधुलै दहसिरि मूंडु, कटाइआ रावणु मारि किआ वडा भइआ।....

३८. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. ११६०
'आपे बछरू गऊ खीरु। आपे मंदरु थंमु सरीरु।।३।।
आपे करणी करणहारु। आपे गुरमुखि करि बीचारु।४।।

३९. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. १०२
तूं पेडु साख तेरी फूली। तूं सूखमु होआ असथूली।
तूं जलनिधि तूं फेनु बुदबुदा तुधु बिन अवरु न भालीऐ जीउ।।२।।

४०. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. ७९५
'तू सुलतानु कहा हउ मीआ तेरी कवन बडाई।
जो तू देहि सु कहा सुआमी मैं मूरख कहणु न जाई।'

४१. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. ३५७
'गुरु गुरु एको वेस अनेक'

४२. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. १

४३. वही, पृ. ६
'गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे।

४४. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. १०२२
ब्रह्मा बिसनु महेसु दुआरै। ऊभे सेवहि अलख अपारै।
होर केती दरि दीसै बिललादी मै गणत न आवै काई हे।

४५. गुरुग्रंथ साहिब, पृ. २

परम सत्य की अनुभूति का विकास क्रम

परम सत्य स्वरूप परमात्मा की अनुभूति सभी, धर्मों और धर्म-ग्रंथों का प्रमुख विषय रही है। गुरु ग्रंथ साहिब में परमात्मा को जहां पारम्परिक अर्थों में समझा और याद किया गया है वहीं गुरु ग्रंथ में उसके सत्य स्वरूप आयाम का वर्णन भी बहुत अधिक आता है। मूलमंत्र में ओअंकार को जहां एक ही माना है वहीं तथ्यों को नामरूप के माध्यम से ही समझ पाने वाले मानव मात्र की सुविधा के लिए ओअंकार को सर्वप्रथम सति (सत्-सत्य) नाम कहा गया है। 'सत्' विश्व का आधारभूत सर्वातिशायी वह परम तत्व है जो जीवन के सत्य रूप में विश्व में क्रियाशील बना रहता है और जीवन के संतुलन को बनाए रखने के लिए जीवों को प्रेरित करता रहता है। इस सत्य की खोज और साक्षात्कार के लिए हर धर्म के संस्थापक ने समय समय पर कुछ विशेष रुकावटों और अड़चनों को अनुभव किया है। इन रुकावटों को दूर करने के लिए हर चिंतक ने अपनी अपनी अनुभूति के आधार पर कुछ विशेष तथ्यों और मुद्दो की जानकारी अपने अनुयायीओं को दी है जिसे वे मानकर जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं। परम सत्य की अनुभूति के लिए बौद्ध धर्म दशभूमियों का और योगशास्त्र अष्टांग मार्ग के रूप में आठों अलग अलग परन्तु एक दूसरे से जुड़े हुए कदमों का वर्णन करता है। इस्लाम में भी इसी प्रकार तरीकत, हकीकत, मारिफत आदि अवस्थाओं का ब्यौरा मिलता है जिन्हें पार करके साधक परम सत्य का साक्षात्कार करता है। गुरु ग्रंथ साहिब में गुरु नानक देव की 'जपु' वाणी एक ऐसी सूत्रात्मक शैली वाली रचना है जिस में जनसाधारण के सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन के साथ संबंधित लगभग सभी अड़चनों को दूर करने की विधि को समझाया गया है। इस रचना के आरम्भ में ही व्यक्ति के सचिआर (सत्यशील) बनने की समस्या को हाथ में लिया गया है और इस लम्बी वाणी के सभी पद जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों पर प्रकाश डालते हुए अन्त में सचिआर और सत्य-खंड की संरचना और अनुभूति के वर्णन के साथ ही समाप्त होते हैं।

सिक्ख धर्म में स्वानुभूति का अर्थ सत्य का साक्षात्कार करने का साहस और प्रयत्न है। गुरु ग्रंथ साहिब में सत्य के साथ अधिक लगाव पर इसीलिए अधिक बल दिया गया है क्योंकि गुरु साहिबान ने यह जाना हुआ था कि सत्य ही व्यक्ति को स्वाभिमानपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा दे सकता है जबकि निर्गुण ब्रह्म का मात्र चिंतन व्यक्ति को संसार के दुख-सुख और जिम्मेदारियों से पलायन की प्रेरणा तो देता ही है साथ ही साथ उसे यहां त्यागी के नाम से प्रसिद्ध करके उसके अंहकार को और चारा डालने का वंचक-प्रबन्ध भी करता है। सिक्ख धर्म जीवन के प्रति ऐसी ठगबाजी से पूर्णतः सचेत होकर चलने की

प्रेरणा देता है और इसी संदर्भ में गुरु ग्रंथ साहिब की पहली ही वाणी 'जपु' के अन्त में पांच ऐसे पड़ावों का संक्षेप वर्णन हुआ है जिन के माध्यम से बिना किसी के विशेष मार्गदर्शन के व्यक्ति सत्य को जीवन में उतार कर समाज के लिए और स्वयं के लिए उपयोगी बन सकता है।

'जपु' के चौंतीसवें पद में सबसे पहली अवस्था का वर्णन है जिसमें स्पष्ट रूप से बताया गया है कि परम प्रभु ने इस ब्रह्मांड की रचना की है और इस धरती के लिए जीव को धर्म की शिक्षा का एक केन्द्र (धर्मसाल) बनाया है। इस अवस्था को धर्मखण्ड' कहा गया है। सम्पूर्ण पद इस प्रकार है -

राती रुती थिती वार।। पवण पाणी अगनी पाताल।।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग।।
तिन के नाम अनेक अनंत।।
करमी करमी होई वीचारु।। सचा आपि सचा दरबारु।।
तिथै सोहनि पंच परवाणु।। नदरी करमि पवै नीसाणु।।
कच पकाई ओथै पाइ।। नानक गइआ जापै जाइ।। ३४।।

इस पद में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि जीवन के प्रमुख आधार इस धरती को यहां धर्मशाला (सराय) कहा गया है। सराय आम तौर पर ऐसे स्थान को कहा जाता है जो किसी मंज़िल विशेष तक पहुंचने वाले पथिक के लिए कुछ समय के लिए विश्राम स्थान का काम करता है। वह स्वयं मंज़िल नहीं होती परन्तु मंज़िल तक पहुंचाने के लिए व्यक्ति को ताज़ा-दम करने में सहायक होती है। धरती रूपी धर्मशाला का आध्यात्मिक अनुभूति के लिए एक अपना विशेष महत्व है परन्तु जो इस सराय को ही अपनी मंज़िल मान लेते हैं वे परम सत्य रूपी अंतिम उद्देश्य से दूर ही बने रहते हैं। एक सच्चे साधक और आम व्यक्ति में यही अन्तर है कि पहला तो धरती को विश्राम स्थान रूपी एक पड़ाव के रूप में मानता है और अपनी चेतना (सुरति) को सत्य के लक्ष्य पर लगाए रहता है जब कि दूसरा इसी को अपना पक्का ठिकाना माने बैठा रहता है।

जो व्यक्ति संसार में रहते हुए भी इसके साथ गहरा लगाव अथवा मोह नहीं रखते वे सांसारिक नहीं बनते ; वे निश्चित रूप से जीवन-मुक्त अवस्था के पथिक होते हैं। आम तौर पर सांसारिक पदार्थों को इक्ट्ठा करते जाना ही जीव का लक्ष्य मान लिया जाता है परन्तु उपर्युक्त पद में गुरु नानक देव अनुभव करते हैं कि अपने आस पास के व्यक्तियों को अपने ही सहयात्री मानकर एक सत्याभिलाषी व्यक्ति इस धरती रूपी धर्मशाला से ही

अपनी साधना शुरू करता है। सही अर्थों में आध्यात्मिक जीव जो कुछ प्राप्त है उसी में संतुष्ट बना रहकर कार्यशील बना रहता है और परमात्मा के सामने यह नहीं कि अपने गिले-शिकवे ही नहीं पेश करता अपितु साथ ही साथ अपने प्रति पूर्ण रूप में यह सोचकर असंतुष्ट बना रहता है कि परम सत्य परमात्मा से साक्षात्कार के लिए उसकी अपनी तैयारी अभी अधूरी है और उसने अपने आपको अभी और लायक बनाना है। जब व्यक्ति को अपने अधूरेपन का एहसास हो जाए तो फिर वह अवश्य ही जीवन की कठोर सच्चाईयों के साथ जूझता हुआ अपने समूचे रूपांतरण के तैयार होने का प्रयत्न आरम्भ कर देता है।

वस्तुतः प्रारम्भ में वह सत्य की अनुभूति के लिए इतना चिन्तातुर नहीं होता जितना वह अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी से भागने की लज्जा को अनुभव करके अपने नैतिक पतन के प्रति सावधान होता है। इसलिए सबसे पहले वह अपने अन्तर्मन में डूबता है और अपनी आत्मा से सच्ची मित्रता स्थापित करता है। उसे पूर्णता स्पष्ट हो चुका होता है कि परमात्मा ने इस धरती को हमारे लिए एक ऐसा स्थान बनाया है जहां हम अपने सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व निभा सकते हैं। इसी भावना के अन्तर्गत जीव अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपने पर्यावरण की अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बना रहता है ताकि अपने सहयात्रियों के साथ समरस हुआ जा सके। यह जान लेना भी उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि यह संसार एक ऐसी धर्मशाला है जिसमें माता, पिता, भाई, बहन के रूप में हम अनेकों व्यक्तियों से मिलते हैं, उनके साथ विचरण करते हैं परन्तु हमें इन सारे सांसारिक संबंधों के साथ गहरा लगाव नहीं रखना चाहिए। सत्य के साक्षात्कार के लिए हमें इन सभी संबंधों को छोड़कर आगे चलना होगा। एक अन्य तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि किसी अन्य व्यक्ति ने हमें सत्य का साक्षात्कार नहीं करवाना है। गुरु हम पर कृपा तो कर सकता है, मार्ग बता सकता है परन्तु उस मार्ग पर चलना स्वयं ही पड़ता है। धर्म ग्रंथ और गुरुजनों से कुछ बल और दिशा-निर्देश तो प्राप्त किया जा सकता है परन्तु उस शक्ति का सद्प्रयोग तो हमें स्वयं ही करना होगा। परम सत्य तक पहुंचने का कोई भी 'रैडीमेड' रास्ता नहीं है ; हमें स्वयं ही अपना रास्ता बनाना होगा।

'जपु' के उपर्युक्त पद में जहां धरती को 'धर्मसाल' कहा गया है वहीं बड़े सुन्दर ढंग से यह भी बताया गया है - तिसि विचि जीअ जुगति के रंग।। अर्थात इस धरती पर अनेकों ही रंगों और जीवन-युक्तियों वाले जीव विद्यमान हैं। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि धरती पर कोई भी जीव आकार और स्वभाव में दूसरे जैसा नहीं है। जीव-विज्ञान भी यही बताता है कि व्यक्ति का हर अंग रचना के हिसाब से दूसरे व्यक्ति के उन्हीं अंगों से अच्छा या कम अच्छा हो सकता है परन्तु ठीक उसी के जैसा नहीं हो सकता। हर व्यक्ति

के अंगूठे का निशान स्वयं अपने जैसा ही होता है और दुनिया में किसी के अंगूठे के निशान से मेल नहीं खाता। जब जीवों के शरीर के स्थूल अंगों में दूसरे से विशिष्ट अन्तर बना हुआ है तो निश्चित है कि किसी भी व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जरूरतें भी भिन्न ही होंगी। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि मनुष्य मनुष्य है कोई मशीन नहीं जिसके पुर्ज़े दूसरी मशीन में आसानी से फिट किए जा सकते हैं। धरती पर हर मनुष्य अद्वितीय रचना है और मनुष्य रूपी रचना की ज़रूरतों का अलग अलग होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि परम सत्य को मिलने, प्राप्त करने का हर व्यक्ति का अपना ही रास्ता और ढंग होगा।

इसलिए सत्य के साक्षात्कार की पहली शर्त ही यह बनती है कि इस व्यवहारिक सच्चाई को स्वीकार किया जाय कि यह धरती एक सराय है जहां अनेकों प्रकार के जीवों से हमारा मेल होता है जिन की जातियां-प्रजातियां भी भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। जब व्यक्ति इस धरती को 'धर्मसाला' समझ कर यह मान लेता है कि यह धरती हमारा पक्का ठिकाना नहीं है तो स्वतः ही क्रोध, वासना, लालच आदि से काफी हद तक उसका छुटकारा हो जाता है और उसको धर्म के वास्तविक स्वरूप की भी समझ आनी शुरू हो जाती है। धर्म की भावना अजनबियों के लिए भी हृदय में आदर पैदा कर देती है। इस बात की अनुभूति कि इस धरती रूपी सराय, धर्मशाला, में अजनबियों के साथ समायोजित होकर रहना है हमारे अंदर और भी अधिक विनम्रता और सज्जनता की भावना पैदा करती है। इस का एक अन्य कारण भी है। साधारण जीवन में अजनबियों के द्वारा हमारे विरुद्ध किए गए कामों को हम अक्सर जल्दी ही भूल जाते हैं परन्तु जिन्हें हम बहुत करीबी या अपना समझ बैठते हैं उनके द्वारा किया गया गलत काम हम माफ नहीं कर पाते और जलते-कुढ़ते रहते हैं। जो जितना नज़दीकी माना जाता है उसके प्रति अफसोस और क्रोध भी उतना ही अधिक होता है। इसलिए काम, क्रोध अहंकार आदि के त्याग के लिए और व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए अपने अन्दर सब के लिए एक अजनबी मित्रों वाली भावना पैदा करनी होगी।

सत्य स्वरूप परमात्मा से साक्षात्कार की इस पहली अवस्था में गुरु ग्रंथ साहिब के अनुसार संक्षेप में हमें यह वास्तविक रूप से स्वीकार करना होगा कि दिन, रात, ऋतुओं, पवन, पानी, अग्नि, पाताल आदि के समूह के रूप में धरती रूपी धर्मशाला की सृजना परमात्मा ने की है जहां रहते हुए जीव को नित्य कर्मों में कर्त्तव्य, निष्ठा और सहनशीलता के महत्व को समझना और स्वीकार करना होगा। साथ ही साथ यह भी नहीं भूलना होगा कि अन्य प्राणी भी हमारे जैसे ही हैं जो हमारी तरह ही ब्रह्माण्ड के अन्तिम लक्ष्य सत्य

को खोज रहे हैं और इस तरह से प्रकारान्तर से हमारे संगी-साथी ही हैं।

कर्तव्य-निष्ठा, सहनशीलता और अहंकार विहीनता को मोटे तौर पर गुरु ग्रंथ साहिब में धर्मखण्ड की अवस्था के प्रमुख लक्षण माना गया है। धर्म के स्वरूप की समझ आने के बाद वास्तविक ज्ञान के स्वरूप की जानकारी मिलने की संभावना बन जाती है। ज्ञान के सिद्धान्त और स्वरूप के बारे में 'जपु' के पैंतीसवे पद में चर्चा की गई है। यह पद इस प्रकार है -

धरम खंड का एहो धरमु।। गिआन खंड का आखहु करमु।।
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस।
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस।।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस।।
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस।।
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस।।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद।।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद।।
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु।। ३५।।

ज्ञानखण्ड परम सत्य के साक्षात्कार के लिए दूसरा पड़ाव अथवा अवस्था है। इस अवस्था में ब्रह्माण्ड की विशालता और प्रभु की रचना की अनेक गहरी पर्तों की ओर संकेत किया गया है। एक निष्कपट, अबोध और भोले बच्चे की तरह अपने चारों और फैले अनंत प्रसार को विस्मय पूर्ण होकर देखा गया है और बालक की तरह उत्तरों की परवाह किए बगैर लगातार प्रश्न ही प्रश्न पूछे गए हैं। कितने पवन हैं, पानी हैं, अग्नियां हैं, कृष्ण हैं, महेश हैं, ब्रह्मा, सुमेरु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, मंडल, देश, सिद्ध, बुद्ध, नाथ, देवियां, देव, दानव, समुद्र, रत्न, मुनि, जीवन स्रोत, वाणियां, राजा, सम्राट हैं कुछ पता ही नहीं चल पाता। निष्कर्ष रूप से यह कैसी विशाल अनंतता है जिसका कोई ओर-छोर ही नहीं है। इस सारे प्रसार पर महांविस्मय प्रकट किया गया है और ऐसे आश्चर्य की अवस्था को ज्ञानखण्ड कहा गया है। सिक्ख ज्ञानमीमांसा का सूत्र गुरु नानक का यही पद है जिसमें वास्तविक ज्ञान और सूचना अथवा जानकारी के अंतर को समझने के लिए संकेत हैं।

वास्तव में उपर्युक्त प्रश्नों के बौद्धिक उत्तर अन्तरात्मा की अनुभूति पर आधारित न होकर जब मानसिक व्यापाम के आधार पर दिए जाते हैं तो वे ज्ञान न बन कर सूचना के स्तर पर आ जाते हैं। मुण्डक उपनिषद (१.१.५) में तो ऋगवेद, सामवेद, यजुर्वेद अर्थववेद के अध्ययन-उच्चारण विज्ञान को, कर्मकाण्डों को, व्याकरण, मूल विज्ञान, काव्य,

तारा विज्ञान आदि को अपरा विद्या कहा गया है। पराविद्या अथवा परा ज्ञान उसे कहा गया है जो व्यक्ति को परम सत्य के साथ सीधा जोड़ती है। इसी पराविद्या अथवा ज्ञान को गीता में दिव्य नेत्रों की संज्ञा दी गई है। इसीलिए ज्ञान खण्ड के ज्ञान से गुरु नानक देव जी का अभिप्राय उस उच्च ज्ञान से है जिस के बारे में बाद में गुरु अरजनदेव जी भी कहते हैं कि वे नेत्र तो और ही हैं जिनसे मुझे अपने प्रियतम के दर्शन होते हैं - लोइण लोई डिठ पिआस न बुझै मू घणी।। नानक से अखडीआं बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी (गु. ग्रं. सा. पंन्ना ५७७)।

धर्म की वास्तविकता को पहचान कर ज्ञान की अवस्था में पहुंचे व्यक्ति से गुरु ग्रंथ साहिब में आशा की गई है कि सूचनाओं के रूप में इक्ट्ठा की गई विद्या को ज्ञान न माना जाए और इस प्रकार के तथाकथित ज्ञान जो कि वास्तव में मात्र सूचनाएं ही हैं पर अभिमान तो बिलकुल ही न किया जाए। इसके विपरीत व्यक्ति सूचनापरक भौतिक ज्ञान के मोह को छोड़कर उपर उठे और इस भौतिक जगत की विशालता, नियमबद्धता के पीछे किसी विस्मयकारक शक्ति को अनुभव करे और स्वयं भी निर्दोष बालक की तरह विस्मयपूर्ण बन जाए। विस्मय, आश्चर्य की अवस्था में पहुँचना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि धर्म ग्रंथों के पठन मात्र से प्राप्त की गई सूचनाएं अथवा भौतिक विज्ञान की जानकारियां हमारे अन्दर केवल अहंकार पैदा करती हैं कि हम दूसरों की अपेक्षा इतनी अधिक जानकारी के मालिक है और किसी भी विचार-चर्चा, गोष्ठी अथवा सैमीनार में किसी को भी चित्त कर सकते हैं। परन्तु विस्मयपूर्ण अवस्था में पहुंचा हुआ व्यक्ति अपने आपको मालिक न मानकर सेवक समझता है और उसके अन्दर तथा बाहर के व्यवहार में विनम्रता स्पष्ट दिखाई देती है। हमारा अहंकार हमें अन्यों से दूर ले जाता है परन्तु विस्मय में डूबे हुए व्यक्ति को प्राणी मात्र से जुड़ाव का अनुभव होता है। विस्मय पूर्ण ऐसी ही अवस्था का संकेत 'जपु' के सत्ताइसवें पद में भी दिया गया है जहां गुरु नानक परमात्मा के द्वार मात्र के बारे में चिंतन करते हुए आश्चर्य विभार होते हुए फिर प्रश्नों की ही झड़ी लगा देते हैं। दरअसल जिसके पास प्रश्न ही होते हैं उसे विनम्र, जिज्ञासु, सीखने की चाह रखने वाला अथवा सिक्ख कहा जा सकता है परन्तु जिसके पास केवल उत्तर ही उत्तर होते हैं उसे विद्वान पंडित, व्याख्याकार आदि के नाम से जाना जाता है और अपनी विस्तृत जानकारी का अहंकार उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाता है।

गुरु ग्रंथ साहिब में आदर्श मानव को गुरमुख, ब्रह्मज्ञानी आदि नाम से जाना गया है और इन्हीं गुरमुखों, ब्रह्मज्ञानियों में से खालसा का उदय हुआ है जिसने जपु के ज्ञान खण्ड का गहन अवलोकन करते हुए इस तथ्य को स्वाभाविक ही माना है कि संसार में

भिन्न भिन्न धार्मिक एवं रहस्यवादी परम्पराएं फली फूली हैं और फल फूल रही हैं और फलती फूलती रहेंगी। इसलिए कट्टरवादी दृष्टिकोण का त्याग किया जाना चाहिए और यह नहीं मानना चाहिए कि केवल एक ही धर्म अथवा एक ही पैगम्बर हमारी मुक्ति में सहायक हो सकता है। ऐसा ज्ञानवान पुरुष खुले मन से यह मानता है कि विधाता की इस बहु आयामी और अनेकता से परिपूर्ण रचना में अनेकों ही सभ्यताएं, मिथक और धार्मिक परम्पराएं हैं जिनके फलस्वरूप परमात्मा से मिलाप के, उसकी अनुभूति के ढंग-तरीके भी अनन्त हो सकते हैं। ऐसी अवस्था वाला व्यक्ति जहां परा विद्या को जानने वाला ज्ञानी पुरुष होता है वहां साथ ही साथ वह अहंकार और मन की संकीर्णता के परिणामों को भी अच्छी तरह जान चुका होता है। ऐसा ज्ञानवान व्यक्ति ही जीवन के वैज्ञानिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों में एक स्वाभाविक एवं सुखदायक समरसता पैदा करने में सफल रहता है और उसका हृदय एक दैवी सौंदर्य और आनन्द से परिपूर्ण बना रहता है।

धर्म और ज्ञान के स्वरूप को समझ कर आनन्दित बना रह सकने वाला व्यक्ति एक विचित्र प्रकार का संतोष तो अनुभव करता है परन्तु उसकी संतोषी वृत्ति उसे आलसी नहीं बनने देती। ऐसे दिव्य व्यक्तित्व की गढ़न के श्रम पूर्ण आयाम को प्रस्तुत करने वाली और सत्य की स्वानुभूति का ब्यौरा देने वाली 'जपु' की पंक्तियां इस प्रकार है –

गिआनु खंड महि गिआनु परचंड।। तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु।।
सरम खंड की बाणी रूपु।। तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु।।
ता कीआ गला कथीआ ना जाहि।। जे को कहै पिछै पछुताई।।
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि।। तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि।। ३६।।

श्रम (परिश्रम) खण्ड के इस पड़ाव को सभी अच्छाईयों को मन में बसा लेने वाली अवस्था कहा जा सकता है। जीवन को व्यवहारिक दृष्टिकोण से देखने परखने वाले गुरु नानक देव जी के जीवन दर्शन को ध्यान पूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव को गुरु जी ने कभी ऊंचे-नीचे रूप में नहीं देखा। वे हर व्यक्ति को समाज की एक मूलभूत इकाई मानते हैं और साथ ही साथ यह भी स्वीकार करते हैं कि एक सुदृढ़ समाज के लिए व्यक्ति की सर्वांगीण उन्नति होना परम आवश्यक है। वे एक ऐसे समाज की रचना के लिए प्रतिबद्ध थे जिसमें लोगों की सुरति, मति, मन और बुद्धि का समन्वय व्यक्ति को एक सौंदर्यपूर्ण व्यक्तित्व प्रदान कर सके। सच्चे अध्यात्म के मार्ग पर चलने वाले हर व्यक्ति का यह आवश्यक उद्देश्य बन जाता है कि वह भावनाओं इच्छाओं और विचारों में एक संतुलन पैदा करता है। गुरु ग्रंथ साहिब में कहीं भी ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना दिखाई नहीं देती जो एक ओर तो समाज को प्रगतिशील बनाए परन्तु साथ ही साथ दूसरी ओर

कुछ लोगों को दबाए और पीछे की ओर खींचे।

व्यक्ति के अन्तःकरण के चार अंग माने गए हैं। वे हैं – सुरति, मति, मन और बुद्धि। ये चारों शक्तियां परस्पर सम्बद्ध होकर व्यक्ति में कार्यशील बनी रहती हैं और फलस्वरूप समाज के ढांचे को भी सीधे तौर पर प्रभावित करती हैं। सुरति हमारी स्मरण शक्ति है और साथ ही साथ सभी घटनाओं और प्रभावों का रिकार्ड भी रखती है। इसे चित्त-शक्ति भी कहा जा सकता है। जोश और भावुकता की लहरें मन में उठती रहती हैं जब कि मति ममत्व-अहंकार को कब्ज़ा करने की भावना अथवा 'हउमै' कहा जा सकता है। इन दोनों शक्तियों के काम पर विवेचनात्मक मुहर लगाने का काम कई उदाहरण प्रस्तुत करके बुद्धि करती है। मोटे तौर पर इन चारों को मिलाकर गुरु ग्रंथ साहिब में 'सुरति' कहा गया है जो वास्तव में उपर्युक्त तीनों शक्तियों को एक जुट करने वाला सूत्र भी है और साथ ही साथ अन्तःकरण की एक अलग शक्ति भी है।

श्रम (सरम) खण्ड के पड़ाव पर पहुंचे व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि मति, मन और बुद्धि को स्वच्छ और निर्मल बना कर वह सुरति को पवित्र बनाए। प्रसिद्ध सिक्ख चिंतक भाई वीर सिंह सिक्खी की भावना को सामने रखते हुए यह कहतें हैं : सिक्ख जीवन का मूल धुरा अथवा आधार है कि सुरति को निरन्तर बलवान किया जाए और सदैव आशावादिता में निवास बनाए रखा जाए – 'सिक्खी है बलवान करना सुरति नूं चढ़ती कल निवास सद ही रखणा'। श्रम के खण्ड (सरम खण्ड) में अन्तःकरण की गढ़न का कार्य व्यक्ति द्वारा परोपकारी कार्य करके किया जाता है। व्यक्ति इस अवस्था में पहुंच कर विवेक प्राप्त करता है जिसकी सहायता से धरती पर दैवी समाज की रचना होती है। हृदय की भावुकता और बौद्धिकता को समान भाव से प्रयुक्त करता हुआ व्यक्ति सुरति की सभी शक्तियों के समन्वय का एक सुन्दर रूप बन जाता है। बेशक हृदय की अपनी विशेष ज़रूरतें होती हैं जिन्हें कभी कभी बुद्धि समझ ही नहीं पाती परन्तु फिर भी दोनों के सही अनुपात में मेल मिलाप को आंखों से परे नहीं किया जा सकता और दोनों पर उचित नियन्त्रण आवश्यक है। दरअसल यही वह स्थिति है जिसमें सब की समानता के भाव के साथ समरसता के भाव का भी उदय होता है जिस के कारण व्यक्ति अपनी अयोग्यताओं के प्रति सजग हो कर अच्छे संस्कारों की प्राप्ति के लिए पूरी तरह क्रियाशील हो उठता है।

सत्य की स्वानुभूति की चौथी और पांचवी अवस्था 'जपु' के सैंतीसवे पद में हैं जो निम्न प्रकार से है –

करमखंड की बाणी जोरु।। तिथै होरु न कोई होरु।।
तिथै जोध महाबल सूर।। तिन महि राम रहिआ भरपूर।।

तिथै सीतो सीता महिमा माहि।। ता के रूप न कथने जाहि।।
ना उहि मरहि न ठागे जाहि।। जिन कै रामु वसै मन माहि।।
तिथै भगत वसहि के लोअ।। करहि अनंदु सचा मनि सोइ।।
सचखंडि वसहि निरंकारु।। करि करि वेखै नदरि निहाल।।
तिथै खंड मंडल वरभंड।। जे को कथै त अंत न अंत।।
तिथै लोअ लोअ आकार।। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार।।
वेखै विगसै करि वीचारु।। नानक कथना करड़ा सारु।। ३७।।

सत्यानुभूति की पहली तीनों अवस्थाएं समूचे रूप में इस भाग में फलीभूत होती नज़र आती हैं। इस पद का पहला भाग 'करम' (कृपा) की बात करता है। जब सुरति मति, मन और बुद्धि की गढ़ाई हो जाती है तो सर्वव्यापक प्रभु की कृपा की वर्षा की अनुभूति व्यक्ति को होती है। जीव का हृदय रूपी बर्तन जो अब तक औंधा था सीधा हो जाता है। यह द्वैतभावना से परे ले जाने वाली साक्षात् शक्ति और बल की परिपूर्णता की अवस्था है। इस अवस्था में वे भक्त और महांबली पहुंच पाते हैं जिन्होंने लोभ और अहंकार आदि के दैत्यों को मार कर अपने शुभ कार्यों के माध्यम से राम के साथ तदात्मकता प्राप्त कर ली होती है। कृपा की अवस्था में पहुंचा व्यक्ति परम सत्य की महिमा के साथ उसी प्रकार एक रूप हो जाता है जैसे धागा और कपड़ा एक रूप ही होते हैं और उन्हें अलग अलग नहीं किया जा सकता। इस अवस्था में पहुंचा जीव आनन्दित बना रहता है और अब उसका हर काम परमात्मा का कार्य होता है। इसी तथ्य का विस्तार हम गुरु गोबिंद सिंह द्वारा दिए पद 'वाहिगुरु जी का खालसा वाहिगुरु की जी फतहि' में देखते हैं। धर्म को, ज्ञान को और श्रम के महत्व को समझने वाला ऐसा व्यक्ति अब परमात्मा और शुभ कार्यों की खातिर ही जूझता है तथा फतहि हासिल करता है। ऐसे व्यक्तियों की दैवी आभा कथन के बाहर मानी जाती है और अब समय उनको ठग नहीं पाता, वे कालजयी हो जाते हैं। वे ही वास्तव में सच्चे भक्त (भगत) होते हैं।

यहां 'भक्त' और 'श्रद्धालु' का अन्तर समझ लेना भी आवश्यक है। श्रद्धालु, प्रभु के गुणानुवाद को सुनकर आत्मविभोर अथवा प्रेम भावना से अभिभूत हो उठता है। वह इसी बात से संतुष्ट बना रहता है कि प्रभु से उसकी साझेदारी बनी हुई है और वह परमात्मा के साथ जुड़ा हुआ है। पर अधिकतर वह ऐसा कर्म-विहीन व्यक्ति होता है जो अपनी श्रद्धा को कार्यशीलता में बदलने से कतराता रहता है। भक्त इतने पर ही नहीं रुकता; वह सदैव कर्मशील बना रहता है और अध्यात्म के मार्ग पर प्रगतिशील बन कर सामाजिक और नैतिक धरातल पर अपने अस्तित्व को सफल करता है। यदि गुरु गोबिंद सिंह जी के पास सच्चे भक्तों के बजाय केवल श्रद्धालु ही होते तो 'सिंह समाज' की स्थापना तो शायद फिर भी

हो जाती परन्तु वह सृजना चिर जीवी होनी असंभव हो जाती। 'करम खंड' में पहुंचा हुआ जीव ही सचिआर बनता है और शारीरिक सुखों की अपेक्षा आत्मिक आनन्द में लीन रहता है। दरअसल 'करमखंड' की यह अवस्था 'सचखंड' से भिन्न नहीं है और शायद इसीलिए इन दोनों अवस्थाओं को एक ही खंड में रखा गया है।

आध्यात्मिक विकास की चरम परिणति 'सच खंड' अथवा निरंकार, परम सत्य परमात्मा में होती है। 'निरंकार' और 'सचखंड' शब्दों का प्रयोग इस पद में बड़ा उपयुक्त और सटीक है। श्री गुरु ग्रंथ में 'सचखंड' कहीं भी भौगोलिक स्थान के तौर पर नहीं बताया गया है। वास्तव में 'संचखंड' मानव मन की वह अवस्था है जिसमें धर्म, ज्ञान, श्रम, कृपा के रहस्य को समझकर काला मन पूर्णरूप से ज्योति स्वरूप में बदल जाता है। गुरु ग्रंथ साहिब का 'सचखंड' वैसे ही स्थानातीत है जैसे निरंकार परमात्मा समय और स्थानों की सीमाओं से परे है। इस प्रकार सचखंड और निराकार (निरंकार प्रभु) एक ही अर्थ की ओर संकेत करते हैं। इस लिए सत्य के खंड (सचखंड) को निरंकार और निरंकार को सचखंड कहा जा सकता है। कालातीत निरंकार जगत के सारे पदार्थों जीवों में कार्यशील सूत्रात्मक शक्ति है जिस का जीव इस चरम शीर्ष पर पहुंच कर साक्षात्कार करता है। अब उसका कार्यव्यवहार सामान्य न रहकर लीला का रूप धारण कर लेता है जिसमें भौतिक पदार्थों के लाभ ही लाभ की इच्छा बाकी नहीं बनी रहती। जैसे 'जपु' में एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि परमात्मा देता चला जाता है परन्तु थकता नहीं अपितु अपनी सृष्टि को देखकर खुश होता रहता है, इसी प्रकार निरंकार से एकरूप हो चुका जीव कर्म करते चले जाने में विश्वास रखता है और आनन्दित बना रहता है। इस पद के अन्तिम चरण में हम स्पष्ट देखते हैं कि गुरु नानक कहते हैं कि आध्यात्मिक विकास की इस चरम अवस्था का वर्णन करना लोहे के समान कड़ा और कठिन कार्य है।

अतः गुरु ग्रंथ साहिब का अनुभवी जीव परम सत्य की प्राप्ति के लिए बेशक लगातार ऊपर उठता चला जाता है परन्तु हर अवस्था में उसके पैर इस 'धर्मशाला' धरती और उसके जीवों के दुख-सुख में मज़बूती के साथ टिके रहते हैं और वह संसार के उतरदायित्वों से पलायन करने की बात कभी सोचता भी नहीं है। गुरु अरजन देव जी इस तथ्य को अपनी वाणी 'सुखमनी' में और अधिक स्पष्टता देते हैं जब वे यह कहते हैं कि संसार के सुखों का त्याग नहीं करना है इनका आनन्द लेना है परन्तु इनमें लीन नहीं होना है और परम सत्य परमात्मा को सदैव अपने मन में याद रखना है अर्थात संसार का होकर रहना है परन्तु सांसारिक नहीं बनना है -

जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि।।
तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि।।

संवाद

उपर्युक्त अनुभूति क्रम के प्रमुख अंगों धर्म, ज्ञान, श्रम, कृपा एवं सत्यदेश को समझने के लिए गुरु ग्रंथ साहिब व्यक्ति को समाज से, मानवमात्र से कटे रहने की सलाह नहीं देता। सफल एवं सार्थक' जीवन के लिए और अपनी विलक्षणता को बनाए रखने के लिए गुरु ग्रंथ साहिब में एक प्रमुख सिद्धान्त दिया गया है कि - 'हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोइ' अर्थात केवल हम ही अच्छे नहीं हैं और संसार में पूरी तरह बुरा कोई भी नहीं है। सब में कुछ न कुछ कमियां, कमज़ोरियां हैं और उन्हें अपने में भी मानते हुए श्री गुरु ग्रंथ साहिब के सिद्धान्तों के अभिधार्थ और लक्षणार्थ से भी आगे बढ़कर वाणी के व्यंजनार्थ पर ध्यान लगाना चाहिए। गुरु ग्रंथ साहिब में सर्वग्राही, सर्वसमभाव, सफल और सार्थक जीवन का आधार यह सिद्धान्त है कि व्यक्ति के गुणों के साथ साझेदारी करो और उसके अवगुणों को अपनाने की मत सोचो तथा उसके अवगुणों से बच कर चलो -

सांझ करीजै गुणहि केरी छोडि अवगुण चलीअै।।

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि गुरु ग्रंथ साहिब के सिद्धान्त मठ, विहारों अथवा वानप्रस्थ आश्रम आदि को मान्यता नहीं देते और संसार के लोगों के सुखदुख को बांटते हुए परन्तु संसारी न बन कर व्यक्ति को एक संतुलित जीवन जीने का आदेश देते हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में व्यक्ति के महत्त्व का वर्णन तो है पर मानवता के संदर्भ में व्यक्तिवाद को मान्यता नहीं दी गई है क्योंकि व्यक्तिवाद निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता और मन की संकीर्णता के आधार पर ही फल-फूल सकता है। दिग्विजय की भावनाओं के साथ किए जाने वाले वाद-विवाद गुरु ग्रंथ साहिब के चिंतन चौखटे के अनुरूप नहीं बैठते। वाद-विवादात्मक विचार और उससे उत्पन्न होने वाले अहंकारी व्यक्तित्व के प्रति गुरु नानक देव जी पूरी तरह चेतन है। वे कहते हैं -

खोजी उपजै बादी बिनसै हउ बलि बलि गुर करतारा।।

वाद-विवाद केवल घातक अहंकार (हउमै) पैदा करता है जिसे गुरु ग्रंथ साहिब में दीर्घ रोग (Chronic ailment) कहा गया है। सेवा समर्पण की भावना ही इस प्राण-लेवा रोग से छुटकारा दिला सकती है और मन में प्रेम पैदा कर सकती है। गुरु अमरदास जी भी गुरु नानक देव की बात को ही आगे बढ़ाते हैं -

बादी बिनसहि सेवक सेवहि गुरु कै हेति पिआरी।।

गुरु ग्रंथ साहिब में ही भक्त नामदेव जी भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यदि संजीवनी राम-रसायन के आनन्द का उपभोग करना है तो किसी भी सूरत में किसी के साथ वाद-विवाद में नहीं उलझना चाहिए:

बाद बिबाद काहू सिउ न कीजै।। रसना राम रसाइन पीजै।।

वाद-विवादात्मक, खण्डन-मण्डन की अभिमानपूर्ण चित्तवृत्ति से बचने के लिए तथा बिना किसी की अवज्ञा किए हुए अपनी बात को जनहित के लिए दूसरों तक पहुंचाने के अभिप्राय से सिक्ख धर्म और गुरु ग्रंथ साहिब एक सार्थक, तथ्यपूर्ण तथा अन्तः विशलेषणात्मक संवाद का सिद्धान्त सामने रखते हैं। वास्तव में ज्ञान, धर्म, प्रभु कृपा, सत्य आदि की अनुभूति विवादों के माध्यम से नहीं की और कराई जा सकती। यह केवल संवाद के माध्यम से ही संभव हो सकती है। इस ग्रंथ में ३६ वाणीकारों की रचनाओं को संकलित करना ही इस बात का प्रमाण है कि गुरु ग्रंथ साहिब गुणों की मैत्री और विभिन्न पक्षों के कथनों के प्रति सहनशीलता का जीता जागता प्रमाण है जिसमें बिना किसी रंग, कर्म, वर्ण, स्थान और साम्प्रदायक भेद भाव के कहीं से भी आ रही सत्य की आवाज का खुले मन से स्वागत किया गया है। गुरु ग्रंथ साहिब में संवाद का पहला रूप अपने ही साथ संवाद रचाना है, स्वयं को पहचानना, अपनी खोज खबर लेना, अपने गिरेबान में सिर झुकाकर निष्पक्ष होकर देखना है। बाहरी संवाद से पहले गुरु ग्रंथ साहिब में अन्तः दर्शन और विशलेषण की प्रेरणा दी गई है। व्यक्ति जब अपने अंदर झांकता है तो उसे अपने अंदर के कमीनेपन, स्वार्थ की परतों, लालचों और कूटनीतियों का गहरा अहसास हो जाता है। विचार से उत्पन्न उपर्युक्त मनोरोगों के कूड़े को जब तक ज्ञान की झाड़ू के साथ समुचित रूप से बाहर नहीं निकाला जाता तब तक व्यक्ति निर्मल नहीं हो सकता और व्यक्ति का बाहरी संवाद अर्थपूर्ण नहीं बन सकता। गुरु अरजन देव जी ने गुरु ग्रंथ साहिब का सार-सारांश सामने रखते हुए अन्ततः यही कहा है कि गुरु ग्रंथ साहिब रूपी विशाल थाल में सत्य, संतोष और विचार (चिंतन - दर्शन) रूपी तीन पदार्थ मूल रूप में स्थित किए हैं। 'विचार' के मूल लक्षणों का भी गुरुवाणी में अन्यत्र वर्णन किया गया है। सत्य का निवास मन में बनाकर विवेकशील व्यक्तियों के साथ मिल बैठकर (संगत में) विचार विमर्श किया जाना चाहिए ; गणनाओं और नाप-तौल पर आधारित अहम् को और अधिक चारा डालने वाला तर्क अथवा वाद-विवाद नहीं किया जाना चाहिए। गुरु अंगद देव जी का कथन है -

सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि।।
ओथे पापु पुंन बीचारीऐ कूड़ै घटे रासि।।
ओथे खोटे सटीअहि खरे कीचहि साबासि।।
बोलणु फादलु नानका दुख सुख खसमै पासि।।

स्वनिरीक्षण अन्तः सुझावों को अन्दर से उद्दीप्त कर देता है। ठीक दिशा में चलने के लिए किसी देहधारी गुरु की खोज करने की आवश्यकता नहीं रहती। वास्तव में जीवन की मूल सच्चाईयां इतनी सीधी और कम गिनती में हैं कि उनकी पहचान हर व्यक्ति अपने

अंदर से ही सरलतापूर्वक कर सकता है। झूठ न बोलना, चोरी न करना, किसी को दुख न देना ऐसे विश्वजनीन सत्य हैं जिन्हें हर व्यक्ति जानता है। यह संसार स्थिर नहीं है, सारा कुछ एक यात्रा में है, एक प्रवाह है जो आज तो यहां है पर अगले ही क्षण यह आगे बढ़ जाने वाला है ; फिर भला अहंकार भावना का क्या अर्थ रह जाता है –

जा रहिणा नाही अैतु जगि ता काइतु गारिब हंढीअै।।

मेरे अहम् ने मुझे कितना खोखला कर दिया है और कितना दुख मैने स्वयं ही पैदा कर लिया है, इस तथ्य की अनुभूति तो अपने ही सामने खड़े होकर और अपने आप के साथ संवाद प्रारम्भ करके ही प्राप्त की जा सकती है। प्रभु (वाहिगुरु) की इच्छा में हो रहे कार्यों में अवरोध न बन कर प्रभु के हुकुम (इच्छा) के प्रवाह में ही इस शरीर को बेरोक चलने दिया जाना चाहिए। इसके लिए लोक-सेवा को उस परमात्मा की सेवा समझ कर आध्यात्मिक सुख प्राप्त किया ज़ाना चाहिए। यही भावना कालान्तर में गुरु गोबिंद सिंह जी के समय में जब 'खालसा' की सृजना के रूप में साकार की गई तो खालसा के हर कार्य का उद्देश्य परमात्मा (वाहिगुरु) की अर्थात् दिव्यता पूर्ण शक्तियों की आसुरी प्रवृतियों पर विजय प्राप्त करना हो गया और इसी भावना को दर्शाने वाला अभिवादन 'वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतहि' अस्तित्व में आया जो सिक्ख समाज में आज तक प्रचलित है। खालसा की जीत अब परमात्मा की जीत बन गई क्योंकि खालसा द्वारा किए हुए कार्य वाहिगुरु की प्रसन्नता के लिए किए हुए माने जाने लगे। खालसा ने गुरु ग्रंथ साहिब की उस पंक्ति को जीवन में उतारा था जिसमें गुरु नानक देव ने सदियों पहले कहा था – जित सेविअै सुखु पाइअै सो साहिब सदा समालीअै (गु. ग्रं. सा. पृ. ४७४)।

स्वयं को कटघरे में खड़ा कर सकने वाला व्यक्ति आत्मा की दिव्यता के साक्षात्कार के लिए व्याकुल हो उठता है। वह अब अपने आप से यह प्रश्न पूछने में झिझक महसूस नहीं करता कि करोड़ों सूर्यों जैसे प्रकाशपुंज उस सच्चे प्रभु के सच्चे दरबार को देख सकने के लिए वह क्या पेश करे, क्या हाज़िर करे। उससे संवाद के लिए कैसी भाषा का प्रयोग करे जिसे सुनकर उसका सच्चा दरबार उसके प्रति प्रेमपूर्ण हो जाए। समुचित समय (अमृत बेला) में बडप्पन के बोधक सत्य को स्वीकार करना और विवेक-विचार पूर्वक उसे जीवन के आचरण में उतारना अंदर से उभरे इस प्रश्न का उत्तर है जिसके लिए किसी बाहरी वाद-विवाद में पड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ती –

फेरि कि अगे रखीअै जितु दिसै दरबारु।।
मुहौ कि बोलणु बोलीअै जितु सुणि धरे पिआरु।।
अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु।। (गु. ग्रं. पृ. २)

अपने गिरेबान में झांककर अपने आप से संवाद स्थापित कर लेने वाला व्यक्ति पूर्ण आत्मा-विश्वास के साथ मन की घुड़दौड़ पर काबू पा सकता है, मन को बार बार

सुझाव देकर उसको उसकी दिव्यता (ज्योति स्वरूप) की अनुभूति करवा सकता है, उसको अपने मूल रूप को पहचानने का परामर्श दे सकता है -

मन तू जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।।
मन हरि जी तेरे नालि है गुरमती रंगु माणु।। (गु. ग्रं. पृ. ४४१)

अथवा - ए मन मेरिआ तू थिर रहु चोट न खावही राम ।। (पृ. ११११३)

इस सारी चर्चा से यह अनुमान लगाना गलत होगा कि मन बहुत ही सरल और सीधा है, दिव्यता की प्राप्ति के लिए उत्सुक रहता है और इसे आसानी से सीधे रास्ते पर लाया जा सकता है। इसके विपरीत मन अत्यन्त घुन्ना तथा अनजान बना रहने का नाटक करने में निपुण बना रहता है। गुरु ग्रंथ साहिब में कबीर इस तथ्य के प्रति पूरी तरह चेतन और चिंतित दिखाई देते हैं जब वे यह कहते हैं - कबीर मनु जाने सब बात जानत ही अउगन करे।। काहे की कुसलात हाथि दीप कूए परे (पृ. १३७६)। फिर भी मन को अच्छे सुझाव देना उसी प्रकार बन्द नहीं किया जा सकता जैसे जानवरों द्वारा चरे जाने के डर से खेत बोना नहीं छोड़ा जा सकता और चोरी के डर से घरों में सामान रखना बन्द नहीं किया जा सकता। अपनी 'आनंदु' वाणी में तीसरे गुरु अमरदास बार बार मन को सुझाव दिए ही चले जाते हैं -

ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले ।।
हरि नालि रहु तूं मन मेरे दूख सभि विसारणा।। (पृ. ६१७)

प्रशंसा एवं स्तुति को बड़प्पन पूर्ण होकर तौल लेने वाला व्यक्ति, मन को अपना मूल पहचानने की ओर प्रेरित करने वाला व्यक्ति और मन की अनजान बना रहने की नाटकीय घुन्ना प्रवृत्ति के प्रति सचेत आध्यात्मवादी व्यक्ति गुणों की सुगंध का आनन्द लेता रहता है। ऐसा व्यक्ति शुद्ध जीवन रूपी रेशम के वस्त्र धारण करता है, गुणों की साझेदारी बनाता है, अवगुणों के बारे में न तो सोचता है और न ही उन्हें किसी को जताता है। वह जहाँ भी जाता है, जिस गोष्ठी में भी शामिल होता है, भलाई की बात चलाता और ऐसे वचनामृत का आनन्दपूर्वक उपभोग करता रहता है। उपर्युक्त कथन संवादी व्यक्ति के प्रति गुरु नानक देव के निम्नांकित पद का सार-सारांश हैं -

गुणां का होवे वासला कढि वासु लईजै ।।
जे गुण होवनि साजना मिलि सांझ करीजै।।
सांझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगुण चलीअै।।
पहिरे पटंबर करि अडंबर अपणा पिड़ मलीअै।।
जिथे जाइ बहीअै भला कहीअै झोलि अंम्रित पीजै।।
गुणा का होवे वासुला कढि वासु लईजै।। (पृ. ७६५ - ६६)

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में पहली प्रकार का संवाद अपने मन के साथ संवाद है। दूसरी किस्म का संवाद जिसे बाहरी संवाद कहा जाता है, वह भी इस महान् ग्रंथ में अनेक स्थानों में बिखरा पड़ा है। गुरु नानक देव इस तथ्य को आज से पांच सौ वर्ष पूर्व भी भली प्रकार जानते थे कि लोक-मानस में परिवर्तन बाहरी संवाद के बिना नहीं लाया जा सकता। भारत भर में, भारत से दूर पश्चिम में मक्का तक और पूर्व में असम, भूटान आदि प्रदेशों तक तथा दक्षिण में श्री लंका तक की उनकी यात्राओं का मुख्य प्रयोजन समाज के तथाकथित ऊंचे नीचे वर्गों, धर्म के ठेकेदारों और सीधे-सादे लोगों के साथ संवाद स्थापित करना और उनके मानसिक-आध्यात्मिक क्लेश को समझना और उसका इलाज खोजना था। कबीर के श्लोकों में गुरु ग्रंथ साहिब में आध्यात्मिक और सामाजिक जिम्मेदारी से परिपूर्ण भक्त नामदेव और भक्त त्रिलोचन जी का संवाद अंकित है (पृ. १३७६)। इसी प्रकार पंडितों, मुल्लाओं, योगियों और अनेकों अन्य धार्मिक व्यक्तियों के साथ चर्चाओं का विवरण हमें गुरु ग्रंथ साहिब में मिलता है। एक अनाम ब्राह्मण द्वारा यह पूछे जाने पर कि हे नानक, तुम साधु तो हो पर तुम्हारे पास न तो सालिग्राम है और न ही तुलसी की माला है, गुरु नानक उत्तर तो बेशक उस एक व्यक्ति को देते हैं परन्तु उनका उत्तर उस वर्ग के सभी व्यक्तियों पर उपयुक्त बैठता है। वे कहते हैं -

सालग्राम बिप पूजि मनावहु सुक्रित तुलसी माला।।
राम नामु जपि बेड़ा बाधहु दइआ करहु दइआला।।
काहे कलरा सिंचहु जनमु गवावहु।।
काची ढहिग दिवाल काहे गचु लावहु।। (पृ. ११७१)।

अर्थात हे ब्राह्मण, तुम प्रभु को शालिग्राम बनाओ और शुभ आचरण को तुलसी की माला समझो। राम नाम का बेड़ा बांधकर बनाओ और कहो कि हे दयालु प्रभु हम पर दया करो। रेतीली और क्षारीय धरती को क्यों सींच रहे हो (यह सब व्यर्थ होगा) क्योंकि कर्मकाण्डों में पडा रहने वाला तुम्हारा जीवन भी उसी प्रकार व्यर्थ चला जाएगा जैसे कच्ची दीवार को लीपने पोतने से वह स्थिर नहीं बनी रह सकती।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में बाहरी संवाद का सबसे बढ़िया उदाहरण 'सिध गोसटि' नामक लम्बी वाणी है जिसमें आध्यात्मिक संवाद के माध्यम से योगमत और गुरुमत के दर्शन को निखार कर स्पष्ट रूप में सामने लाया गया है। चर्चा करने वाले व्यक्तियों का मानसिक संतुलन और स्थिरता कैसी होनी चाहिए, गुरु नानक देव और योगी चरपट नाथ तथा लोहारीपा (लुईपाद) आदि स्वयं इसके सुन्दर उदाहरण के रूप में हमारे सामने आते हैं। 'सिध गोसटि' के प्रारम्भ में ही प्रश्न उत्तरों का सिलसिला शुरू हो जाता है। चरपट नाथ प्रश्न करता है कि हे नानक, यह संसार-सागर भीषण एवं दुस्तर है; इसको कैसे पार

किया जा सकता है। इसके बारे में अपने चिन्तन को हमें बताओ। गुरु नानक देव इस प्रश्न का दिया हुआ शालीनतापूर्ण एवं आत्म विश्वास एवं सत्यता से भरा हुआ उत्तर सिक्ख धर्म एवं श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संवाद के स्वरूप और परम्परा को स्पष्ट रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। गुरु नानक देव उत्तर देते हैं कि हे योगी, आप जो मुझ से पूछ रहे हैं उसका अर्थ आप भी भली प्रकार जान रहे हो। इसलिए भला इसका क्या उत्तर दिया जाए। मैं सत्य कह रहा हूँ कि आप तो संसार को पार कर चुके हो ; मैं भला आपके मार्ग की कमियों को क्या और कैसे बताऊँ। हां, तुमने मुझसे मेरा मार्ग एवं संसार-सागर को पार का ढंग पूछा है तो वह मैं अवश्य बताऊँगा। जिस प्रकार जल में रहता हुआ कमल अपने पत्तों को भीगने नहीं देता और जैसे पानी में रहने वाली मुर्गाबी पानी में तैरती तो रहती है परन्तु अपने पंखों को भीगने नहीं देती उसी प्रकार संसार में रहकर परन्तु सांसारिकता में लिप्त न होकर सुरति को शब्द में लीन करके संसार के सारे कार्य-व्यवहार में कार्यशील बने रहकर मैं संसार-सागर को पार करने की बात कहता और करता हूँ-

दुनीआ सागरु दुतरु कहीऐ किउ करि पाईऐ पारो।।
चरपटु बोले अउधू नानक देहु सचा बीचारो।।
आपे आखे आपे समझै तिसु किआ उतरु दीजै।।
साचु कहहु तुम पारगरामी तुझ किआ बैसणु दीजै।।
जैसे जलि महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।।
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नाम वखाणै।।

संवाद का यह रचनात्मक पक्ष जिसमें बिना किसी की अवज्ञा किए हुए अपनी बात को कहने का सामर्थ्य है सिक्ख जीवन और सिक्ख भक्ति का आधार है। यह अलग बात है कि आज हम सभी इस तथ्य को भुला कर फिर उन्हीं कर्मकाण्डों और अहंकारवादी रुचियों के शिकार होते जा रहे है जिन्हें त्यागने का उपदेश गुरु ग्रंथ साहिब के वाणीकारों ने हमें दिया था। 'सिध गोसटि' में प्रश्न चाहे व्यक्तिगत हैं और चाहे दर्शन तथा नैतिक शास्त्र से संबंधित है, संवाद का स्तर बहुत ही शालीन और परस्पर आदर-भाव को बनाए रखने वाला है। इस वाणी में धरती से लेकर आकाश तक की समस्याओं का विश्लेषण किया गया है परन्तु कहीं भी कड़वाहट दृष्टि-गोचर नहीं होती। इस का कारण स्पष्ट है कि संवाद रचाने वाले दोनों पक्षों में से किसी को न तो कोई लालच है और न ही उनके अंदर किसी प्रकार का खोखलापन है।

दूसरे पक्ष को उचित मान्यता देकर यदि संवाद किया जाए तो श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अनुसार ऐसे संवाद का परिणाम निश्चित रूप से सार्थक होता है और सार्थक परिणाम हमारे जीवन को भी सार्थक एवं सफल बना देता है।

वाणी खण्ड

।। जपु ।।

(गु. ग्रं. सा. पृ. १-८)

श्री गुरु नानक देव जी की रचना जपु (जी) में जीव की सत्यशील (सचिआर) और पवित्र बने रहने की समस्या का विवेचन किया गया है और बताया गया है कि व्यक्ति प्रभु के विधान (हुकुम) को समझ-मानकर, सुनने और मानने की कला को सीख कर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर, विभिन्न वेशों और कर्मकाण्डों के पाखण्डों को छोडकर, धर्म, ज्ञान, श्रम, कृपा के वास्तविक अर्थों को समझकर और उन अर्थों को जीवन में ढालकर ही सत्य रूपी परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है और सब के लिए उपयोगी बन कर सचिआर बना रह सकता है।

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।।

वह परब्रह्म परमात्मा एक ही है। उसका नाम (कालातीत) सत्य है। वह सृष्टि का रचयिता और सर्वव्यापक है। वह निर्भय एवं निरवैर (शत्रुभाव से मुक्त) है। सौन्दर्य रूप में वह कालातीत है। वह अजन्मा है और स्वतः प्रकाशित है। उसे गुरु की कृपा से ही प्राप्त किया जाता है।

।। जपु ।।

आदि सचु जुगादि सचु ॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥१॥

कालातीत परमात्मा सत्य रूप में प्रारम्भ से ही है, युगों के आरम्भ से ही मौजूद है। वर्तमान में भी सत्य ही स्थित है और हे नानक भविष्य में भी सत्य ही बना रहेगा।। १।।

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार ॥ चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार ॥ भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार ॥ सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि ॥ किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि ॥ हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥

शरीर को तीर्थों पर लाखों बार स्नान कराने मात्र से, शरीर को चंदनादि लेपों से सुगन्धित करने मात्र से मन के शुद्धिकरण (शौच) की सम्भावना पूर्ण नहीं होती। कन्दराओं की निर्जनता, एकान्त चुप्पी भी मन के क्रिया कलापों को रोकने में समर्थ नहीं (वर्षों की समाधियां भी अन्ततः मन के प्रबल वेग के सामने टूट जाती हैं)। समस्त पुरियों की सम्पूर्ण सम्पत्ति को ले जाने की भी यदि इस मन को आज्ञा मिल जाए तब भी यह पीछे नहीं हटेगा और तृष्णा ग्रसित इस मन की भूख फिर भी बनी रहेगी। अपने बुद्धि चातुर्य को हजारों लाखों तरीकों से यह मन प्रयुक्त करता है, पर फिर भी मन का खोखलापन प्रकट हो ही जाता है। लाखों बुद्धि-कौशल भी अन्त समय मन के किसी काम नहीं आ पाते। कैसे हम सत्याचरण वाले बन सकेंगे? हमारे सामने (मन के चातुर्य के फल स्वरूप) बनी असत्यता

(कूड़) की झूठी दीवार कैसे टूटेगी? प्रभु के विधान (हुकम) को प्रसन्नता पूर्वक (रज़ा) मानकर उसके अनुसार चलने से ही यह संभव होता है। यह विधान सम्पूर्ण सृष्टि में अन्तर्निहित है।। १ ।।

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ॥ हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई ॥ हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ॥ इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि ॥ हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ॥ नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ॥२॥

उस अनन्त शक्तिपूर्ण स्वयम्भू (सैभं) सत्ता के अपने सृजनात्मक 'हुकम' के फलस्वरूप सृष्टि की रचना होती है और (प्रभु की उस स्पंदन लीला के विधान में उत्पन्न हो कर) उस 'हुकम' का वर्णन कर सकना असंभव है। जीव जन्तु उसी विधान (हुकम) में उत्पन्न होकर उसी में चलते हुए बड़प्पन के अधिकारी बनते हैं। उत्तम माने जाने वाले एवं तथाकथित नीच समझे जाने वाले सब एक ही परमात्मा के विधान (हुकम) के प्रकटीकरण हैं, जो उसके 'हुकम' के अधीन अपने किए अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार सुख और दुख प्राप्त करते हैं। कई ऐसे हैं जिन पर उस प्रभु रूपी 'हुकम' की विशेष कृपा है और जो बख्श दिए गए हैं पर साथ ही साथ कई ऐसे भी हैं जो (अहंकार संयुक्त ही बने रहकर बेशक उस अनन्त सत्ता प्रभु को मानने वाले समझे जाएं पर वे उसमें लीन नहीं हो पाते एवं) उस के चारों ओर जन्म-मरण के दुख भोगते चक्कर लगाते रहते हैं। सारा ही ब्रह्मांड उसके विधान 'हुकम' के अंतर्गत अपना कार्य नियमित ढंग से करता है। कोई भी उस विधान से बाहर नहीं है। जिसने उस 'हुकम' की लय को बूझ लिया है उसको हउमै (अहं) के अन्तर्गत कष्ट नहीं भोगने पड़ते (हुकम को बूझना और अहंकार का नाश करना वास्तव में एक ही क्रिया के दो नाम हैं)।। २ ।।

गावै को ताणु होवै किसै ताणु ॥ गावै को दाति जाणै नीसाणु ॥ गावै को गुण वडिआईआ चार ॥ गावै को विदिआ विखमु वीचारु ॥ गावै को साजि करे तनु खेह ॥ गावै को जीअ लै फिरि देह ॥ गावै को जापै दिसै दूरि ॥ गावै को वेखै हादरा हदूरि ॥ कथना कथी न आवै तोटि ॥ कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि ॥ देदा दे लैदे थकि पाहि ॥ जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥ हुकमी हुकमु चलाए राहु ॥ नानक विगसै वेपरवाहु ॥३॥

अपनी-अपनी शक्ति के अनसुार, प्रत्येक जीव उस वैधानिक सत्ता प्रभु के बल का वर्णन कर रहा है। कोई उसकी दी हुई विभूतियों को उसी का स्वरूप समझकर उसके गुण गाता है। कोई उसके गुणों और बड़प्पन के सौंदर्य का गायन करता है। कोई बौद्धिक ज्ञान

के आधार पर उसके द्वारा क्रियाशील विषम नियमों की व्याख्या करता है और उसके गुण गाता है। कोई उसको सृजनात्मक एवं संहारक सत्ता के रूप में गाता है; कोई उसको घट-घट में प्राण फूंकने और प्राणों को अपने में लीन करने वाले के रूप में गाता है। कोई उसको अगम्य अगोचर मानता है। कोई उसको अपने आगे पीछे, नीचे ऊपर दसों दिशाओं में अंग-संग अनुभव करता है। उसके हुकम के गुणों का कथन करने वाले करोड़ों ही जीव हैं पर उसके विधान का अन्त नहीं पाया जा सका है। दाता-प्रभु की विभूतियों को लेने वाले थक जाते हैं पर देने वाले परमात्मा के दिए चले जाने का अन्त नहीं। युगों युगान्तरों तक समाप्त न होने वाली उसकी निधियां अक्षय हैं जिसे यह संसार युगों युगों तक खाता-खिलाता रहता है। प्रभु सत्ता अपने ढंग से संसार का कार्य व्यवहार अनादि काल से ही चलाती चली जा रही है और पूरे ब्रह्मांड के झमेलों के फलस्वरूप भी परम सत्ता कभी खिन्न नहीं होती (देना और खिले रहना, देकर प्रसन्नता अनुभव करना ही प्रभु का गुण है)।। ३ ।।

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु ॥ आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु ॥ फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु ॥ मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु ॥ अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥ करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ॥ नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु ॥४॥

प्रेम की भाषा में बूझा जा सकने वाला चिरन्तन, अनन्त प्रभु का न्याय सत्य है। उसकी भाषा अपार प्रेम है। पुनः पुनः मनुष्य उससे याचना करता है और सदैव वह दाता रूप प्रभु देता चला जाता है। फिर कैसे हम अर्पित हों जिससे उसका दरबार दृष्टिगत हो सके? कैसी पुकार लगाएं जिसे सुनकर वह प्रेम-विभोर हो उठे? ब्रह्म बेला में सच्चे नाम और उसके उदात्त विचारों को मन में धारण किया जाना चाहिए। अच्छे विचारों के फलस्वरूप ही हमें (अच्छा) जीवन प्राप्त होता है और उसकी कृपा से (झूठ की दीवार तोड़कर) मुक्ति का द्वार दिखाई देता है। हे नानक ! इस तरह उस अनन्त शक्ति सम्पन्न सत्य स्वरूप प्रभु की व्यापकता का अनुभव हो जाता है।। ४ ।।

थापिआ न जाइ कीता न होइ ॥ आपे आपि निरंजनु सोइ ॥ जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु ॥ नानक गावीऐ गुणी निधानु ॥ गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ ॥ दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ ॥ गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई ॥ गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई॥ जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई ॥ गुरा इक देहि बुझाई ॥

सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥५॥

उसको स्थापित नहीं किया जा सकता और न ही उसका सृजन किया जा सकता है। वह स्वयंभू परमात्मा माया से परे है। जिसने उसे हृदय में धारण कर उसकी सेवा की उसने आदर प्राप्त किया। हे नानक, हम सब उस गुणनिधि का गुणानुवाद करें। गाएं सुनें और मन में प्रभु प्रेम बसाएं। जो ऐसा करता है वह क्लेश को त्याग, सुख को मन में धारण कर लेता है। गुरु की ओर उन्मुख होने पर ही जगत में व्याप्त समसरता के संगीत का, ज्ञान का और गुरु की ओर उन्मुख होने पर ही परमात्मा की सर्वव्यापकता का अनुभव होता है। गुरु ही शिवम् (कल्याणकारी) तत्व है, गुरु ही गोरख, (सृष्टि रक्षक) ब्रह्म है और गुरु ही (पर्वत की तरह अडिग) माँ पार्वती है। उस प्रभु के विधान को समझ सकने पर भी वह अवर्णनीय है। हे गुरु, मेरी एक पिपासा सदैव बनी रहे कि सब जीवों के दाता एक ही प्रभु को मैं कभी न भूलूं।। ५।।

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ॥ जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ॥ मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ॥ गुरा इक देहि बुझाई ॥ सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥ ६॥

यदि उसे रिझा सकूं तो मैं तीर्थों पर भी स्नान करूँ अन्यथा बिना उसे प्रसन्न किए स्नानों से क्या लाभ? उत्पन्न जितनी भी सृष्टि दृष्टिगोचर है, सब में कर्म किए बिना कोई क्या पा सका है? केवल एक ही परमात्मा की सुशिक्षा में आस्था रखने पर ही मानव की बुद्धि में अवस्थित रत्नों, जवाहिरों और माणिकों का अनुभव होने लगता है। हे गुरु ! मेरी एक पिपासा सदैव बनी रहे कि सब जीवों के दाता प्रभु को मैं कभी न भूलूं।। ६ ।।

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ॥ नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ॥ चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ॥ जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के ॥ कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ॥ नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ॥ तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे ॥७॥

यदि चारों युगों जितनी आयु, प्रत्युत उससे भी दशगुणा आयु हो, नव खण्डों में उसे जाना जाता हो और सब उसके अनुगामी हों; ऊँचे नाम के साथ संसार में यश एवं कीर्ति उपलब्ध कर ले, परन्तु यदि उस प्रभु की दृष्टि में न चढ़ सका तो ऐसे मनुष्य की कुशल क्षेम भी पूछने वाला कोई नहीं मिलता। प्रत्युत (इतना सम्पन्न होने पर भी विपन्न) वह मनुष्य

परमात्मा के सामने कीड़ों में भी निम्न कीड़ा है और दोषी है। हे नानक, वह प्रभु गुणहीनों को गुणयुक्त करता है और गुणवानों को भी गुण (विवेक बुद्धि) देता है। ऐसा कोई भी सुझायी नहीं पड़ता जो उस प्रभु को कोई गुण प्रदान कर सकता है।। ७ ।।

सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ ॥ सुणिऐ धरति धवल आकास ॥ सुणिऐ दीप लोअ पाताल ॥ सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥ नानक भगता सदा विगासु॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥८॥

(अन्तर्मन से प्रभु नाम की विश्वव्यापी चैतन्य स्वरूपी समरसता की संगीत लहरी) श्रवण करने से सिद्ध, पीरों, देवताओं और नाथों के पद प्राप्त हो जाते हैं। प्रभु नाम श्रवण से धरती, वृषभ और आकाश का ज्ञान हो जाता है कि वास्तव में परमात्मा ही द्वीपों, लोकों और पातालों का आश्रय है। प्रभु नाम श्रवण से साधारण मनुष्य भी कालातीत हो जाता है। हे नानक, भक्तों का अर्न्तमन सदैव (उदात्त तत्व से युक्त होकर) खिला रहता है, क्योंकि प्रभु नाम श्रवण से क्लेश और पाप का नाश हो जाता है ।। ८ ।।

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु ॥ सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु ॥ सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद ॥ सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद ॥ नानक भगता सदा विगासु ॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥६॥

(नाम) श्रवण से शिव ब्रह्मा इन्द्र का पद प्राप्त हो जाता है। नाम श्रवण से विषयी मनुष्य भी प्रभु स्तुति की ओर उन्मुख हो उठता है। नाम श्रवण से योग की युक्तियों और शरीर के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान हो जाता है। नाम श्रवण से शास्त्र स्मृति और वेदों के मूल तत्व का ज्ञान हो जाता है। हे नानक, भक्तों का अन्तर्मन सदैव (विभोर अवस्था में) खिला रहता है क्योंकि प्रभु नाम श्रवण से क्लेश और पाप का नाश हो जाता है।। ६ ।।

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु ॥ सुणिऐ अठसठि का इसनानु ॥ सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु ॥ सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ॥ नानक भगता सदा विगासु ॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥१०॥

प्रभु नाम श्रवण से त्याग, संतुष्टि और ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। नाम श्रवण अड़सठ तीर्थों के स्नान तुल्य है। प्रभु नाम श्रवण से अनेक विद्र्याओं में पारगंत होने पर मिलने वाला आदर भी स्वतः ही मिल जाता है। नाम श्रवण से ही समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। हे नानक, भक्तों का अन्तर्मन सदैव प्रफुल्लित रहता है क्योंकि प्रभु नाम श्रवण से क्लेश और पाप का नाश हो जाता है।। १० ।।

सुणिऐ सरा गुणा के गाह ॥ सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ॥ सुणिऐ अंधे

पावहि राहु ॥ सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ॥ नानक भगता सदा विगासु ॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥११॥

(अन्तर्मन से प्रभु की विश्वव्यापी चैतन्य स्वरूपी समरसता की संगीत लहरी) श्रवण करने से मानव गुणों के समुद्रों के अवगाहन के योग्य हो जाता है। प्रभु-नाम श्रवण से शेख, पीर और सम्राटों की पदवियाँ प्राप्त हो जाती हैं। नाम श्रवण से अंधबुद्धि मनुष्य भी ज्ञान-प्रकाश से युक्त हो जाते हैं। नाम श्रवण से भवसागर की गहराई का रहस्य ज्ञात हो जाता है। हे नानक, भक्तों का अन्तर्मन सदैव प्रफुल्लित रहता है क्योंकि प्रभु नाम श्रवण से क्लेश और पाप का नाश हो जाता है।। ११ ।।

मंने की गति कही न जाइ ॥ जे को कहै पिछै पछुताइ ॥ कागदि कलम न लिखणहारु ॥ मंने का बहि करनि वीचारु ॥ ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१२॥

(श्रवणोपरान्त तदनुसार) शिरोधार्य कर कार्यरूप में परिणत करने वाले की महिमा अनिर्वचनीय है। यदि कोई वर्णन करे भी तो उसे (प्रयत्न की अपर्याप्तता के कारण) पछताना पड़ता है। (भले ही) ऐसे मनस्वी की महिमा पर विद्वत् मंडली बैठकर विचार करती है, पर उसकी महिमा लेखनी, कागज पर लिखने में असमर्थ है। यदि कोई मन से श्रद्धापूर्वक उसे अपनाए तो मायातीत परमात्मा के नाम का ऐसा प्रभाव है।। १२ ।।

मंनै सुरति होवै मनि बुधि ॥ मंनै सगल भवण की सुधि ॥ मंनै मुहि चोटा ना खाइ ॥ मंनै जम कै साथि न जाइ ॥ ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१३॥

शिरोधार्य कर कार्यरूप में परिणत करने वाला, मन और प्रज्ञा के रहस्योद्घाटन में तल्लीन हो जाता है। ऐसे मनस्वी को सब भुवनों की सुधि हो जाती है। ऐसे मनस्वी का विषयों की चोटों की पीड़ा से साक्षात्कार नहीं होता। ऐसे मनस्वी को (लेखा देने के लिए) यमपुरी नहीं जाना पड़ता। यदि कोई मन से श्रद्धापूर्वक अपनाए तो मायातीत परमात्मा के नाम का ऐसा प्रभाव है।। १३ ।।

मंनै मारगि ठाक न पाइ ॥ मंनै पति सिउ परगटु जाइ ॥ मंनै मगु न चलै पंथु ॥ मंनै धरम सेती सनबंधु ॥ ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥ १४॥

शिरोधार्य कर कार्य में परिणत करने वाला, मार्ग में कोई अवरोध नहीं पाता। मनस्वी, सम्मानित रूप में प्रकट होकर गमन करता है। ऐसा मनस्वी संकीर्ण साम्प्रदायिक

का अनुसरण नहीं करता है। यदि कोई मन से श्रद्धापूर्वक उसे अपनाये तो मायातीत परमात्मा के नाम का ऐसा प्रभाव है।। १४ ।।

मंनै पावहि मोखु दुआरु ॥ मंनै परवारै साधारु ॥ मंनै तरै तारे गुरु सिख॥ मंनै नानक भवहि न भिख ॥ ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१५॥

(श्रवणोपरान्त तदनुसार) शिरोधार्य कर कार्यरूप में परिणत करने वाला झूठ की भूल भुलैयां से मुक्त होने का द्वार पा जाता है। ऐसा मनस्वी कुटुम्ब का भी सुदृढ़ आध ार बनता है। ऐसा मनस्वी स्वयं को भी और जिज्ञासुओं को भी भव-सागर से पार करता है। हे नानक ! ऐसा मनस्वी दूर-दूर घूम कर भिक्षा नहीं मांगता। यदि कोई मन से श्रद्धापूर्वक उसे अपनाए तो मायातीत परमात्मा के नाम का ऐसा प्रभाव है।। १५ ।।

पंच परवाण पंच प्रधानु ॥ पंचे पावहि दरगहि मानु ॥ पंचे सोहहि दरि राजानु ॥ पंचा का गुरु एकु धिआनु ॥ जे को कहै करै वीचारु ॥ करते कै करणै नाही सुमारु ॥ धौलु धरमु दइआ का पूतु ॥ संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति ॥ जे को बुझै होवै सचिआरु ॥ धवलै उपरि केता भारु ॥ धरती होरु परै होरु होरु ॥ तिस ते भारु तलै कवणु जोरु ॥ जीअ जाति रंगा के नाव ॥ सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥ एहु लेखा लिखि जाणै कोइ ॥ लेखा लिखिआ केता होइ ॥ केता ताणु सुआलिहु रूपु ॥ केती दाति जाणै कौणु कूतु ॥ कीता पसाउ एको कवाउ ॥ तिस ते होए लख दरीआउ ॥ कुदरति कवण कहा वीचारु ॥ वारिआ न जावा एक वार ॥ जो तुधु भावै साई भली कार ॥ तू सदा सलामति निरंकार ॥१६॥

(सुनने एवं मानने की कला में दक्ष) सुविशिष्ट चुने हुए ऐसे पंच (परमात्मा के समक्ष एवं) यहीं कार्यक्षेत्र में प्रधानपद पाते हैं। यही पंच प्रभु दरबार में भी आदर पाते हैं। यही पंच राज-दरबारों को शोभायुक्त करते हैं। ऐसे पंचजनों का प्रेरणा स्रोत केवल एक प्रभु का ध्यान ही रहता है। (फिर भी) चाहे कोई वर्णन कर देख अथवा विचार करले, उस कर्ता के कृत्य अनन्त है। धर्म रूपी वृषभ दया का पुत्र है, जिसके संतोष रूपी सूत्र ने सबको सम्बद्ध कर रखा है। वृषभ पर अवस्थित भार के तथ्य को जो बूझ लेता है वह ज्ञान प्रकाश से आलोकित हो उठता है। धरती एक ही न होकर और भी हैं। फिर (सब से नीचे के) तल वाला वृषभ किस पर स्थित है ? जीव जन्तु अनेक प्रकार के हैं। इन सबने निरन्तर गतिशील मुक्त लेखनी द्वारा (प्रभु महिमा का) वर्णन किया है। किसी विरले को ही यह लेखन कौशल और उसके वर्णन की वृहदता का अनुमान प्राप्त होता है। (वह परमात्मा)

कितना बलशाली और सौन्दर्य युक्त है। कितने (उसके दिए हुए) वरदान हैं, कौन क्षुद्र उनका अनुमान लगा सकता है। निश्चित एक ही शब्द के विधान अनुसार उसने (अपने आप को) प्रसारित कर सृजन किया। उसी विधान के अन्तर्गत ही (जीवन के) लाखों प्रवाह फूट निकले। मेरी क्या सामर्थ्य है कि (प्रभु शक्ति के बारे में) विचार सकूं। मैं (इतना तुच्छ हूँ कि), एक बार भी समर्पित होने योग्य नहीं। हे निराकार तुम्हें रिझा सकने वाले कार्य ही भले हैं। (केवल) तुम (ही) सदैव सिथर हो।। १६ ।।

असंख जप असंख भाउ ॥ असंख पूजा असंख तप ताउ ॥ असंख गरंथ मुखि वेद पाठ ॥ असंख जोग मनि रहहि उदास ॥ असंख भगत गुण गिआन वीचार ॥ असंख सती असंख दातार ॥ असंख सूर मुह भख सार॥ असंख मोनि लिव लाइ तार ॥ कुदरति कवण कहा वीचारु ॥ वारिआ न जावा एक वार ॥ जो तुधु भावै साई भली कार ॥ तू सदा सलामति निरंकार ॥१७॥

(सृष्टि में) असंख्य प्रकार से (तेरा) जाप चल रहा है। जीव असंख्य प्रकार से प्रेम व्यवहार कर रहे हैं। असंख्य जीव पूजा कर रहे हैं और (तुझे प्राप्त करने के लिए) जीव असंख्य साधनों का प्रयोग कर रहे हैं। असंख्य जीव मुंह से ग्रन्थों में निहित ज्ञान तत्व का पाठ कर रहे हैं। असंख्य योगी बनकर मन से (संसार के प्रति) उदासीन रहते हैं। असंख्य भक्त (तेरे) गुण और ज्ञान (की अगाधता) पर विचार कर रहे हैं। असंख्य ही जीव सत्य धर्म को अपनाने वाले और असंख्य ही दानी दातार है। असंख्य शूरवीर सम्मुख होकर शस्त्रों के वारों को सहन करते हैं। असंख्य जीव मौन धारण कर एक ही धुन में तल्लीन बैठे हैं। मेरी क्या सामर्थ्य है कि (प्रभु शक्ति के बारे में) विचार सकूं। मैं (इतना तुच्छ हूं कि) एक बार भी समर्पित होने योग्य नहीं। हे निराकार, तुम्हें रिझा सकने वाले कार्य ही भले हैं। (केवल) तुम (ही) सदैव स्थिर हो।। १७ ।।

असंख मूरख अंध घोर ॥ असंख चोर हरामखोर ॥ असंख अमर करि जाहि जोर॥ असंख गलवढ हतिआ कमाहि ॥ असंख पापी पापु करि जाहि ॥ असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥ असंख मलेछ मलु भखि खाहि ॥ असंख निंदक सिरि करहि भारु ॥ नानकु नीचु कहै वीचारु ॥ वारिआ न जावा एक वार ॥ जो तुधु भावै साई भली कार ॥ तू सदा सलामति निरंकार ॥ १८॥

(सृष्टि में) असंख्य ही मूर्ख घोर अन्ध (बुद्धि) हैं। असंख्य चोर पराए माल पर पलते रहने वाले हैं। असंख्य ही ऐसे मनुष्य हैं जो शक्ति सम्पन्न होकर अपने आदेश चलाकर अनुचित कार्य कर जाते हैं। असंख्य की शोषक, हत्या करने का पाप कमा रहे हैं। असंख्य पापी पाप अर्जित कर जाते हैं। असंख्य झूठे झूठ में ही विचरण करते हैं।

असंख्य-मलेच्छ अखाद्य का ही भक्षण किए चले जा रहे हैं। असंख्य ही निन्दक अपने सिर पर भार को बढ़ाते चले जा रहे हैं। (और भी असंख्य होंगे) बेचारे (विनम्र) नानक ने अपने (तुच्छ) विचार अनुसार कहा है। मैं (इतना तुच्छ हूँ कि) एक बार भी समर्पित होने योग्य नहीं। हे निराकार, तुम्हें रिझा सकने वाले कार्य ही भले हैं। (केवल) तुम (ही) स्थिर हो।। १८।।

असंख नाव असंख थाव ॥ अगंम अगंम असंख लोअ ॥ असंख कहहि सिरि भारु होइ ॥ अखरी नामु अखरी सालाह ॥ अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥ अखरी लिखणु बोलणु बाणि ॥ अखरा सिरि संजोगु वखाणि ॥ जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि ॥ जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥ जेता कीता तेता नाउ ॥ विणु नावै नाही को थाउ ॥ कुदरति कवण कहा वीचारु ॥ वारिआ न जावा एक वार ॥ जो तुधु भावै साई भली कार ॥ तू सदा सलामति निरंकार ॥१९॥

(सृष्टि में) नाम भी असंख्य हैं और स्थान भी असंख्य हैं। असंख्य लोक हैं जो (मनुष्य के लिए) अगम्य हैं। असंख्य कहना भी पाप (भूल) है (क्योंकि उसके वर्णन के लिए असंख्य शब्द भी अपर्याप्त हैं)। फिर भी अक्षरों के माध्यम से ही प्रभु नाम जाना जाता है और अक्षरों से ही उसकी स्तुति की जाती है। अक्षरों द्वारा ही ज्ञान गीतों की सहायता से उस (प्रभु) के गुणों का गायन किया जा सकता है। अक्षरों के माध्यम से ही लिखना सम्भव है। ललाट पर का भाग्य लेख भी अक्षरों में ही अंकित है। जिसने ये लेख लिखे हैं उस लेखा-मुक्त परमात्मा के मस्तक पर ऐसे लेख नहीं हैं। जैसे-जैसे परमात्मा आदेश करता है तदनुसार प्राप्तियां होती हैं। परमात्मा द्वारा रचित सम्पूर्ण सृष्टि विभिन्न रूपों में (परमात्मा के) नाम से संयुक्त है। (परमात्मा के) नाम-विहीन कोई स्थान नहीं। मेरी क्या सामर्थ्य है कि (प्रभु शक्ति के बारे) विचार सकूं। मैं एक बार भी समर्पित होने योग्य नहीं। हे निराकार ! तुम्हें रिझा सकने वाले कार्य ही भले हैं। (केवल) तुम (ही) सदैव स्थिर हो।। १६ ।।

भरीऐ हथु पैरु तनु देह ॥ पाणी धोतै उतरसु खेह ॥ मूत पलीती कपड़ु होइ ॥ दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ॥ भरीऐ मति पापा कै संगि ॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥ पुंनी पापी आखणु नाहि ॥ करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥ आपे बीजि आपे ही खाहु ॥ नानक हुकमी आवहु जाहु ॥२०॥

यदि पैर-शरीर धूल से सन जाए तो पानी द्वारा धोने से मैल छूट जाती है। यदि मूत्रादि से कपड़ा गन्दा हो जाए तो साबुन द्वारा उसे धो लिया जाता है। (परन्तु) यदि बुद्धि पाप संयुक्त हो जाती है तो उसे (प्रभु) नाम की रंगत द्वारा ही निखारा जा सकता है। पुण्यात्मा पापात्मा केवल तथाकथित ही नहीं हैं। जैसे कर्म तुम करोगे तदनुसार (संस्कार)

अपने साथ ले जाओगे। जैसा बीज बोओगे वैसा ही स्वयं खाना पड़ेगा। हे नानक (अपने कर्मों के अनुसार) प्रभु के विधान के अन्तर्गत जीव आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है ।। २० ।।

तीरथु तपु दइआ दतु दानु ॥ जे को पावै तिल का मानु ॥ सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ ॥ अंतरगति तीरथि मलि नाउ ॥ सभि गुण तेरे मै नाही कोइ ॥ विणु गुण कीते भगति न होइ ॥ सुअसति आथि बाणी बरमाउ ॥ सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥ कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु ॥ कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु ॥ वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु ॥ वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ॥ थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई ॥ जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥ किव करि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा ॥ नानक आखणि सभु को आखै इक दू इकु सिआणा॥ वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै ॥ नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै ॥२१॥

तपस्या, तीर्थ यात्रा, दान देकर और दयालु बनने पर यदि किसी को आदर मिलता है तो वह केवल तिल भर है। (परन्तु) जिसने अन्तर मन से (प्रभु नाम की विश्वव्यापी चैतन्य स्वरूपी समरसता की संगीत लहरी का) श्रवण किया, तत्पश्चात (शिरोधार्यकर) कार्यरूप में परिणत करने के लिए हृदय में उसके प्रेम को बसाया, उस (मनुष्य) ने (सही रूप में) अन्तर्मन के तीर्थ पर मल मल कर स्नान किया है। (हे प्रभु) मैं कुछ नहीं हूँ। सब गुण तो आपके हैं। (नैतिक एवं आध्यात्मिक) गुणों के बिना भक्ति नहीं हो सकती। तुम ही वाणी हो, ब्रह्मा हो। तुम्हारी सदैव जय हो। तुम सदैव सत्य रूप से स्थिर हो, सुन्दर हो और सदैव प्रफुल्लित रहते हो। कौन समय, कौन तिथि और कौन सा दिन था। कौन सी ऋतु और कौन सा महीना था जब यह दृष्ट संसार अस्तित्व में आया। पंडित भी उस समय को न जान सके, क्योंकि यदि ऐसा होता तो पुराणों में (निश्चित रूप से) लिखा होता। काज़ी भी उस समय को न पा सके अन्यथा कुरान (शरीफ) में संकलित कर देते। योगी भी ऋतु माह, दिन, तिथि, आदि के बारे में नहीं जानते। जिस कर्ता ने सृष्टि रचना की है वह स्वयं ही इसके बारे में जानता है। कैसे कहूँ कैसे स्तुति करूं ? कैसे उसका वर्णन करूं और कैसे उसे जानू ? हे नानक, प्रत्येक जीव अपने आपको एक दूसरे से बढ़कर बुद्धिमान मानते हुए उस (परमात्मा) का वर्णन करता है। वह परमात्मा अनन्त है, उसका विधान (हुकम) विशाल है जिसके अन्तर्गत सब कार्य होते हैं। हे नानक, यदि कोई अपने

बुद्धि बल से उसे जानना चाहता है तो उसे आगे (परमात्मा के सम्मुख) जाने पर आदर नहीं मिलता।। २१ ।।

पाताला पाताल लख आगासा आगास ॥ ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात ॥ सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु॥ लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु ॥ नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु ॥२२॥

पातालों के परे लाखों पाताल और आकाशों के परे भी लाखों आकाश हैं। वेद एक स्वर में कहते हैं कि ऐसी खोज में वे थक चुके हैं। कतेब (मुसलमान और ईसाइयों की चार धार्मिक पुस्तकें) अठारह हज़ार संसार मानते हैं जिन सब के मूल में एक ही तत्व (परमात्मा) है। वास्तव में निशिचित संख्याएं उसका पूर्ण लेखा जोखा करने से पहले ही नष्ट हो जाती हैं। हे नानक, गरिमायुक्त विशाल कहे जाने वाले परमात्मा को स्वयं वह परमात्मा ही जानता है।। २२ ।।

सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ ॥ नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि ॥ समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु ॥ कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥२३॥

प्रशंसनीय प्रभु के बड़प्पन का गुणगान करने पर भी परमात्मा को पूर्णरूप से जानने की सूझ-बूझ नहीं आ पाती। नदियां और छोटे-छोटे जल स्रोत विशाल समुद्र में लीन हो जाते हैं पर उसकी थाह नहीं पा सकते। समुद्र की भांति धन रत्न और पदार्थों के पहाड़ के पहाड़ रखने वाले धनिक शाह सुल्तान उस कीड़ी की भी गरिमा के तुल्य नहीं हो सकते जिस (कीड़ी) ने मन से प्रभु को विस्मृत नहीं किया है।। २३ ।।

अंतु न सिफती कहणि न अंतु ॥ अंतु न करणै देणि न अंतु ॥ अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु ॥ अंतु न जापै किआ मनि मंतु ॥ अंतु न जापै कीता आकारु॥ अंतु न जापै पारावारु ॥ अंत कारणि केते बिललाहि ॥ ता के अंत न पाए जाहि ॥ एहु अंतु न जाणै कोइ ॥ बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥ वडा साहिबु ऊचा थाउ ॥ ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥ एवडु ऊचा होवै कोइ ॥ तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥ जेवडु आपि जाणै आपि आपि ॥ नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥

वर्णन करने से (परमात्मा के) गुणों का अन्त नहीं पाया जा सकता। (परमात्मा की) कृतियों उपहारों का भी अन्त नहीं पाया जा सकता। देखने सुनने पर भी अन्त नहीं पाया जा सकता। (परमात्मा द्वारा) रचित आकृतियां अनन्त हैं और दृष्टि जगत-विस्तार को नहीं

जान पाती। ओर-छोर ढूंढ़ने की व्याकुलता में कितने ही (लोग) तड़प रहे हैं, परन्तु उस (प्रभु) की सीमा नहीं पाई जा सकी। यह (अपेक्षित) सीमा कोई नहीं जान सकता। वर्णन की बृहदता के साथ वह (प्रभु) बृहदतर होता चला जाता है। परमात्मा विशाल है और उसका (प्रत्येक) स्थान ऊंचा है।। ऊंचे (परमात्मा) का नाम भी ऊंचा है। इतना विशाल ऊंचा कोई हो, वही उस ऊंचे (परमात्मा) के रहस्यों को समझ सकता है। अपने बड़प्पन के विषय में वह आप ही जानता है। हे नानक, प्रभु कृपा-दृष्टि और अनुकम्पा से ही सब वरद भेटें प्राप्त होती हैं।। २४ ।।

बहुता करमु लिखिआ ना जाइ ॥ वडा दाता तिलु न तमाइ ॥ केते मंगहि जोध अपार ॥ केतिआ गणत नही वीचारु ॥ केते खपि तुटहि वेकार ॥ केते लै लै मुकरु पाहि ॥ केते मूरख खाही खाहि ॥ केतिआ दूख भूख सद मार॥ एहि भि दाति तेरी दातार ॥ बंदि खलासी भाणै होइ ॥ होरु आखि न सकै कोइ ॥ जे को खाइकु आखणि पाइ ॥ ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ॥ आपे जाणै आपे देइ ॥ आखहि सि भि केई केइ ॥ जिस नो बखसे सिफति सालाह ॥ नानक पातिसाही पातिसाहु ॥२५॥

उसकी अनुकम्पा को लिख पाना असम्भव है। तृष्णा रहित वह दाता विशाल है। कितने योद्धा (प्रभु घर से नित्य) मांग रहे हैं, उनकी विचार बुद्धि द्वारा गणना नहीं की जा सकती। अगणित जीव विकारों में लीन उलझे टूट रहे हैं। अगणित (जीव) उससे लेकर भी कृतघ्नता प्रकट कर रहे हैं। कितने ही मूर्ख (लेकर) केवल खाते चले जा रहे हैं। कितने ही केवल दुख और भूख की मार से ही सदैव मारे जा रहे हैं। हे दातार, यह भी तेरी देन है। बंधन से मुक्ति विधान के अन्तर्गत ही होती है। (परन्तु) यदि कोई अल्पज्ञ (किसी अन्य साधन के बारे में) बताना चाहता है, तो वही जानता है कि उसे कितनी मुंह की खानी पड़ती है। प्रभु, हमारी आवश्यकताओं को बूझ कर आप ही देने वाला है, ऐसा कहने वाले भी कई हैं। जिस मनुष्य पर प्रभु, गुणानुवाद करते चले जाने की कृपा करते हैं, हे नानक, वह सम्राटों का भी सम्राट है।। २५ ।।

अमुल गुण अमुल वापार ॥ अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥ अमुल आवहि अमुल लै जाहि ॥ अमुल भाइ अमुला समाहि ॥ अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु॥ अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥ अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु ॥ अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥ अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ ॥ आखि आखि रहे लिव लाइ ॥ आखहि वेद पाठ पुराण ॥ आखहि पड़े करहि वखिआण ॥ आखहि बरमे आखहि इंद ॥ आखहि गोपी तै गोविंद ॥ आखहि ईसर आखहि

सिध॥ आखहि केते कीते बुध ॥ आखहि दानव आखहि देव ॥ आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ॥ केते आखहि आखणि पाहि ॥ केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥ एते कीते होरि करेहि ॥ ता आखि न सकहि केई केइ ॥ जेवडु भावै तेवडु होइ ॥ नानक जाणै साचा सोइ ॥ जे को आखै बोलुविगाड़ु ॥ ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ॥२६॥

(परमात्मा के) गुण अमूल्य हैं और उनका लेन देन भी अमूल्य है। (परमात्मा के) गुणों के ग्राहक भी अमूल्य हैं और गुणों के भंडार भी अमूल्य हैं। (गुण ग्राहक के रूप में) आने वाले भी अमूल्य हैं और गुणों को ग्रहण कर ले जाने वाले भी अमूल्य हैं। जो मनुष्य प्रभु प्रेम में मग्न हैं और प्रभु में लीन हैं वे भी अमूल्य हैं। उसका विधान अमूल्य है और उसका दरबार अमूल्य है। उसके मानदण्ड अमूल्य हैं उसकी तुला भी अमूल्य है, उसकी अनुकम्पा और समृति चिन्ह भी अमूल्य है। उसकी दयालुता और हुकुम भी अमूल्य है। उस अमूल्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। एक सुर होकर भी उसका वर्णन करते रहने पर भी अन्त में रुक (थक) जाना पड़ता है। वेदों पुराणों के माध्यम से उसके बारे में कहा जाता है। लोग कहते हैं, पढ़ते हैं और उस प्रभु की व्याख्यायें करते हैं। कई ब्रह्मा, इन्द्र, गोपिकाएं, कृष्ण उस प्रभु का अनुमान लगाते हैं। कई शिव, सिद्ध बुद्ध, दानव, देव, सुर, नर, मुनि-जन और अन्य सेवक परमात्मा के बारे में अनुमान लगाते हैं। कितने ही कहते हैं और कितने ही कहने का प्रयत्न करते हैं। कितने ही वर्णन का प्रयत्न करते करते ही यहां से उठ जाते हैं। जितने पैदा किये हैं यदि और भी (इतने) जीव (हे परमात्मा) तुम पैदा कर दो तब भी तुम्हारा वर्णन नहीं किया जा सकता है। हे परमात्मा, तुम्हारा विस्तार तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है और हे नानक, वह सत्य स्वरूप स्वयं ही यह सब (रहस्य) समझता है। यदि कोई डींग हांकने वाला इस तरह कह पाने की डींग हांकता है तो उसके लिए मूर्खों का भी मूर्ख शब्द लिखा जाता है।। २६ ।।

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ॥ वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ॥ केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे ॥ गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ॥ गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥ गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ॥ गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ॥ गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे ॥ गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ॥ गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ॥ गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ॥ गावनि रतन

उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥ गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ॥ गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥ सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥ होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे ॥ सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥ है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥ रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥ करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥ जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ॥ सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥

हे प्रभु तेरा वह घर और उस घर का द्वार कैसा है जहाँ बैठकर तू सभी जीवों का भरण पोषण कर रहा है। तेरी इस सृष्टि में अनेकों ही वाद्य यन्त्र एवं राग हैं। अनन्त जीव उनको बजाने वाले हैं। अनेक रागिनियों समेत रागों के नाम कहे जाते हैं। अनेकों ही जीव तेरे गुणानुवाद करने वाले हैं। हे प्रभु, पवन, जल, अग्नि आदि तेरे ही गुण गा रहे हैं। धर्मराज तेरे द्वारा पर खड़ा होकर तेरा ही गुणानुवाद कर रहा है। चित्रगुप्त भी जो लेखनी में दक्ष हैं और जिनके लिखे हुए लेखों पर धर्मराज विचार करता है, वे सब भी तेरी प्रशंसा के गीत गा रहे हैं। हे प्रभु, अनेकों देवियां, शिव और ब्रह्मा जो तेरे ही बनाए हुए हैं और तेरे ही द्वार पर शोभायमान हैं, तेरे गुण गा रहे हैं। अनेकों इन्द्र अपने सिंहासनों पर बैठे हुए देवताओं समेत तेरे द्वार पर तेरा गुणानुवाद कर रहे हैं। अनेकों यति, दानी पुरुष और सन्तोषी व्यक्ति भी दरअसल तेरे ही गुण गा रहे हैं। अनेकों महाबली तेरे ही बड़प्पन का गुण गा रहे हैं। हे प्रभु, पंडित और ऋषिवर तेरे ही यश का गायन कर रहे हैं। व्यक्ति के मन को लुभा लेने वाली सुंदर स्त्रियां भी तेरे ही गुण गा रही हैं अर्थात् तेरे ही सौन्दर्य को प्रस्तुत कर रही हैं। स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक एवं पाताललोक के सभी जीव जन्तु तेरे ही बड़प्पन का गुणानुवाद कर रहे हैं। तेरे पैदा किए हुए रत्न, अड़सठ तीर्थ आदि तुझे ही गा रहे हैं। बड़े बलशाली शूरवीर अपने बल के माध्यम से तेरी ही प्रशंसा कर रहे हैं। जीवन के चारों प्रकार के स्रोत तुझे ही गा रहे हैं। तेरे द्वारा उत्पन्न सारी सृष्टि के खण्ड एवं मण्डल तेरा ही गुणानुवाद कर रहे हैं। वास्तव में उन्हीं लोगों का किया हुआ गुणानुवाद प्रशंसनीय है जो तेरे प्रेम में रंगे हुए हैं और ऐसे जीव ही तुझे भाते हैं। अनेकों अन्य जीव तेरे बड़प्पन का गायन कर रहे हैं और ऐसे जीवों की गणना असम्भव है। फिर भला नानक इन सब के बारे में क्या विचार प्रस्तुत कर सकता है। जिस परम सत्ता प्रभु ने यह सृष्टि उत्पन्न की है वह वर्तमान में भी मौजूद है एवं सदैव बना रहने वाला है। वह अनन्त शक्तिमान प्रभु सदा बना ही रहने वाला है और उसका बड़प्पन भी सदैव स्थिर

रहने वाला है। अनेक प्रकार की यह सृष्टि एवं माया की उत्पत्ति जिस प्रभु ने की है वह प्रभु इस सम्पूर्ण जगत को पैदा करके अपनी सृष्टि की संभाल भी स्वयं ही कर रहा है। जो उस प्रभु को भाता है वही वह करता है एवं कोई भी जीव उस प्रभु को आदेश नहीं दे सकता। वह प्रभु सारे संसार का सम्राट है एवं दरअसल सम्राटों का भी सम्राट है। अतः हे नानक, उसकी रज़ा में रहना ही उपयुक्त है।। २७ ।।

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ॥ खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥ आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ॥ आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८॥

संतुष्टि की मुद्राएं श्रम का पात्र (खप्पर) ध्यानरूपी भभूत, मौत का भय रूप गुदड़ी, विकार-रहित काया रूपी युक्ति, प्रेम रूपी डंडा धारण करने वाला ही श्रेष्ठ 'आई पंथ' का अनुसरण करने वाला है और वही सबको अपने सहपाठी साथी समझता हुआ पहले अपने मन को जीत कर, अखिल विश्व को जीत लेता है। (और इस सबके लिए) केवल उस प्रभु को ही नमस्कार करो जो सबका मूल है, निष्कलंक है, अनाहत है और युगों युगान्तरों में समान रूप से अवस्थित रहता है।। २८ ।।

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥ आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ॥ संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥ आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२९॥

ज्ञान रूपी भंडार को दयालुता रूपी भंडारिन से संयुक्त करके बांटने पर ही घट-घट में बज रही (चैतन्यता और समरसता की) नाद लहरी का अनुभव होता है। जब यह पता चल जाता है कि नाथों का भी नाथ वह, केवल एक परमात्मा है जिसने सारी सृष्टि को अपने साथ बांध रखा है तब ऋद्धियां और सिद्धियां सब व्यर्थ के भुलावे में डालने वाले स्वादों सी लगने लगती हैं। हमें यह पता चल जाता है कि परमात्मा की संयोगात्मक और वियोगात्मक कला (शक्ति) ही सब कार्य कलाप चला रही है और सब अपने-अपने किये कर्मों के फल स्वरूप बने लेखे में से उचित भाग को भोग रहे हैं। अतः केवल उस प्रभु को ही नमस्कार करो जो सबका मूल, निष्कलंक, अनाहत है और सर्वदा युग युगान्तर में समान रूप से अवस्थित रहता है।। २९ ।।

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥ इकु संसारी इकु भंडारी

इकु लाए दीबाणु ॥ जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥ ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥ आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३०॥

(ऐसा माना जाता है कि) युक्ति पूर्वक ईश्वर और माया के संयोग से तीन पुत्रों का आविर्भाव हुआ। एक सृजन कार्य, दूसरा पोषण और तीसरा संहार का काम करता है। परन्तु ये तीनों भी उस परमात्मा की आज्ञा में ही काम करते हैं और इसमें भी बड़ी बात यह है कि इन सबके तथ्यों को परमात्मा तो भलीभांति जानता है पर ये स्वयं उसको देखने में भी असमर्थ हैं अर्थात् परमात्मा इनकी पहुंच से भी परे हैं। अतः केवल उस प्रभु को ही नमस्कार करो जो सबका मूल है, निष्कलंक है, अनाहत है, और सर्वदा युग-युगान्तर में समान रूप से अवस्थित रहता है।। ३० ।।

आसणु लोइ लोइ भंडार ॥ जो किछु पाइआ सु एका वार ॥ करि करि वेखै सिरजणहारु ॥ नानक सचे की साची कार ॥ आदेसु तिसै आदेसु ॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३१॥

वह परमात्मा और उसके (अनन्त) भण्डार प्रत्येक लोक में अवस्थित हैं। उसने सबको पूर्ण बनाया है और अधूरे काम को पूरा करने की भांति उसे बार-बार अपने खजाने की ओर देते समय देखना नहीं पड़ता। वह सृजनकर्ता सबको पैदा करके उनकी देखभाल भी स्वतः ही करता है। हे नानक, सत्य स्वरूप उस ईश्वर का यह पोषण कार्य अबाध रूप से निरन्तर चल रहा है। अतः केवल उस प्रभु को ही नमस्कार करो जो सबका मूल है, निष्कलंक है, अनाहत है और सर्वदा युग युगान्तर में समान रूप से अवस्थित है ।। ३१ ।।

इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥ लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥ एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस ॥ सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ॥ नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥३२॥

एक जीभ लाख हो जाएं, लाख से बीस लाख हो जाएं और (प्रत्येक से) लाखों बार परमात्मा का नाम लिया जाए परन्तु उस प्रभु के साथ तादात्मय के रास्ते पर विभिन्न स्थितियों की सीढ़ी के सहारे ही गमन किया जाता है और उस प्रभु में लीन हुआ जा सकता है। आकाश के सुख की बातों को सुनकर कीड़ियों में भी आकाश छूने की लालसा जागृत होती है; (परन्तु) हे नानक, झूठ और अहं को त्यागे बिना प्रभु की कृपा दृष्टि नहीं होती और असत्यताओं के पाश में बद्ध जीव की यह लालसा और स्पर्धा भावना प्रभु स्मरण का कोरा अभिमान बनकर ही रह जाती है।। ३२ ।।

आखणि जोरु चुपै नह जोरु ॥ जोरु न मंगणि देणि न जोरु ॥ जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु ॥ जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥ जोरु न सुरती गिआनि वीचारि ॥ जोरु न जुगती छुटै संसारु ॥ जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ ॥ नानक उतमु नीचु न कोइ ॥३३॥

बोलना और चुप रहना अपने (ही) वश में नहीं है। मनचाही वस्तु पाना एवं कुछ दे देना (भी) अपने वश में नहीं है। जीवन और मृत्यु भी (हमारे) वश के बाहर है। मन में उथल-पुथल मचाए रखने वाला ऐश्वर्य (भी) हम अपने सामर्थ्य के बल पर नहीं पाते। विचारों में मग्न रहना, ज्ञान में डूबे रहना, और समाधिस्थ बने रहना भी वश में नहीं है। भवजाल से छूटने की युक्ति भी वश से बाहर है। शक्ति सम्पन्न (केवल) वह (प्रभु) है जो सृजन करके (स्वयं) देखभाल कर रहा है। हे नानक, (यह भलीभांति समझ लिया जाना चाहिए कि आत्म रूप में अपने आप में) कोई भी उत्तम अथवा नीच नहीं है।। ३३ ।।

राती रुती थिती वार ॥ पवण पाणी अगनी पाताल ॥ तिसु विचि धरती थापि रखी धर्म साल ॥ तिसु विचि जीअ जुगति के रंग ॥ तिन के नाम अनेक अनंत॥ करमी करमी होइ वीचारु ॥ सचा आपि सचा दरबारु ॥ तिथै सोहनि पंच परवाणु ॥ नदरी करमि पवै नीसाणु ॥ कच पकाई ओथै पाइ॥ नानक गइआ जापै जाइ ॥३४॥

रात्रि, ऋतुओं, तिथिओं, दिनों, पवन, जल, अग्नि और पाताल के सामूहिक जमाव में (परमात्मा द्वारा) धरती को धर्मोपार्जन क्षेत्र के रूप में अवस्थित किया गया है। इस धरती पर विभिन्न युक्तियों एवं रंगों के जीव निवास करते हैं जिनके नाम भी अनेक और अनन्त है। सब अपने-अपने कर्मों के आधार पर ही विचार का विषय बनते हैं। वह प्रभु आप भी निष्पक्ष रूप से सत्य है और उसका दरबार भी सच्चा है। वहां (प्रभु नाम श्रवण मनन और धारण करने वाले) पंचजन ही उस प्रभु से साक्षात्कार कर शोभायमान होते हैं और प्रभु की अनुग्रहदृष्टि से ऐसे मनस्वियों का मस्तक औदात्य से दैदीप्यमान हो उठता है। उस अवस्था तक पहुंचना ही वास्तव में कच्चेपन और पक्केपन का मानदण्ड है। हे नानक, वहाँ तक पहुंचने पर ही (बुरे-भले कच्चे-पक्के की) सूझ-बुद्धि जागृत होती है।। ३४ ।।

धरम खंड का एहो धरमु ॥ गिआन खंड का आखहु करमु ॥ केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस ॥ केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस॥ केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस ॥ केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस ॥ केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ॥ केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद ॥ केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात

नरिंद ॥ केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥३५॥

धर्म खण्ड का यही कर्तव्य-कर्म है। अब ज्ञान खण्ड के कर्म को भी समझा जाए। (सृष्टि में) कई प्रकार के पवन, जल, अग्नि तथा कई कृष्ण और कई महेश हैं। कितने ब्रह्माओं का सृजन हो रहा है जिनके कई प्रकार के रंग और वेश हैं। कई कर्मक्षेत्र हैं, कई सुमेरु पर्वत, कई ध्रुव और कई उपदेश हैं। कितने ही जीवन के स्रोत हैं, कितनी ही बोलियां हैं और कितने ही सम्राट और राजा हैं। कितने ही प्रकार के ध्यान हैं, और सेवक हैं। हे नानक इनका कोई अन्त नहीं।। ३५ ।।

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु ॥ तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु ॥ सरम खंड की बाणी रूपु ॥ तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥ ता कीआ गला कथीआ ना जाहि ॥ जे को कहै पिछै पछुताइ ॥ तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि ॥ तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥३६॥

ज्ञान खण्ड तक ले जाने वाली अवस्था में ज्ञान की प्रधानता रहती है। इस अवस्था में नाद, विनोद, कौतुक आनन्द आदि सबका आस्वादन हो जाता है। श्रम खण्ड की अवस्था (एक मात्र अलौकिक) सौन्दर्य है: वहां मन की प्रकृति की अनुपम गढ़न का कार्य होता है। वह अवस्था वर्णन से परे हैं, और वर्णन करने वाला (प्रयास की अपर्याप्तता के कारण) बाद में पछताता है। उस श्रम खण्ड में सुरति, प्रज्ञा, मन बुद्धि को श्रम पूर्वक गढ़ा जाता है; वहां सुर और सिद्ध-चेतना का गढ़न होता है।। ३६ ।।

करम खंड की बाणी जोरु ॥ तिथै होरु न कोई होरु ॥ तिथै जोध महाबल सूर ॥ तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥ तिथै सीतो सीता महिमा माहि ॥ ता के रूप न कथने जाहि ॥ ना ओहि मरहि न ठागे जाहि ॥ जिन कै रामु वसै मन माहि ॥ तिथै भगत वसहि के लोअ ॥ करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥ सच खंडि वसै निरंकारु ॥ करि करि वेखै नदरि निहाल ॥ तिथै खंड मंडल वरभंड ॥ जे को कथै त अंत न अंत ॥ तिथै लोअ लोअ आकार ॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥ वेखै विगसै करि वीचारु ॥ नानक कथना करड़ा सारु ॥३७॥

करम (अनुकम्पा) खण्ड की रूप रेखा बल वैभव है। वहाँ तक पहुँच कर (अन्तर्मन में प्रभु बिना) और कोई नहीं रह जाता। वहां पहुँचने वाले ही (वास्तव में) योद्धा, महाबली और शूरवीर हैं। इन्हीं में सर्व-व्यापक राम समाहित रहते हैं। वहां पहुंच कर मन की प्रभु महिमा में ही (धागे कपड़े की तरह) सिलाई सी हो जाती है और इनके सौन्दर्य की सीमा

वर्णनातीत हो जाती है। जिनके हृदय में राम का निवास हो जाता है वे न तो मरते हैं तथा न ही वे (माया द्वारा) ठगे जाते हैं। उस अवस्था में कई लोकों के भक्त निवास करते हुए सदैव परिपूर्ण खिले रहते हैं, क्योंकि वह सत्य प्रभु उनके मन में रमण करता है। तादात्म्य की अवस्था वाले सत्य खण्ड में निरंकार की विशुद्ध अनुभूति ही अनुभूति मात्र अवस्थित रहती है। वह सृजन करता है और उसकी कृपा दृष्टि से सब खिल उठते हैं। वहीं सब खण्डों, मंडलों, ब्रह्माण्डों की, सूझ पड़ती है तथा यदि कोई कथन करे तो उसके अन्त का अन्त नहीं पाया जा सकता। वहां कई लोकों के आकार स्पष्ट होते हैं जो उस (प्रभु) के हुकम (विधान) के अन्तर्गत कार्य चला रहे हैं। (अपने स्फुरण से रचित सृष्टि की) देख भाल करके (वह प्रभु) प्रसन्न विचार एवं प्रफुल्लित रहता है। हे नानक, इस अवस्था का वर्णन अत्यन्त ही कठिन लौह कार्य है अर्थात वह अनुभव की ही अवस्था है वर्णन की नहीं।। ३७ ।।

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु ॥ अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥ भउ खला अगनि तप ताउ ॥ भाँडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि ॥ घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ॥ जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥ नानक नदरी नदरि निहाल ॥३८॥

संयम, कर्मशाला, धैर्य-सुनार, मति-नेहाई, ज्ञान-हथौड़ा, विराट प्रभु भय-धौंकनी, साधना अग्नि हो, तब प्रेम कुठाली से अमृत झरता है और इस प्रकार की टकसाल में 'शब्द' (रूपी जीवन-युक्ति अर्थात 'सचिआर जीवन') की गढ़ाई (रचना) होती है। यह गढ़न-कार्य उन (आत्माओं) का है जिन पर (प्रभु की) अनुग्रह-दृष्टि होती है। हे नानक, ऐसे मनुष्य, प्रभु-कृपा-दृष्टि से आनन्द विभोर हो जाते हैं।। ३८ ।।

सलोकु ॥ पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु ॥ दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥ चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ॥ करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥ जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ॥ नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ॥१॥

वायु जीवन-शक्ति रूपी गुरु है, जल उत्पत्ति-स्रोत पिता है और धरती सब की मां है। दिन और रात धाय हैं जिनकी गोदी में सारा संसार (बच्चे की तरह) खेलता कूदता रहता है। धर्म अर्थात कर्त्तव्य कर्म के आधार पर उस परमात्मा के समक्ष सब की अच्छाइयों बुराइयों का लेखा जोखा चलता रहता है। अपने अपने कर्मों के अनुसार ही कुछ उस परम सत्ता के पास पहुंच जाते हैं और कुछ की दूरी बढ़ जाती है। जिन्होंने नाम-स्मरण कर लिया उन्होंने (इस जीवन में) अपनी साधना पूरी कर ली मानी जाती है। हे नानक! उनके अपने मुख भी उज्जवल हो जाते हैं और उनके साथ अनेकों अन्य भी मुक्त हो जाते हैं।। १ ।।

।। बारह माहा मांझ महला ५ ।।

(गु. ग्रं. सा. १३३-३६)

श्री गुरु अरजनदेव जी की यह रचना किसी दिन, महीने और मुहूर्त विशेष को शुभ-अशुभ न मानती हुई मानव मात्र को यह उपदेश देती है कि वही समय शुभ है जिसमें परमात्मा का सुमिरन किया जाता है, परमात्मा की कृपादृष्टि का आभास हो जाता है, प्रभु-दर्शन का दान प्राप्त हो जाता है। शकुन-अपशकुन, शुभ-अशुभ के पारम्परिक विचार से भिन्न भाव प्रकट करते हुए गुरु अरजन देव जी इस वाणी में द्वैतभाव को समाप्त करने, विषय विकारों की अग्नि से बचने के लिए, प्रभु रूपी दिव्यता को मन में बसाने और जीव को स्वयं दिव्य बन जाने का उपदेश देते हैं।

बारह माहा मांझ महला ५ घरु ४ ओं सतिगुर प्रसादि।।

किरति करम के वीछुड़े करि किरपा मेलहु राम ॥ चारि कुंट दह दिस भ्रमे थकि आए प्रभ की साम ॥ धेनु दुधै ते बाहरी कितै न आवै काम ॥ जल बिनु साख कुमलावती उपजहि नाही दाम ॥ हरि नाह न मिलीऐ साजनै कत पाईऐ बिसराम ॥ जितु घरि हरि कंतु न प्रगटई भठि नगर से ग्राम ॥ स्रब सीगार तंबोल रस सणु देही सभ खाम ॥ प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजण सभि जाम ॥ नानक की बेनंतीआ करि किरपा दीजै नामु ॥ हरि मेलहु सुआमी संगि प्रभ जिस का निहचल धाम ॥१॥

हे प्रभु ! मेरी तरह सभी लोग अपने किए हुए कर्मों के फलस्वरूप आपस में भी और तुझसे भी बिछुड़े हुए हैं; तू कृपा करके हमें अपने साथ मिला दे। हम चारों ओर दसों दिशाओं में भाग-दौड़ करके थक गए हैं और अब हे प्रभु, तेरी शरण में आ पहुँचे हैं। जैसे दूध के बिना गाय किसी काम की नहीं होती; जल के बिना पेड़-पौधों की खेती मुरझा जाती है और उससे धन नहीं कमाया जा सकता, इसी तरह प्रभु-पति के न मिलने पर व्यक्ति को भला कैसे सुख मिल सकता है। जिसके हृदय रूपी घर में प्रभु-पति प्रकट नहीं हुआ उसके लिए तो ये गाँव और नगर सभी भट्ठी में झोंक डालने योग्य हैं। शरीर के सारे सिंगार पान के बीड़े और देही समेत अन्य रस सभी कच्चे एवं नाशवान है। प्रभु-स्वामी पति से विहीन होकर जीने पर मित्र, सज्जन सभी यम बनकर मिलते हैं। नानक की विनती है कि हे प्रभु, कृपा करके मुझे दान में अपना नाम प्रदान कर। हे प्रभु, मुझे अपने चरणों से मिलाए रख क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि प्रभु का नाम ही अटल नाम है।। १ ।।

चेति गोविंदु अराधीऐ होवै अनंदु घणा ॥ संत जना मिलि पाईऐ रसना नामु भणा ॥ जिनि पाइआ प्रभु आपणा आए तिसहि गणा ॥ इकु खिनु तिसु बिनु जीवणा बिरथा जनमु जणा ॥ जलि थलि महीअलि पूरिआ रविआ विचि वणा ॥ सो प्रभु चिति न आवई कितड़ा दुखु गणा ॥ जिनी राविआ सो प्रभू तिंना भागु मणा ॥ हरि दरसन कंउ मनु लोचदा नानक पिआस मना ॥ चेति मिलाए सो प्रभू तिस कै पाइ लगा ॥२॥

पूरे चेतन होकर चैत्र के महीने में प्रभु की आराधना करने से अत्यधिक आनन्द

प्राप्त होता है। परन्तु जीभ से नाम-सुमिरन का दान शान्त पुरुषों से मिलकर ही प्राप्त होता है। जिसने अपने प्रभु को इस जन्म में पा लिया है उसका ही इस संसार में आना किसी गिनती में आता है। एक क्षण भर के लिए भी उस प्रभु के बिना जीवन और जन्म व्यर्थ ही जाना जाता है। वह प्रभु जल में, स्थल में, आकाश में एवं वनों में अर्थात सर्वत्र व्याप्त है। नानक के मन में भी उस हरि के दर्शन करने की लालसा है। स्वयं चेतन होकर चैत्र के महीने में जो मुझे उस प्रभु से मिला दे मैं तो उसके चरणों का स्पर्श करूँगा।। २ ।।

वैसाखि धीरनि किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोहु ॥ हरि साजनु पुरखु विसारि कै लगी माइआ धोहु ॥ पुत्र कलत्र न संगि धना हरि अविनासी ओहु॥ पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥ इकसु हरि के नाम बिनु अगै लईअहि खोहि ॥ दयु विसारि विगुचणा प्रभ बिनु अवरु न कोइ ॥ प्रीतम चरणी जो लगे तिन की निर्मल सोइ ॥ नानक की प्रभ बेनती प्रभ मिलहु परापति होइ ॥ वैसाखु सुहावा तां लगै जा संतु भेटै हरि सोइ ॥ ३॥

जैसे पेड़ से कटी हुई डाली को सुख नहीं मिल सकता, वैसे ही प्रभु से बिछुड़े हुओं को भला कैसे धैर्य मिल सकता है। जीव-स्त्री उस प्रभु रूपी साजन को विस्मृत करके माया के प्रपंच में लीन बनी रहती है (उसको भला धैर्य कैसे को सकता है)। पुत्र, स्त्री, धन आदि कुछ भी साथ नहीं चलता क्योंकि साथ चलने वाला अविनाशी प्रभु ही है। यह सारी सृष्टि माया के जाल में बार-बार फंसी हुई झूठे धन्धों के मोह में ग्रस्त होकर शारीरिक और आध्यात्मिक मौत मरती जा रही है। एक प्रभु नाम के बिना अन्य जो कुछ भी जीव के पास होता है, परलोक में वह सब छीन लिया जाता है। प्रभु को विस्मृत करके केवल ख्वार ही होना होता है क्योंकि प्रभु के बिना अन्य कोई साथी नहीं होता है। जो प्रियतम प्रभु के चरणों में लीन हो जाते हैं उनकी शोभा निर्मल बनी रहती है। नानक की यह विनती है कि हे प्रभु मुझे तुझसे भरपूर मिलन प्राप्त हो। वैशाख का महीना तभी सुहावना लगता है यदि हरि रूपी सन्त प्रभु से मिलाप हो जाए।। ३ ।।

हरि जेठि जुड़ंदा लोड़ीऐ जिसु अगै सभि निवंनि ॥ हरि सजण दावणि लगिआ किसै न देई बंनि ॥ माणक मोती नामु प्रभ उन लगै नाही संनि॥ रंग सभे नाराइणै जेते मनि भावंनि ॥ जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि ॥ जो प्रभि कीते आपणे सेई कहीअहि धंनि ॥ आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि ॥ साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि ॥ हरि जेठु रंगीला तिसु धणी जिस कै भागु मथंनि ॥४॥

जिसके आगे सभी झुकते हैं उस ज्येष्ठ हस्ती रूपी परमात्मा के साथ जेठ महीने

में लीन बने रहना चाहिए। यदि हरि-सज्जन का आँचल पकड़े रखा जाए तो वह फिर व्यक्ति को बाँधकर आगे यम की ओर नहीं भेजता। प्रभु-नाम ऐसा माणिक और मोती है जिसे कभी भी चोरी नहीं किया जा सकता। प्रभु के जितने भी कौतुक हो रहे हैं भक्त व्यक्ति के मन को वे सभी सुन्दर लगते हैं और यह भी सत्य है कि जो प्रभु चाहता है जीव वही कर पाते हैं। जिनको प्रभु ने अपना बना लिया है उन्हें धन्य ही कहा जाना चाहिए। यदि उससे मेल जीवों के अपने वश में होता तो वे प्रभु से बिछुड़ कर रोते क्यों रहते? हे नानक, वह व्यक्ति ही प्रभु के रंग का आनन्द प्राप्त करते हैं जिन्हें गुरु रूप साधु की संगत प्राप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति के मस्तक का भाग्य जग चुका है उसी को जेठ का महीना सुहावना लगता है और उसे ही प्रभु स्वामी प्राप्त होता है।। ४ ।।

आसाड़ु तपंदा तिसु लगै हरि नाहु न जिंना पासि ॥ जगजीवन पुरखु तिआगि कै माणस संदी आस ॥ दुयै भाइ विगुचीऐ गलि पईसु जम की फास ॥ जेहा बीजै सो लुणै मथै जो लिखिआसु ॥ रैणि विहाणी पछुताणी उठि चली गई निरास ॥ जिन कौ साधू भेटीऐ सो दरगह होइ खलासु ॥ करि किरपा प्रभ आपणी तेरे दरसन होइ पिआस ॥ प्रभ तुधु बिनु दूजा को नही नानक की अरदासि ॥ आसाड़ु सुहंदा तिसु लगै जिसु मनि हरि चरण निवास ॥५॥

आषाढ़ का महीना उन्हें ही जला देने वाला लगता है जिनके पास प्रभु-पति नहीं है क्योंकि ऐसी जीव-स्त्रियों ने उस जगजीवन प्रभु को त्याग कर अपनी आशाओं को साधारण व्यक्तियों पर लगाया होता है। द्वैतभाव में फंसा हुआ व्यक्ति भटकता और ख्वार होता है तथा उसके गले में यम का फन्दा भी पड़ा रहता है। जो बोया जाता है उसे ही काटा जाता है अथवा जो कुछ भाग्य में लिखा होता है वही प्राप्त होता है। द्वैतभाव में फंसे व्यक्तियों की जीवन-रात्रि पछतावे में ही बीत जाती है और स्त्री निराश होकर इस संसार से चली जाती है। जिन व्यक्तियों को गुरु मिल जाता है वे परमात्मा के समक्ष मुक्त-भाव से बने रहते हैं। हे प्रभु, अपनी कृपा करो ताकि तेरे दर्शन की प्यास हमेशा बनी रहे। नानक की तो केवल एक ही अरदास (प्रार्थना) है कि हे प्रभु, तेरे बिना मेरे लिए अन्य दूसरा कोई कुछ भी नहीं है। जलाने वाला आषाढ़ का महीना उन्हें सुहावना लगता है जिनका प्रभु चरणों में निवास बना होता है।। ५ ।।

सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरु ॥ मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारु ॥ बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसनि सभे छारु ॥ हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु ॥ वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ

पुरख अपारु ॥ हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारु ॥ जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार ॥ नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारु ॥ सावणु तिना सुहागणी जिन राम नामु उरि हारु ॥६॥

सावन माह में जीवन रूपी वे पौधे रस वाले बनकर उस स्त्री की तरह आनन्दित बने रहते हैं जिनका प्रभु चरणों से प्यार बना हुआ है। ऐसी जीव-स्त्री का मन और तन प्रभु के सच्चे रंग में रंगा रहता है और उसे केवल एक नाम का ही आश्रय दिखाई देता है। विषय-विकारों के सभी रंग झूठे हैं और वे सभी राख के समान दिखाई देते हैं। ऐसे व्यक्ति को सावन का बरसता हुआ पानी हरि रूपी अमृत की बूँद के समान सुहावना लगता है और इसको पीना गुरु को मिलकर ही संभव होता है। उस अपरंपर समर्थ प्रभु के साथ मिलकर इस सृष्टि की सम्पूर्ण वनस्पति खिल उठती है। ऐसे प्रभु को मिलने की तीव्र इच्छा मेरे मन में है परन्तु केवल अच्छे कर्मों एवं उसकी कृपा से ही यह मिलना संभव होता है। जिन सखियों ने उस प्रभु को पा लिया है मैं सदैव उन पर बलिहारी जाती हूँ। हे नानक, तू परमात्मा से कह कि हे प्रभु मुझ पर कृपा करो और तुम ही शब्द के माध्यम से मेरे जीवन को सँवार देने के योग्य हो। सावन उन्हीं सुहागिन स्त्रियों को भाता है जिन्होंने अपने हृदय पर राम नाम की माला अर्थात प्रभु-नाम को धारण कर रखा है।। ६ ।।

भादुइ भरमि भुलाणीआ दूजै लगा हेतु ॥ लख सीगार बणाइआ कारजि नाही केतु ॥ जितु दिनि देह बिनससी तितु वेलै कहसनि प्रेतु ॥ पकड़ि चलाइनि दूत जम किसै न देनी भेतु ॥ छडि खड़ोते खिनै माहि जिन सिउ लगा हेतु ॥ हथ मरोड़ै तनु कपे सिआहहु होआ सेतु ॥ जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ॥ नानक प्रभ सरणागती चरण बोहिथ प्रभ देतु ॥ से भादुइ नरकि न पाईअहि गुरु रखण वाला हेतु ॥७॥

भादों को महीने में जीव द्वैतभाव के भ्रमों में भटकता हुआ प्रभु को छोड़कर अन्यों में प्रेम लगा लेता है। इसके लिए जीव ने श्रृँगार रूपी जो कर्मकाण्ड बनाए हैं अन्त में उसके किसी काम के नहीं होते। जिस दिन यह देह विनष्ट हो जाएगी उसी दिन इसे लोग प्रेत-प्रेत कहना शुरू कर देंगे। यमदूत उसे पकड़ कर चल देंगे और किसी को पता भी नहीं चलेगा। जिनसे बहुत प्रेम था वे ही एक क्षण में छोड़कर अलग जा खड़े होंगे। काल को सामने देख कर व्यक्ति हाथों को मरोड़ता है, उसका तन काँपता है और उसका रंग कभी काला और कभी सफेद होता जाता है। यह संसार तो कर्म-भूमि है यहाँ जो जैसा बोता है वैसा ही उसे काटना पड़ता है। हे नानक, जो प्रभु की शरण में आ जाते हैं उन्हें प्रभु अपने चरण रूपी जहाज़ पर बिठा लेता है और वे फिर द्वैतभाव के नर्क में नहीं जाते क्योंकि उनका

रक्षक परमात्मा रूपी गुरु स्वयं होता है।। ७ ।।

असुनि प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हरि जाइ ॥ मनि तनि पिआस दरसन घणी कोई आणि मिलावै माइ ॥ संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाइ॥ विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ दूजी नाही जाइ ॥ जिंन्ही चाखिआ प्रेम रसु से त्रिपति रहे आघाइ ॥ आपु तिआगि बिनती करहि लेहु प्रभू लड़ि लाइ॥ जो हरि कंति मिलाईआ सि विछुड़ि कतहि न जाइ ॥ प्रभ विणु दूजा को नही नानक हरि सरणाइ ॥ असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हरि राइ ॥८॥

आश्विन के महीने में प्रेम उमड़ पड़ता है और मन में यह आता है कि कैसे उस प्रभु-पति को मिला जाए। हे माँ, मेरे मन-तन में उसके दर्शन की प्यास गहरी हो गई है; कोई मुझे उससे मिला दे। शान्त पुरुष प्रभु से प्रेम करने वालों की सहायता करते हैं और मैं उनके चरणों से लगा हुआ हूँ। प्रभु के बिना सुख प्राप्त नहीं होता क्योंकि प्रभु के अतिरिक्त किसी व्यक्ति का अन्य कोई ठिकाना नहीं है। जिन्होंने प्रभु के प्रेम के रस को चख लिया है उनकी पूर्ण तृप्ति हो जाती है। वे अब अहं भाव त्याग कर यही प्रार्थना किया करते हैं कि हे प्रभु, हमें अपना आँचल थमाए रख। जिस जीव स्त्री को प्रभु पति ने अपने साथ मिला लिया है वह प्रभु से बिछुड़ कर अन्य कहीं नहीं जाती। हे नानक, प्रभु की शरण के बिना अन्य कोई स्थान नहीं है और वह सदा प्रभु की शरण में ही बनी रहती है। जिन पर परमात्मा की कृपा होती है आश्विन के महीने में वे जीव स्त्रियाँ सुखपूर्वक बसती हैं।। ८ ।।

कतिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु ॥ परमेसर ते भुलिआँ विआपनि सभे रोग ॥ वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग ॥ खिन महि कउड़े होइ गए जितड़े माइआ भोग ॥ विचु न कोई करि सकै किस थै रोवहि रोज ॥ कीता किछू न होवई लिखिआ धुरि संजोग ॥ वडभागी मेरा प्रभु मिलै तां उतरहि सभि बिओग ॥ नानक कउ प्रभ राखि लेहि मेरे साहिब बंदी मोच॥ कतिक होवै साधसंगु बिनसहि सभे सोच ॥९॥

कार्तिक की सुहावनी ऋतु में भी यदि प्रभु से वियोग बना रहता है तो यह किसी अन्य का दोष नहीं; अपने किए हुए कर्मों का ही फल है। परमात्मा को भूलने पर वास्तव में सब प्रकार के रोग शरीर को आ घेरते है। परमात्मा से विमुख होने पर जन्मों-जन्मों की उससे दूरी बन जाती है और माया के भोग्य पदार्थ जितने भी हैं वे क्षण भर में दुखदायक हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में किसी के सामने भी दुख रोने का कोई लाभ नहीं क्योंकि ऐसी अवस्था में कोई भी बिचौलिया नहीं बन सकता। व्यक्ति का अपना किया हुआ कुछ भी नहीं होता क्योंकि प्रारम्भ में ही उसके भाग्य लेख ही ऐसे लिखे हुए होते हैं। बड़े भाग्य होने से यदि मेरा

प्रभु मिल जाए तो वियोग के सभी दुख समाप्त हो जाते है। हे प्रभु, तू बन्धनों को काटने वाला मेरा साहिब है; कृपा कर और नानक की माया-मोह से रक्षा कर। कार्तिक के महीने में जिनको सद्संगत मिल जाती है उनकी सभी चिन्ताएं विनष्ट हो जाती हैं।। ६ ।।

मंघिरि माहि सोहंदीआ हरि पिर संगि बैठड़ीआह ॥ तिन की सोभा किआ गणी जि साहिबि मेलड़ीआह ॥ तनु मनु मउलिआ राम सिउ संगि साध सहेलड़ीआह ॥ साध जना ते बाहरी से रहनि इकेलड़ीआह ॥ तिन दुखु न कबहू उतरै से जम कै वसि पड़ीआह ॥ जिनी राविआ प्रभु आपणा से दिसनि नित खड़ीआह ॥ रतन जवेहर लाल हरि कंठि तिना जड़ीआह ॥ नानक बांछै धूड़ि तिन प्रभ सरणी दरि पड़ीआह ॥ मंघिरि प्रभु आराधणा बहुड़ि न जनमड़ीआह ॥१०॥

अगहन (मार्गशीर्ष) के महीने में वही जीव स्त्रियां सुन्दर लगती हैं जो प्रभु पति के साथ बैठी हुई होती हैं। जो साहिब से मिली हुई हैं उनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्संगी सहेलियों के साथ प्रभु में चित्त लगाकर उनका तन-मन खिला रहता है। परन्तु जो सत्संगियों के बिना रहती हैं वे अकेली ही रह जाती हैं; उनका दुख कभी भी समाप्त नहीं होता और वे यम के वशीभूत बनी रहती हैं। जिन्होंने प्रभु पति के साथ रमण किया है वे सदैव चेतन होकर खड़ी दिखाई देती हैं। परमात्मा का गुणानुवाद उनके हृदय में उसी प्रकार बना रहता है जैसे हीरे, जवाहिर और लालों का हार गले में पड़ा हुआ होता है। नानक उन सत्संगियों के चरणों की धूलि मांगता है जो प्रभु के द्वार पर पड़े रहते हैं। अगहन के महीने में प्रभु का सुमिरन करने से आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है।। १० ।।

पोखि तुखारु न विआपई कंठि मिलिआ हरि नाहु ॥ मनु बेधिआ चरनारबिंद दरसनि लगड़ा साहु ॥ ओट गोविंद गोपाल राइ सेवा सुआमी लाहु ॥ बिखिआ पोहि न सकई मिलि साधू गुण गाहु ॥ जह ते उपजी तह मिली सची प्रीति समाहु ॥ करु गहि लीनी पारब्रहमि बहुड़ि न विछुड़ीआहु ॥ बारि जाउ लख बेरीआ हरि सजणु अगम अगाहु ॥ सरम पई नाराइणै नानक दरि पईआहु ॥ पोखु सुोहंदा सरब सुख जिसु बखसे वेपरवाहु ॥११॥

पौष के महीने में जो स्त्री प्रभु-पति के गले लगी हुई हो उसको बर्फीला तुषारापात प्रभावित नहीं करता। उसका मन प्रभु के चरण-कमलों में बिंधा रहता है और उसकी सुरति प्रभु के दर्शन की अभिलाषा में लगी रहती है। जिस जीव-स्त्री ने गोविंद, गोपाल प्रभु का आश्रय लिया है वास्तव में उसी ने ही प्रभु-पति की सेवा का लाभ प्राप्त किया है। माया

उसे प्रभावित नहीं कर सकती और उसी ने ही वास्तव में साधु रूपी प्रभु के गुणानुवाद में अपनी सुरति लगाई हुई होती है। जिस परमात्मा से उसने जन्म लिया है उसी में वह लीन बनी रहती है और उसकी सुरति प्रभु की प्रीति में लगी रहती है। परब्रह्म प्रभु ने हाथ पकड़ कर उसे अपने चरणों में इस प्रकार जोड़ा हुआ होता है कि पुनः वह बिछुड़ती नहीं। उस अगम्य, अगाध प्रभु रूपी सज्जन पर मैं बार-बार बलिहारी जाता हूँ। हे नानक, प्रभु के दर पर गिरे हुए की उस प्रभु को लाज रखनी ही पड़ती है। जिस पर वह बेपरवाह प्रभु कृपा करता है पौष का महीना उसके लिए सर्व सुखदायक होता है।। ११ ।।

माघि मजनु संगि साधूआ धूड़ी करि इसनानु ॥ हरि का नामु धिआइ सुणि सभना नो करि दानु ॥ जनम करम मलु उतरै मन ते जाइ गुमानु ॥ कामि करोधि न मोहीऐ बिनसै लोभु सुआनु ॥ सचै मारगि चलदिआ उसतति करे जहानु ॥ अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवानु ॥ जिस नो देवै दइआ करि सोई पुरखु सुजानु ॥ जिना मिलिआ प्रभु आपणा नानक तिन कुरबानु ॥ माघि सुचे से कांढीअहि जिन पूरा गुरु मिहरवानु ॥१२॥

तीर्थों पर कर्मकाण्डी तरीके से स्नान करने की बजाए हे जीव, तू माघ के महीने में गुरमुखों की संगत में बैठ। उनकी चरण-धूलि में स्नान कर, हरि-नाम की आराधना कर, हरि-नाम सुन और सबको प्रभु-नाम का दान बाँट दे। कई जन्मों के किए हुए कर्मों से उत्पन्न विकारों की मैल तेरे मन से उतर जाएगी और तेरे मन का अहंकार भी दूर हो जाएगा। अब तू काम, क्रोध के चंगुल में नहीं फंसेगा और लोभ रूपी कुत्ता भी तेरे अन्दर से विनष्ट हो जाएगा। सत्य के मार्ग पर चलने वालों की सारा संसार प्रशंसा करता है। अड़सठ तीर्थों का स्नान, समस्त पुण्य-कार्य एवं जीव दया आदि कर्म सभी सत्य-मार्ग के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। परमात्मा कृपा करके जिस व्यक्ति को नाम-सुमिरन प्रदान करता है वही व्यक्ति सयाना माना जाता है। नानक कहता है कि जिनको प्यारा प्रभु मिल गया मैं उन पर कुर्बान जाता हूँ। माघ के महीने में वे जीव पवित्र व्यक्ति जाने जाते हैं जिन पर पूर्ण गुरु (परमात्मा) दयालु होता है और उन्हें सुमिरन में लगाता है।। १२ ।।

फलगुणि अनंद उपारजना हरि सजण प्रगटे आइ ॥ संत सहाई राम के करि किरपा दीआ मिलाइ ॥ सेज सुहावी सरब सुख हुणि दुखा नाही जाइ ॥ इछ पुनी वडभागणी वरु पाइआ हरि राइ ॥ मिलि सहीआ मंगलु गावही गीत गोविंद अलाइ ॥ हरि जेहा अवरु न दिसई कोई दूजा लवै न लाइ ॥ हलतु पलतु सवारिओनु निहचल दितीअनु जाइ ॥ संसार सागर ते रखिअनु बहुड़ि न जनमै धाइ ॥ जिहवा एक अनेक गुण तरे नानक चरणी पाइ ॥ फलगुणि

नित सलाहीऐ जिस नो तिलु न तमाइ ॥१३॥

फागुन के महीने में वे ही जीव-स्त्रियाँ आनन्दित होती है जिनके हृदय में प्रभु रूपी साजन प्रकट होता है। प्रभु से मिलवाने में सहायक, प्रभु के शान्त पुरुष होते हैं जो व्यक्ति को प्रभु के साथ मिला देते हैं। मिलने वाले व्यक्तियों की हृदय रूपी सेज सुन्दर बन जाती है और उनको सारे ही सुख प्राप्त हो जाते हैं। अब दुखों के लिए उनके अन्तर्मन में कोई स्थान नहीं बचता। उन भाग्यशाली जीव-स्त्रियों की मनोकामना पूरी हो जाती है; उनको प्रभु-पति मिल जाता है और वे अपनी सत्संगी सहेलियों के साथ मिलकर प्रभु के गुणानुवाद के गीतों का आलाप करती हैं। उन्हें अब परमात्मा जैसा अन्य कोई भी दिखाई नहीं देता। परमात्मा ने अब उनका लोक-परलोक संवार दिया होता है और उनको अपने चरणों में पक्का ठिकाना दे दिया होता है। प्रभु ने ही उन्हें संसार-सागर से बचा लिया होता है और अब वे जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ी रहतीं। नानक कहता है कि हे प्रभु, हमारे एक ही जीभ है और तेरे गुण अनेक हैं (इसलिए उनका वर्णन करने के योग्य मैं नहीं हूँ); जिन्होंने उसके चरणों का आश्रय लिया है वे भव-सागर को पार कर जाते हैं। फाल्गुन के महीने में अन्य तमाशों की अपेक्षा सदा उस परमात्मा का गुणानुवाद करना चाहिए जिसे अपनी बड़ाई करवाने का जरा भी लालच नहीं है।। १३ ।।

जिनि जिनि नामु धिआइआ तिन के काज सरे ॥ हरि गुरु पूरा आराधिआ दरगह सचि खरे ॥ सरब सुखा निधि चरण हरि भउजलु बिखमु तरे ॥ प्रेम भगति तिन पाईआ बिखिआ नाहि जरे ॥ कूड़ गए दुबिधा नसी पूरन सचि भरे ॥ पारब्रहमु प्रभु सेवदे मन अंदरि एकु धरे ॥ माह दिवस मूरत भले जिस कउ नदरि करे ॥ नानकु मंगै दरस दानु किरपा करहु हरे ॥१४॥१॥

जिन्होंने परमात्मा के नाम का सुमिरन किया है उन सब के कार्य सफल हो गए हैं। जिन्होंने हरि रूपी पूर्ण गुरु का सुमिरन किया है वे ही प्रभु की दरगाह में सच्चे बनकर खड़े रहते हैं। प्रभु के चरण सर्व सुखों का खजाना हैं और उन्हीं ही कृपा से विषम भव-सागर को तैरकर पार किया जाता है। पार जाने वालों ने ही प्रभु-प्रेम की भक्ति प्राप्त की होती है और विषय विकारों की अग्नि में वे नहीं जलते। व्यर्थ के उनके झूठे लालच समाप्त हो जाते हैं, उनके मन की दुविधा भाग जाती है और वे पूर्ण रूप से सत्य से भरपूर बन जाते हैं। वे सदैव केवल एक प्रभु को मन में धारण कर उस परब्रह्म का सुमिरन करते हैं। जिन पर प्रभु की कृपा दृष्टि बनी रहती है उनके लिए सभी मास, दिवस एवं मुहूर्त भले की भले हैं। हे प्रभु, कृपा कर; मैं नानक तेरे दर्शन का दान तुझसे माँगता हूँ।। १४ ।।

।। सुखमनी ।।

(गु.ग्रं. सा. २६२-२९६)

सुखों की मणि के रूप में जानी जाती यह वाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब के सम्पादक पांचवे गुरु अरजन देव जी की रचना है जो सिक्ख जगत में अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह वाणी २४ श्लोकों और चौबीस अष्टपदियों वाली रचना है जिसके मूलपाठ में ही कहा गया है कि इस 'सुखमनी' में अमृत रूपी प्रभु के नाम का चिन्तन प्रस्तुत किया गया है जिससे भक्तजनों का मन शान्त होकर स्थिर हो जाता है। प्रभु नाम चिन्तन में सहायक सन्त, साधु एवं ब्रह्मज्ञानी के लक्षणों और कार्यकलापों का वर्णन इस वाणी में भरपूर मात्रा में हुआ हैं। मानव के मूल स्वभाव और व्यक्ति द्वारा काम, क्रोध आदि के वशीभूत होकर अपना लिए गए स्वभाव के विभिन्न आयामों का विस्तार इस वाणी में दिया गया है। वाणी के अन्तिम पद में सार रूप में बताया गया है कि जिसे सदैव परमात्मा याद रहता है उस व्यक्ति के दुख रोग, भय और भ्रम आदि नष्ट हो जाते हैं और ऐसा मानव महामानव के रूप में वास्तव में साधु पुरुष जाना जाता है।

गउड़ी सुखमनी मः ५।। सलोक ।। १ ओं सतिगुर प्रसादि।।

आदि गुरए नमह ॥ जुगादि गुरए नमह ॥ सतिगुरए नमह ॥ स्री गुरदेवए नमह ॥१॥

मैं आदि गुरु (परमात्मा) को नमस्कार करता हूँ; युगों के आदि में भी बने रहने वाले गुरु को प्रणाम करता हूँ। मैं सत्य रूप गुरु की वन्दना करता हूँ और वैभवशाली ईश्वर रूपी गुरु को प्रणाम करता हूँ।। १ ।।

असटपदी॥ सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ ॥ कलि कलेस तन माहि मिटावउ ॥ सिमरउ जासु बिसुंभर एकै ॥ नामु जपत अगनत अनेकै ॥ बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर ॥ कीने राम नाम इक आख्यर ॥ किनका एक जिसु जीअ बसावै ॥ ता की महिमा गनी न आवै ॥ कांखी एकै दरस तुहारो॥ नानक उन संगि मोहि उधारो ॥१॥

प्रभु का सुमिरन करो, सुमिरन करके सुख प्राप्त करो तथा तन के कलह क्लेश मिटा दो। एक ही एक विश्वंभर प्रभु के यश का सुमिरन करो क्योंकि अनगिनत लोग प्रभु-नाम का जाप करते हैं। वेद-पुराण, स्मृति और अन्य अमृत रूपी अक्षर प्रभु-नाम के एक अक्षर का ही प्रकटीकरण हैं। जिसके हृदय में उसका नाम एक तिल मात्र भी बस जाता है उस व्यक्ति की महिमा नहीं बताई जा सकती। हे प्रभु जो केवल तुझ एक के दर्शन करने की इच्छा रखने वाले हैं उनके साथ मुझ नानक का भी उद्धार कर दो।। १ ।।

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु ॥ भगत जना कै मनि बिस्राम ॥ रहाउ ॥ प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै ॥ प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै ॥ प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै ॥ प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै ॥ प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै ॥ प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै ॥ प्रभ कै सिमरनि भउ न बिआपै ॥ प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै ॥ प्रभ का सिमरनु साध कै संगि ॥ सरब निधान नानक हरि रंगि ॥२॥

इस सुखमनी में सुख और अमृत रूपी प्रभु का नाम है; इसी से भक्तजनों का मन शान्त होकर टिक जाता है।। रहाउ।। प्रभु के सुमिरन से जीव योनियों के लिए गर्भ में नहीं

पड़ता। प्रभु के सुमिरन से दुख और यम भाग खड़े होते हैं। प्रभु के सुमिरन से मौत को परे हटा दिया जाता है। प्रभु के सुमिरन से शत्रु भी टल जाते हैं। सुमिरन करते रहने से कोई विघ्न नहीं पड़ता और प्रभु के सुमिरन से व्यक्ति सदैव चेतन बना रहता है। प्रभु के सुमिरन से भय नहीं लगता और दुःख सन्ताप भी नहीं स्पर्श करता। साधसंगत में ही प्रभु-सुमिरन प्राप्त होता है और हे नानक, सब प्रकार के भण्डार प्रभु-प्रेम में ही प्राप्त होते हैं।। २ ।।

प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि ॥ प्रभ कै सिमरनि गिआनु धिआनु ततु बुधि ॥ प्रभ कै सिमरनि जप तप पूजा ॥ प्रभ कै सिमरनि बिनसै दूजा॥ प्रभ कै सिमरनि तीरथ इसनानी ॥ प्रभ कै सिमरनि दरगह मानी ॥ प्रभ कै सिमरनि होइ सु भला ॥ प्रभ कै सिमरनि सुफल फला ॥ से सिमरहि जिन आपि सिमराए ॥ नानक ता कै लागउ पाए ॥३॥

प्रभु के सुमिरन में ही ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और नवनिधियाँ विद्यमान हैं। सुमिरन में ही ज्ञान-ध्यान और तत्त्व को समझने वाली विवेक बुद्धि प्राप्त होती है। सुमिरन से ही व्यक्ति जप, तप और पूजा को समझ लेता है तथा सुमिरन से ही द्वैतभाव नष्ट हो जाता है। प्रभु-सुमिरन तीर्थ स्थानों का फल देने वाला है और प्रभु के सुमिरन से ही जीव को प्रभु के दरबार में सम्मान मिलता है। प्रभु-सुमिरन में व्यक्ति हो रहे सब कुछ को भला ही कहता है और प्रभु सुमिरन से व्यक्ति फलता-फूलता है। वही सुमिरन करते हैं जिन्हें प्रभु आप सुमिरन में लगाता है। हे नानक, मैं ऐसे व्यक्तियों के चरण-स्पर्श करता हूँ।। ३ ।।

प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा ॥ प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा ॥ प्रभ कै सिमरनि त्रिसना बुझै ॥ प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै ॥ प्रभ कै सिमरनि नाही जम त्रासा ॥ प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा ॥ प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ ॥ अंम्रित नामु रिद माहि समाइ ॥ प्रभ जी बसहि साध की रसना ॥ नानक जन का दासनि दसना ॥४॥

प्रभु का सुमिरन सब से उँचा है और सुमिरन के माध्यम से ही अनेकों का उद्धार हो गया है। प्रभु के सुमिरन से तृष्णा समाप्त हो जाती है और व्यक्ति को सब कुछ सुझाई देने लगता है। प्रभु के सुमिरन से यम का भय नहीं रहता और आशाएं पूरी हो जाती हैं। प्रभु के सुमिरन से मन की मैल छूट जाती है और अमृत रूपी प्रभु-नाम मन में समा जाता है। प्रभु साधु पुरुषों की जीभ पर निवास करता है और दास नानक उसके दासों का भी दास है।। ४ ।।

प्रभ कउ सिमरहि से धनवंते ॥ प्रभ कउ सिमरहि से पतिवंते ॥ प्रभ कउ

सिमरहि से जन परवान ॥ प्रभ कउ सिमरहि से पुरख प्रधान ॥ प्रभ कउ सिमरहि सि बेमुहताजे ॥ प्रभ कउ सिमरहि सि सरब के राजे ॥ प्रभ कउ सिमरहि से सुखवासी ॥ प्रभ कउ सिमरहि सदा अबिनासी ॥ सिमरन ते लागे जिन आपि दइआला ॥ नानक जन की मंगै रवाला ॥५॥

प्रभु का सुमिरन करने वाले धनवान हैं और वे ही सम्मान वाले भी हैं। प्रभु का सुमिरन करने वाले व्यक्ति स्वीकृत होते हैं और वे ही मुख्य व्यक्ति माने जाते हैं। प्रभु का सुमिरन करने वाले किसी के मोहताज नहीं होते और वे ही सब के राजा माने जाते हैं। प्रभु का सुमिरन करने वाले सुखों में रहते हैं और वे कभी भी नष्ट न होने वाले होते हैं। जिन पर प्रभु दयालु होता है वे ही सुमिरन में लीन होते हैं और नानक ऐसे लोगों की चरणधूलि की याचना करता है।। ५ ।।

प्रभ कउ सिमरहि से परउपकारी ॥ प्रभ कउ सिमरहि तिन सद बलिहारी॥ प्रभ कउ सिमरहि से मुख सुहावे ॥ प्रभ कउ सिमरहि तिन सूखि बिहावै॥ प्रभ कउ सिमरहि तिन आतमु जीता ॥ प्रभ कउ सिमरहि तिन निरमल रीता ॥ प्रभ कउ सिमरहि तिन अनद घनेरे ॥ प्रभ कउ सिमरहि बसहि हरि नेरे ॥ संत क्रिपा ते अनदिनु जागि ॥ नानक सिमरनु पूरै भागि ॥६॥

प्रभु का सुमिरन करने वाले परोपकारी होते हैं और प्रभु का सुमिरन करने वालों पर मैं सदैव बलिहारी जाता हूँ। सुमिरन करने वालों के मुख शोभायुक्त होते हैं और वे अपना जीवन सुख में व्यतीत करते हैं। प्रभु का सुमिरन करने वाले अपने मन एवं आत्मा को जीत लेते हैं और उनका जीवन-ढंग भी पवित्र हो जाता है। सुमिरन करने वालों को गहरे आनन्द का अनुभव होता है और वे प्रभु के पास आन बसते हैं। शान्त पुरुषों की कृपा से वे सदैव चेतन बने रहते हैं परन्तु हे नानक प्रभु का सुमिरन पूरे भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है।। ६ ।।

प्रभ कै सिमरनि कारज पूरे ॥ प्रभ कै सिमरनि कबहु न झूरे ॥ प्रभ कै सिमरनि हरि गुन बानी ॥ प्रभ कै सिमरनि सहजि समानी ॥ प्रभ कै सिमरनि निहचल आसनु ॥ प्रभ कै सिमरनि कमल बिगासनु ॥ प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार॥ सुखु प्रभ सिमरन का अंतु न पार ॥ सिमरहि से जन जिन कउ प्रभ मइआ ॥ नानक तिन जन सरनी पइआ ॥७॥

प्रभु का सुमिरन करने से कार्य पूरे हो जाते हैं और व्यक्ति कभी भी पछतावे में नहीं रहता। सुमिरन के माध्यम से प्रभु के गुणों को वाणी दी जाती है और सुमिरन के माध्यम से ही व्यक्ति सहजभाव में लीन हो जाता है। प्रभु के सुमिरन से ही अनहद् नाद गूँज उठता है और सुमिरन के फलस्वरूप शान्ति और सुख का कोई ओर-छोर नहीं रहता।

जिन पर प्रभु कृपा करता है वही उसका सुमिरन करते हैं और नानक ऐसे ही पुरुषों की शरण में आन पड़ा है।। ७ ।।

हरि सिमरनु करि भगत प्रगटाए ॥ हरि सिमरनि लगि बेद उपाए ॥ हरि सिमरनि भए सिध जती दाते ॥ हरि सिमरनि नीच चहु कुंट जाते ॥ हरि सिमरनि धारी सभ धरना ॥ सिमरि सिमरि हरि कारन करना ॥ हरि सिमरनि कीओ सगल अकारा ॥ हरि सिमरन महि आपि निरंकारा ॥ करि किरपा जिसु आपि बुझाइआ॥ नानक गुरमुखि हरि सिमरनु तिनि पाइआ ॥८॥१॥

प्रभु-सुमिरन से ही कई भक्त संसार में जाने गए हैं और प्रभु-सुमिरन में लगकर ही वेद रूपी ज्ञान की रचना हुई है। सुमिरन से ही व्यक्ति सिद्ध, यति और दाता बन गए हैं और सुमिरन से ही तथाकथित नीच चारों दिशाओं में प्रसिद्ध हुए हैं। प्रभु-सुमिरन के फलस्वरूप ही सारी धरती की स्थिति बनी हुई है इसलिए हे जीव, उस मूल कारण और करणहार प्रभु का तू बार बार सुमिरन कर। प्रभु सुमिरन ने ही समस्त आकारों की रचना की है और वह निराकार प्रभु स्वयं वहाँ प्रकट होकर बसता है जहाँ प्रभु-सुमिरन होता है। हे नानक, वे ही गुरमुख बनकर प्रभु-सुमिरन को प्राप्त करते हैं जिन पर प्रभु स्वयं कृपा करके उन्हें अपना रहस्य बताता है ।। ८ ।। १ ।।

सलोकु ॥ दीन दरद दुख भंजना घटि घटि नाथ अनाथ ॥ सरणि तुमारी आइओ नानक के प्रभ साथ ॥१॥

हे दीनों के दुख दर्द का नाश करने वाले और हर घट में बसने वाले अनाथों के नाथ प्रभु, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ और तुम हे प्रभु, सदैव नानक के साथ बने रहो।। १ ।।

असटपदी ॥ जह मात पिता सुत मीत न भाई ॥ मन ऊहा नामु तेरै संगि सहाई ॥ जह महा भइआन दूत जम दलै ॥ तह केवल नामु संगि तेरै चलै॥ जह मुसकल होवै अति भारी ॥ हरि को नामु खिन माहि उधारी ॥ अनिक पुनहचरन करत नही तरै ॥ हरि को नामु कोटि पाप परहरै ॥ गुरमुखि नामु जपहु मन मेरे ॥ नानक पावहु सूख घनेरे ॥१॥

हे मन, जहाँ माता, पिता, पुत्र, मित्र, भाई आदि कोई भी नहीं होगा वहाँ प्रभु-नाम ही तेरा सहायक बनेगा। जहाँ बहुत भयानक यमदूत तुझे कुचलेगा वहाँ केवल प्रभु-नाम ही तेरे साथ चलेगा। जहाँ तेरे सामने भारी कठिनाई होगी वहाँ क्षण भर में प्रभु-नाम तुझे बचा लेगा। अनेकों प्रायश्चित कर्म करने से भी व्यक्ति पार नहीं उतरता परन्तु प्रभु का नाम करोड़ों पापों को दूर कर देता है। हे मेरे मन, गुरमुख बनकर प्रभु-नाम का जाप कर और

हे नानक, इस प्रकार तू अनेकों सुख प्राप्त कर लेगा।। १ ।।

सगल स्रिसटि को राजा दुखीआ ॥ हरि का नामु जपत होइ सुखीआ ॥ लाख करोरी बंधु न परै ॥ हरि का नामु जपत निसतरै ॥ अनिक माइआ रंग तिख न बुझावै ॥ हरि का नामु जपत आघावै ॥ जिह मारगि इहु जात इकेला ॥ तह हरि नामु संगि होत सुहेला ॥ ऐसा नामु मन सदा धिआईऐ ॥ नानक गुरमुखि परम गति पाईऐ ॥२॥

सारे संसार का राजा भी दुखी बना रहता है परन्तु प्रभु-नाम के सुमिरन के फलस्वरूप वह सुखी हो जाता है। लाखों-करोड़ों बन्धनों में पड़ा रहने के बावजूद व्यक्ति प्रभु-नाम के सुमिरन से मुक्त हो जाता है। धन-सम्पदा के अनेकों रंग व्यक्ति की प्यास को नहीं बुझाते परन्तु प्रभु-नाम के सुमिरन से व्यक्ति तृप्त हो जाता है। जिस मार्ग पर अन्ततः जीव को अकेला जाना पड़ता है वहाँ प्रभु नाम ही साथ में सुख देने वाला होता है। हे मन, ऐसे नाम का सदैव सुमिरन करो और हे नानक, गुरमुख बनकर ही परमगति प्राप्त की जाती है।। २ ।।

छूटत नही कोटि लख बाही ॥ नामु जपत तह पारि पराही ॥ अनिक बिघन जह आइ संघारै ॥ हरि का नामु ततकाल उधारै ॥ अनिक जोनि जनमै मरि जाम ॥ नामु जपत पावै बिस्राम ॥ हउ मैला मलु कबहु न धोवै ॥ हरि का नामु कोटि पाप खोवै ॥ ऐसा नामु जपहु मन रंगि ॥ नानक पाईऐ साध कै संगि ॥३॥

लाखों बलशाली भुजाएं साथ होने पर भी जहाँ व्यक्ति बच नहीं पाता वहाँ प्रभु-नाम सुमिरन से वह पार हो जाता है। जहाँ अनेकों विघ्न व्यक्ति का संहार कर देते हैं वहाँ प्रभु का नाम तत्काल उसे बचा लेता है। जीव अनेकों योनियों में जन्मता-मरता है परन्तु प्रभु-नाम के सुमिरन से वह सहज विश्राम की अवस्था में आ जाता है। जीव अभिमान से इतना मलीन हो जाता है कि उसकी मैल कभी भी नहीं छूट पाती; परन्तु प्रभु का नाम उसके करोड़ों पापों को भी उससे दूर देता है। हे मन, तू ऐसे नाम का प्रभु में लीन होकर सुमिरन कर और हे नानक, यह नाम साधसंगत में ही प्राप्त होता है।। ३ ।।

जिह मारग के गने जाहि न कोसा ॥ हरि का नामु ऊहा संगि तोसा ॥ जिह पैडै महा अंध गुबारा ॥ हरि का नामु संगि उजीआरा ॥ जहा पंथि तेरा को न सिञानू ॥ हरि का नामु तह नालि पछानू ॥ जह महा भइआन तपति बहु घाम ॥ तह हरि के नाम की तुम ऊपरि छाम ॥ जहा त्रिखा मन तुझु आकरखै॥ तह नानक हरि हरि अंम्रितु बरखै ॥ ४॥

जिस लम्बे सफर की दूरी की गणना नहीं की जा सकती, उस सफर में प्रभु-नाम ही तेरे साथ तेरे खाने खर्चने का साधन है। जिस मार्ग पर घोर अंधकार और गुबार है वहाँ प्रभु-नाम ही तेरे संग उजाले का काम करता है। जिस रास्ते पर तेरी पहचान वाला कोई भी नहीं होता वहाँ प्रभु क ा नाम तेरे साथ तेरी पहचान बनकर रहता है। जहाँ भयानक तपन और गर्मी होती है वहाँ प्रभु अमृत बनकर बरसता है।। ४ ।।

भगत जना की बरतनि नामु ॥ संत जना कै मनि बिस्रामु ॥ हरि का नामु दास की ओट ॥ हरि कै नामि उधरे जन कोटि ॥ हरि जसु करत संत दिनु राति ॥ हरि हरि अउखधु साध कमाति ॥ हरि जन कै हरि नामु निधानु ॥ पारब्रहमि जन कीनो दान ॥ मन तन रंगि रते रंग एकै ॥ नानक जन कै बिरति बिबेकै ॥५॥

भक्तजनों का कार्य-व्यवहार केवल प्रभु-नाम ही हैं जो शान्त पुरुषों के मन को विश्राम की अवस्था में ला देता है। प्रभु के दास का आसरा प्रभु का नाम ही है। क्योंकि प्रभु नाम के माध्यम से करोड़ों ही लोग पार उतर गए हैं। संत व्यक्ति सदैव प्रभु-गुणानुवाद में ही लीन रहता है और साधु लोग ही प्रभु को अपनी औषधि के रूप में काम में लाते हैं। प्रभु के सेवक के लिए प्रभु नाम ही वह खजाना है जिसे परब्रह्म ने अपने सेवक को दान में दिया हुआ है। जिसका मन, तन एक प्रभु में रंगा रहता है, हे नानक, दिव्य ज्ञान ऐसे व्यक्ति की उपजीविका बन जाता है।। ५ ।।

हरि का नामु जन कउ मुकति जुगति ॥ हरि कै नामि जन कउ त्रिपति भुगति॥ हरि का नामु जन का रूप रंगु ॥ हरि नामु जपत कब परै न भंगु॥ हरि का नामु जन की वडिआई ॥ हरि कै नामि जन सोभा पाई ॥ हरि का नामु जन कउ भोग जोग ॥ हरि नामु जपत कछु नाहि बिओगु ॥ जनु राता हरि नाम की सेवा ॥ नानक पूजै हरि हरि देवा ॥६॥

प्रभु का नाम ही सेवक के लिए मुक्ति भी है और उस मुक्ति की युक्ति भी है। प्रभु का नाम ही सेवक के लिए भोजन और भोजन से उत्पन्न तृप्ति भी है। प्रभु-नाम ही सेवक का रूप और रंग है और प्रभु-नाम सुमिरन करने से कभी भी कोई रुकावट सामने नहीं आती। प्रभु का नाम ही सेवक के लिए उसका मान-सम्मान है और प्रभु नाम के माध्यम से ही सेवक को शोभा प्राप्त होती है। भोग और योग दोनों ही प्रभु सेवक के लिए प्रभु-नाम में ही है जिसका सुमिरन करने से कभी भी वियोग की अवस्था नहीं आती। प्रभु का सेवक प्रभु-नाम के सुमिरन से उसके रंग में रंग गया है और नानक भी ऐसे महान् प्रभु की उपासना करता है।। ६ ।।

हरि हरि जन कै मालु खजीना ॥ हरि धनु जन कउ आपि प्रभि दीना ॥ हरि हरि जन कै ओट सताणी ॥ हरि प्रतापि जन अवर न जाणी ॥ ओति पोति जन हरि रसि राते ॥ सुंन समाधि नाम रस माते ॥ आठ पहर जनु हरि हरि जपै ॥ हरि का भगतु प्रगट नही छपै ॥ हरि की भगति मुकति बहु करे ॥ नानक जन संगि केते तरे ॥७॥

सेवक के लिए प्रभु ही धनमाल का खजाना है। अपने सेवक को प्रभु ने स्वयं हरि रूपी धन दिया है। सेवक के लिए प्रभु ही एक शक्तिशली आसरा है और प्रभु के प्रताप से ही सेवक अन्य किसी को जानता-मानता नहीं है। प्रभु का सेवक प्रभु के नाम-रस में ओत-प्रोत बना रहता है अैर शून्य समाधि में लीन होकर नाम-रस में मतवाला बना रहता है। प्रभु का सेवक आठों प्रहर प्रभु का सुमिरन ही करता रहता है। प्रभु का भक्त छिपता नहीं और प्रकट होकर ही रहता है। प्रभु की भक्ति अनेकों को मोक्ष प्रदान करती है। हे नानक, उस सेवक के साथ अन्य कितने ही संसार सागर से पार उतर जाते हैं।। ७ ।।

पारजातु इहु हरि को नाम ॥ कामधेन हरि हरि गुण गाम ॥ सभ ते ऊतम हरि की कथा ॥ नामु सुनत दरद दुख लथा ॥ नाम की महिमा संत रिद वसै ॥ संत प्रतापि दुरतु सभु नसै ॥ संत का संगु वडभागी पाईऐ ॥ संत की सेवा नामु धिआईऐ ॥ नाम तुलि कछु अवरु न होइ ॥ नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ ॥८॥२॥

प्रभु-नाम एक पारिजात वृक्ष की तरह है और प्रभु का गुणानुवाद कामधेनु की तरह है। प्रभु की ज्ञान चर्चा सर्वोत्तम है और प्रभु का नाम सुनने से दुख औद दर्द दूर हो जाते हैं। नाम की महिमा संतों के हृदय में बसती है और संत-प्रताप से ही सारे पाप भाग खड़े होते हैं। संत की संगत भाग्यशाली को मिलती है और साधु-संतों की सेवा से ही नाम-सुमिरन किया जाता है। नाम के समान अन्य कुछ भी नहीं है। हे नानक, कोई बिरला सेवक ही गुरमुख बनकर नाम प्राप्त करता है। ८ ।। २ ।।

सलोकु ॥ बहु सासत्र बहु सिम्रिती पेखे सरब ढढोलि ॥ पूजसि नाही हरि हरे नानक नाम अमोल ॥१॥

मैंने बहुत से शास्त्र और स्मृतियों को सब प्रकार से देखकर उनकी खोज कर ली है। हे नानक, वे सब भी प्रभु के अमूल्य नाम के बराबर तक नहीं पहुँच पाते।। १ ।।

असटपदी ॥ जाप ताप गिआन सभि धिआन ॥ खट सासत्र सिम्रिति वखिआन ॥ जोग अभिआस करम ध्रम किरिआ ॥ सगल तिआगि बन मधे फिरिआ ॥ अनिक प्रकार कीए बहु जतना ॥ पुंन दान होमे बहु रतना ॥

सरीरु कटाइ होमै करि राती ॥ वरत नेम करै बहु भाती ॥ नही तुलि राम नाम बीचार ॥ नानक गुरमुखि नामु जपीऐ इक बार ॥१॥

जब तपस्या, सब प्रकार के ज्ञान-ध्यान, षटदर्शन, स्मृतियाँ एवं उनके भाष्य, योगाभ्यास, धार्मिक कर्मकाण्ड एवं क्रियाएं विद्यमान हैं; व्यक्ति का सब कुछ त्याग कर वनों में भटकना, अनेकों प्रकार के काम करना, पुण्य-दान, होम और अनेकों रत्नों का दान करने का काम भी चलता रहता है; छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर शरीर की आहुति देना, अनेकों प्रकार के व्रत और नियमों का पालन करना आदि राम-नाम के विचार के तुल्य कुछ भी नहीं है। हे नानक, गुरमुख बनकर एक बार तो केवल प्रभु-नाम का जाप ही करना चाहिए।। १ ।।

नउ खंड प्रिथमी फिरै चिरु जीवै ॥ महा उदासु तपीसरु थीवै ॥ अगनि माहि होमत परान ॥ कनिक अस्व हैवर भूमि दान ॥ निउली करम करै बहु आसन ॥ जैन मारग संजम अति साधन ॥ निमख निमख करि सरीरु कटावै॥ तउ भी हउमै मैलु न जावै ॥ हरि के नाम समसरि कछु नाहि ॥ नानक गुरमुखि नामु जपत गति पाहि ॥२॥

व्यक्ति पृथ्वी के नवखण्डों में बहुत समय तक चिरंजीव बनकर जीवित रहे, महा उदासीन होकर तपस्या करे, अग्नि में प्राणों की आहुति दे, सोना, घोड़े, हाथी, भूमि आदि का दान करे, अनेकों आसन और न्योली कर्म करे और जैन मार्ग की अत्यन्त विषम साधनाओं और संयमों को अपनाए, तिल तिल करके अपने शरीर को कटवा डाले तब भी व्यक्ति के अन्दर की अहंकार की मैल समाप्त नहीं होती। प्रभु-नाम के तुल्य कुछ भी नहीं है और हे नानक, गुरमुख बनकर नाम के जाप के माध्यम से ही परमगति प्राप्त होती है।। २ ।।

मन कामना तीरथ देह छुटै ॥ गरबु गुमानु न मन ते हुटै ॥ सोच करै दिनसु अरु राति ॥ मन की मैलु न तन ते जाति ॥ इसु देही कउ बहु साधना करै॥ मन ते कबहू न बिखिआ टरै ॥ जलि धोवै बहु देह अनीति ॥ सुध कहा होइ काची भीति ॥ मन हरि के नाम की महिमा ऊच ॥ नानक नामि उधरे पतित बहु मूच ॥३॥

तीर्थ स्थानों पर प्राण छूटने पर भी मन की इच्छाएं और अहंकार भाव मन से दूर नहीं होता। व्यक्ति दिन-रात शरीरिक रूप से पवित्र बना रहने में लगा रहता है परन्तु उसके मन की मैल उसके शरीर से दूर नहीं होती। व्यक्ति इस देही की साधना अनेकों प्रकार से करता है परन्तु उसके मन से कभी भी विषय-विकार दूर नहीं होते। इस नाशवान शरीर

को बेशक व्यक्ति जल से कितना भी धोए परन्तु कच्ची दीवार भला कैसे शुद्ध और स्वच्छ हो सकती है। मेरे मन, प्रभु-नाम की महिमा बहुत ऊँची है और हे नानक, प्रभु-नाम के माध्यम से अनेकों पतितों का उद्धार हो चुका है।। ३ ।।

बहुतु सिआणप जम का भउ बिआपै ॥ अनिक जतन करि त्रिसन ना ध्रापै॥ भेख अनेक अगनि नही बुझै ॥ कोटि उपाव दरगह नही सिझै ॥ छूटसि नाही ऊभ पइआलि ॥ मोहि बिआपहि माइआ जालि ॥ अवर करतूति सगली जमु डानै ॥ गोविंद भजन बिनु तिलु नही मानै ॥ हरि का नामु जपत दुखु जाइ ॥ नानक बोलै सहजि सुभाइ ॥४॥

बहुत चतुराइयों के फलस्वरूप नेकी भाग जाती है और यम का भय सताने लग जाता है। अनेकों यत्नों के बावजूद तृष्णाएँ शान्त नहीं होती। विभिन्न वेष धारण करने से भी मन की अग्नि बुझती नहीं और करोड़ों दिखावे के उपाय करने के फलस्वरूप भी प्राणी प्रभु के दरबार में स्वीकृत नहीं होता। आसमान और पाताल तक चले जाने पर भी ऐसा व्यक्ति मुक्त नहीं होता क्योंकि वह माया-मोह के जाल में फंसा हुआ होता है। आदमी के सारे अन्य कर्मों की सज़ा मौत देती है और प्रभु-सुमिरन के बिना मौत अन्य किसी भी कर्म की तिल भर भी परवाह नहीं करती। प्रभु-नाम सुमिरन से ही दुख दूर होता है और नानक सहज स्वाभाविक रूप से ही प्रभु-नाम का उच्चारण करता चला जाता है।। ४ ।।

चारि पदार्थ जे को मागै ॥ साध जना की सेवा लागै ॥ जे को आपुना दूखु मिटावै ॥ हरि हरि नामु रिदै सद गावै ॥ जे को अपुनी सोभा लोरै ॥ साधसंगि इह हउमै छोरै ॥ जे को जनम मरण ते डरै ॥ साध जना की सरनी परै ॥ जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा ॥ नानक ता कै बलि बलि जासा ॥५॥

यदि कोई चार पदार्थों (पुरुषार्थों) की कामना करता है तो उसे नेक व्यक्तियों की सेवा में लग जाना चाहिए। यदि कोई अपना सम्मान चाहता है तो उसे भले लोगों की संगत में रहकर अहंकार का त्याग करना चाहिए। यदि कोई आवागमन के चक्र से भयभीत है तो उसे भद्र लोगों की शरण में आ जाना चाहिए। जिसे प्रभु-दर्शन की प्यास है नानक उस पर बार-बार बलिहारी जाता है।। ५ ।।

सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु ॥ साधसंगि जा का मिटै अभिमानु ॥ आपस कउ जो जाणै नीचा ॥ सोऊ गनीऐ सभ ते ऊचा ॥ जा का मनु होइ सगल की रीना ॥ हरि हरि नामु तिनि घटि घटि चीना ॥ मन अपुने ते बुरा मिटाना॥ पेखै सगल स्रिसटि साजना ॥ सूख दूख जन सम द्रिसटेता ॥ नानक पाप पुंन नही लेपा ॥६॥

समस्त व्यक्तियों में श्रेष्ठ वह है जिसका सत्संगत में रहते हुए अभिमान मिट जाता है। अपने को जो सबसे विनम्र एवं निचले स्तर पर मानता है, वास्तव में उसकी गिनती सबसे ऊँचे माने जाने वालों में होती है। जिसका मन सब की चरण-धूलि के समान विनम्र हो जाता है वही प्रत्येक हृदय में प्रभु नाम की पहचान करने वाला होता है। अपने मन से बुराई को मिटा देने वाला ही सारे संसार को मित्रवत् देखता है। दुख-सुख को समान रूप से देखने वाले सेवक को हे नानक, पाप-पुण्य प्रभावित नहीं करते।। ६ ।।

निरधन कउ धनु तेरो नाउ ॥ निथावे कउ नाउ तेरा थाउ ॥ निमाने कउ प्रभ तेरो मानु ॥ सगल घटा कउ देवहु दानु ॥ करन करावनहार सुआमी ॥ सगल घटा के अंतरजामी ॥ अपनी गति मिति जानहु आपे ॥ आपन संगि आपि प्रभ राते ॥ तुम्हरी उसतति तुम ते होइ ॥ नानक अवरु न जानसि कोइ ॥७॥

हे प्रभु, तेरा नाम ही निर्धन का धन है; निराश्रितों के लिए तेरा नाम ही आश्रय है। सम्मान-रहित व्यक्ति का सम्मान हे प्रभु, तू ही है और तू ही सबको दान देता रहता है। प्रभु ही करने-कराने वाला है और वह ही सबके दिलों को जानने वाला है। अपने ओर-छोर को तू स्वयं ही जानता है और हे प्रभु, अपने-आप के साथ तू स्वयं ही लीन बना हुआ है। हे प्रभु, तुम्हारी प्रशंसा केवल तुझसे ही हो सकती है और हे नानक, तुम्हारे यश को अन्य कोई नहीं जानता।। ७ ।।

सरब धरम महि स्रेसट धरमु ॥ हरि को नामु जपि निरमल करमु ॥ सगल क्रिआ महि ऊतम किरिआ ॥ साधसंगि दुरमति मलु हिरिआ ॥ सगल उदम महि उदमु भला ॥ हरि का नामु जपहु जीअ सदा ॥ सगल बानी महि अंम्रित बानी ॥ हरि को जसु सुनि रसन बखानी ॥ सगल थान ते ओहु ऊतम थानु ॥ नानक जिह घटि वसै हरि नामु ॥८॥३॥

सभी धर्मों में श्रेष्ठ धर्म यही है कि निर्मल कर्मों को करते हुए केवल प्रभु-नाम का जाप करते रहना चाहिए। समस्त क्रियाओं में सर्वोत्तम क्रिया यह है कि सद्संगत में दुर्मति की मैल को साफ किया जाए। समस्त उद्यमों में भला उपक्रम यही है कि हृदय से सदैव हरि-नाम का जाप किया जाए। समस्त वार्तालापों में अमृत रूपी वार्तालाप वही है जिसके माध्यम से प्रभु का यश सुना जाए और उसका बखान जीभ से किया जाए। सब स्थानों में वह स्थान उत्तम है, हे नानक, जहाँ प्रभु-नाम का निवास होता है।। ८ ।। ३ ।।

सलोकु ॥ निरगुनीआर इआनिआ सो प्रभु सदा समालि ॥ जिनि कीआ तिसु चीति रखु नानक निबही नालि ॥१॥

हे नासमझ और गुणविहीन प्राणी, सदैव उस प्रभु का सुमिरन कर जिसने तेरा सृजन

किया है; उसी को मन में स्मरण करता रह क्योंकि, हे नानक, वह प्रभु ही तेरे साथ निभेगा।। १ ।।

असटपदी ॥ रमईआ के गुन चेति परानी ॥ कवन मूल ते कवन द्रिसटानी॥ जिनि तूं साजि सवारि सीगारिआ ॥ गरभ अगनि महि जिनहि उबारिआ ॥ बार बिवसथा तुझहि पिआरै दूध ॥ भरि जोबन भोजन सुख सूध ॥ बिरधि भइआ ऊपरि साक सैन ॥ मुखि अपिआउ बैठ कउ दैन ॥ इहु निरगुनु गुनु कछू न बूझै॥ बखसि लेहु तउ नानक सीझै ॥१॥

हे प्राणी, केवल उस सर्वव्यापक प्रभु के गुणों का सुमिरन कर और यह भी सोच कि तेरा मूल क्या है और वास्तव में तू क्या दृष्टिगत हो रहा है। जिसने तेरा सृजन किया, सँवारा, सिंगार किया, गर्भ की अग्नि से तेरा उद्धार किया उसी का सुमिरन कर। बाल्यावस्था में तुझे प्यार से दूध दिया है और भरी जवानी में तुझे भोजन और अन्य सुखों की बुद्धि दी है, वृद्धावस्था में तुझे संगियों के तौर पर संबंधी और मित्र दिए है जो तुझे बैठे बिठाए को भोजन देते हैं परन्तु यह गुणविहीन प्राणी किसी के उपकार को समझता नहीं। हे प्रभु, यदि तू क्षमा कर दे तो हे नानक, ऐसे प्राणी की भी मुक्ति हो सकती है।। १ ।।

जिह प्रसादि धर ऊपरि सुखि बसहि ॥ सुत भ्रात मीत बनिता संगि हसहि॥ जिह प्रसादि पीवहि सीतल जला ॥ सुखदाई पवनु पावकु अमुला ॥ जिह प्रसादि भोगहि सभि रसा ॥ सगल समग्री संगि साथि बसा ॥ दीने हसत पाव करन नेत्र रसना ॥ तिसहि तिआगि अवर संगि रचना ॥ ऐसे दोख मूड़ अंध बिआपे ॥ नानक काढि लेहु प्रभ आपे ॥२॥

जिसकी कृपा से तू सुखपूर्वक धरती पर बस रहा है और पुत्र, भाई, स्त्री आदि के साथ हँस खेल रहा है; जिसकी कृपा से तू शीतल जल पी रहा है और तुझे अमूल्य पवन और अग्नि मिली हुई है; जिसकी कृपा से तू सब रसों को भोग रहा है और समस्त आवश्यक साम्रगी के साथ तू रह रहा है; जिसने तुझे हाथ, पाँव, नेत्र और जीभ दी है तू उसे त्याग कर अन्य लोगों में लीन हो रहा है। ऐसे अनेकों दोष मूर्ख अन्धे प्राणी के साथ लगे हुए हैं नानक का कथन है कि हे प्रभु, तू ऐसे मूर्ख की स्वयं की रक्षा कर।। २ ।।

आदि अंति जो राखनहारु ॥ तिस सिउ प्रीति न करै गवारु ॥ जा की सेवा नव निधि पावै ॥ ता सिउ मूड़ा मनु नही लावै ॥ जो ठाकुरु सद सदा हजूरे॥ ता कउ अंधा जानत दूरे ॥ जा की टहल पावै दरगह मानु ॥ तिसहि बिसारै मुगधु अजानु ॥ सदा सदा इहु भूलनहारु ॥ नानक राखनहारु अपारु ॥३॥

जो शुरू से अन्त तक सबका रक्षक है, मूर्ख व्यक्ति उससे प्रेम नहीं करता। जिसकी

सेवा से नवनिधियाँ प्राप्त होती है; यह मूर्ख व्यक्ति उसके साथ अपना मन नहीं लगाता। जो स्वामी सदैव प्रत्यक्ष रूप से सामने बना रहता है यह अन्धा व्यक्ति उसको बहुत दूर समझता है। जिसकी सेवा से परलोक में मान-सम्मान मिलता है, यह अनजान एवं मूर्ख व्यक्ति उसको ही भुलाए बैठा है। यह जीव तो सदैव भूल करता है परन्तु हे नानक, इसकी रक्षा करने वाला वह अपरंपर परमात्मा ही है।। ३ ।।

रतनु तिआगि कउडी संगि रचै ॥ साचु छोडि झूठ संगि मचै ॥ जो छडना सु असथिरु करि मानै ॥ जो होवनु सो दूरि परानै ॥ छोडि जाइ तिस का स्रमु करै ॥ संगि सहाई तिसु परहरै ॥ चंदन लेपु उतारै धोइ ॥ गरधब प्रीति भसम संगि होइ ॥ अंध कूप महि पतित बिकराल ॥ नानक काढि लेहु प्रभ दइआल ॥४॥

यह जीव रत्न को त्याग कर कौड़ियों में लीन होता है और सत्य को छोड़कर यह झूठ में बना रहकर ही आनन्दित होता है। जिसे छोड़ना है उसे वह स्थायी मान रहा है और जो तत्काल हो सकता है वह इसे दूर लगता है। जिसको छोड़ना है उसके लिए दिन-रात मेहनत करता है और जिसने अन्त में सहायक होना है उसका त्याग करता है। चन्दन (अच्छे गुणों) के लेप को यह उसी प्रकार धोकर उतार देता है जैसे गधे का प्रेम केवल मिट्टी (राख) के साथ ही होता है। यह भीषण रूप से पतित जीव माया के अन्धे कुँए में पड़ा हुआ है और नानक का कथन है कि हे प्रभु, दया करके इसे निकाल ले।। ४ ।।

करतूति पसू की मानस जाति ॥ लोक पचारा करै दिनु राति ॥ बाहरि भेख अंतरि मलु माइआ ॥ छपसि नाहि कछु करै छपाइआ ॥ बाहरि गिआन धिआन इसनान ॥ अंतरि बिआपै लोभु सुआनु ॥ अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह ॥ गलि पाथर कैसे तरै अथाह ॥ जा कै अंतरि बसै प्रभु आपि ॥ नानक ते जन सहजि समाति ॥५॥

जीव है तो मनुष्य लेकिन इसके कर्म पशुओं वाले हैं। यह दिन-रात पाखण्डों में लगा रहता है। बाहर तो इसका वेश धार्मिक है परन्तु इसके अन्तर्मन में माया की मैल भरी हुई है।। यह चाहे जितना छुपाए इस तथ्य को छुपा नहीं सकता। बाहर से यह ज्ञान, ध्यान और स्नान का दिखावा करता है परन्तु इसके अन्तर्मन को तो लोभ रूपी कुत्ता पकड़े बैठा है। उसने तन पर तो राख लगा रखी है परन्तु उसके अन्दर तृष्णाओं की अग्नि जल रही है। गले में पत्थर बाँधकर भला वह गहरे समुद्र में कैसे तैर सकता है। जिनके मन में प्रभु स्वयं बसता है, हे नानक, ऐसे व्यक्ति उस सहज रूपी परमात्मा में लीन बने रहते हैं।। ५ ।।

सुनि अंधा कैसे मारगु पावै ॥ करु गहि लेहु ओड़ि निबहावै ॥ कहा बुझारति

बूझै डोरा ॥ निसि कहीऐ तउ समझै भोरा ॥ कहा बिसनपद गावै गुंग ॥ जतन करै तउ भी सुर भंग ॥ कह पिंगुल परबत पर भवन ॥ नही होत ऊहा उसु गवन॥ करतार करुणा मै दीनु बेनती करै ॥ नानक तुमरी किरपा तरै ॥६॥

केवल सुनने मात्र से ही अन्धा व्यक्ति कैसे मार्ग जान सकता है। उसका हाथ पकड़ लो तो वह ठिकाने पर पहुँच जाएगा। बहरा व्यक्ति भला पहेली को कैसे बूझ सकता है क्योंकि उसे रात के बारे में कहा जाता है तो वह भोर होने की बात समझता है। गूँगा व्यक्ति भला प्रभु के गीत कैसे गा सकता है क्योंकि यह प्रयत्न भी करे तब भी उसका स्वर टूट जाता है। लंगड़ा व्यक्ति पहाड़ पर कैसे चढ़ सकता है; उसका वहाँ जाना सम्भव नहीं होता। हे कर्ता करुणामय प्रभु, दीन नानक प्रार्थना करता है कि यदि तुम्हारी कृपा हो जाए तो वह भी पार उतर सकता है।। ६ ।।

संगि सहाई सु आवै न चीति ॥ जो बैराई ता सिउ प्रीति ॥ बलूआ के ग्रिह भीतरि बसै ॥ अनद केल माइआ रंगि रसै ॥ द्रिड़ु करि मानै मनहि प्रतीति॥ कालु न आवै मूड़े चीति ॥ बैर बिरोध काम क्रोध मोह ॥ झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह ॥ इआहू जुगति बिहाने कई जनम ॥ नानक राखि लेहु आपन करि करम ॥७॥

व्यक्ति को सदैव सहायक बना रहने वाला प्रभु याद नहीं आता और जो इसका शत्रु है यह उसी के साथ प्रीति बनाए रखता है। यह रेत के घर में रहता है और मायावी रंगों और रसों में आनन्दित होकर खेलता रहता है। इसके मन में यह विश्वास है कि यह खेल-रंग स्थायी बने रहेंगे और इस मूर्ख को काल का ध्यान बिल्कुल ही नहीं आता। दुश्मनी, विरोध, काम, क्रोध, मोह, झूठ विकार, लोभ, विश्वासघात करते हुए व्यक्ति ने अनेकों जन्म व्यतीत कर दिए हैं। हे प्रभु, अपनी कृपा कर और नानक की रक्षा कर ले।। ७ ।।

तू ठाकुरु तुम पहि अरदासि ॥ जीउ पिंडु सभु तेरी रासि ॥ तुम मात पिता हम बारिक तेरे ॥ तुमरी क्रिपा महि सूख घनेरे ॥ कोइ न जानै तुमरा अंतु॥ ऊचे ते ऊचा भगवंत ॥ सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी ॥ तुम ते होइ सु आगिआकारी ॥ तुमरी गति मिति तुम ही जानी ॥ नानक दास सदा कुरबानी ॥८॥४॥

तुम स्वामी हो और मेरी अरदास तुम्हारे सामने ही है। हे प्रभु, मेरी आत्मा, देह सब तेरी ही दी हुई पूँजी है। तुम हमारे माता-पिता हो और हम तुम्हारे बच्चे हैं। तुम्हारी कृपा में ही अनेकों सुख विद्यमान हैं। तुम्हारे ओर-छोर को कोई नहीं जानता क्योंकि हे प्रभु तू ऊँचे से ऊँचा है। समस्त सृष्टि तुम्हारे सूत्र पर ही आधारित है। जो तुमसे पैदा हुआ

है वह तेरी आज्ञा में है। तुम्हारी गति एवं परिमिति तुम ही जानते हो। तेरा दास नानक तो सदैव तुझ पर बलिहारी जाता है।। ८ ।। ४ ।।

सलोकु ॥ देनहारु प्रभ छोडि कै लागहि आन सुआइ ॥ नानक कहू न सीझई बिनु नावै पति जाइ ॥ १॥

जो उस देने वाले प्रभु को छोड़कर अन्यों के स्वाद में लीन होता है। हे नानक, वह कहीं भी सफल नहीं होता और उस नाम-विहीन का सम्मान जाता रहता है।। १ ।।

असटपदी ॥ दस बसतू ले पाछै पावै ॥ एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै॥ एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ ॥ तउ मूड़ा कहु कहा करेइ ॥ जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा ॥ ता कउ कीजै सद नमसकारा ॥ जा कै मनि लागा प्रभु मीठा ॥ सरब सूख ताहू मनि वूठा ॥ जिसु जन अपना हुकमु मनाइआ ॥ सरब थोक नानक तिनि पाइआ ॥१॥

आदमी दस चीजें लेकर पीछे रख लेता है परन्तु मात्र एक और वस्तु के लिए वह अपना विश्वास खो लेता है। यदि वह एक भी न दे और दसों को भी छीन ले तब बताओ भला यह मूर्ख जीव क्या कर सकता है। जिस स्वामी के सम्मुख जोर नहीं चलता उसको सदैव प्रणाम ही करना चाहिए। जिसके मन को प्रभु मीठा लगता है सभी सुख उसके हृदय में आन बसते हैं। जिस सेवक से प्रभु ने अपना हुकुम मनवा लिया, हे नानक, ऐसा सेवक सभी वस्तुएं प्राप्त कर लेता है।। १ ।।

अगनत साहु अपनी दे रासि ॥ खात पीत बरतै अनद उलासि ॥ अपुनी अमान कछु बहुरि साहु लेइ ॥ अगिआनी मनि रोसु करेइ ॥ अपनी परतीति आप ही खोवै ॥ बहुरि उस का बिस्वासु न होवै ॥ जिस की बसतु तिसु आगै राखै ॥ प्रभ की आगिआ मानै माथै ॥ उस ते चउगुन करै निहालु ॥ नानक साहिबु सदा दइआलु ॥२॥

साहूकार रूपी प्रभु व्यक्ति को अपनी अनन्त पूँजी देता है जिसे वह प्रसन्नतापूर्वक खाता पीता और व्यवहार में लाता है। यदि अपनी अमानत में से ही वह साहूकार कुछ वापस ले लेता है तो यह अज्ञानी जीव मन में क्रोधित हो उठता है। इस प्रकार अपना विश्वास यह स्वयं ही खो देता है और पुनः साहूकार रूपी प्रभु को उसका विश्वास नहीं होता। यदि व्यक्ति जिसकी वस्तु है उसके सामने रखे और प्रभु की आज्ञा को माथे पर धारण करे तो वह स्वामी उसे चार गुना और अधिक तृप्त कर देगा क्योंकि हे नानक, वह मालिक सदैव दयालु ही बना रहता है।। २ ।।

अनिक भाति माइआ के हेत ॥ सरपर होवत जानु अनेत ॥ बिरख की छाइआ

सिउ रंगु लावै ॥ ओह बिनसै उहु मनि पछुतावै ॥ जो दीसै सो चालनहारु॥ लपटि रहिओ तह अंध अंधारु ॥ बटाऊ सिउ जो लावै नेह ॥ ता कउ हाथि न आवै केह ॥ मन हरि के नाम की प्रीति सुखदाई ॥ करि किरपा नानक आपि लए लाई ॥३॥

यह मान लेना चाहिए कि माया के अनेकों प्रकार के रूप अस्थायी हैं और ये शीघ्र ही नष्ट हो जाएंगे। वृक्ष की छाया के साथ प्रीति लगाने वाला व्यक्ति उस छाया के विनष्ट हो जाने पर मन के अन्दर व्यर्थ ही अफसोस करता हैं। जो दृश्यमान है वह सभी चलायमान है फिर भी यह घोर अन्धा जीव उसी से लिपटा हुआ है। जो मुसाफिर के साथ प्रीति जोड़ता है उसको कुछ भी हाथ नहीं लगता। हे मन, प्रभु नाम का प्रेम ही सुखदायक है। हे नानक, प्रभु कृपा करके ही जीवों को अपने साथ लगाता है।। ३ ।।

मिथिआ तनु धनु कुटंबु सबाइआ ॥ मिथिआ हउमै ममता माइआ ॥ मिथिआ राज जोबन धन माल ॥ मिथिआ काम क्रोध बिकराल ॥ मिथिआ रथ हसती अस्व बसत्रा ॥ मिथिआ रंग संगि माइआ पेखि हसता ॥ मिथिआ ध्रोह मोह अभिमानु ॥ मिथिआ आपस ऊपरि करत गुमानु ॥ असथिरु भगति साध की सरन ॥ नानक जपि जपि जीवै हरि के चरन ॥४॥

यह तन, धन, कुटुम्ब आदि सभी लोग नाशवान हैं, अहंकार, ममत्व और माया आदि सभी नाशवान हैं। राज, यौवन, धन, माल, काम, और भयानक क्रोध सभी नाशवान हैं; रथ, हाथी, घोड़े वस्त्र आदि भी मिथ्या हैं। माया के साथ लीन बना रहकर आनन्दित होना भी मिथ्या है। विश्वासघात, मोह, अभिमान और अपने पर गर्व करना आदि झूठे हैं। प्रभु की भक्ति और भले पुरुषों की शरण ही केवल स्थिर बने रहने वाले हैं और प्रभु के चरणों का सुमिरन कर कर के ही नानक जीवित बना हुआ है।। ४ ।।

मिथिआ स्रवन पर निंदा सुनहि ॥ मिथिआ हसत पर दरब कउ हिरहि ॥ मिथिआ नेत्र पेखत पर त्रिअ रूपाद ॥ मिथिआ रसना भोजन अनस्वाद ॥ मिथिआ चरन पर बिकार कउ धावहि ॥ मिथिआ मन पर लोभ लुभावहि॥ मिथिआ तन नही परउपकारा ॥ मिथिआ बासु लेत बिकारा ॥ बिनु बूझे मिथिआ सभ भए ॥ सफल देह नानक हरि हरि नाम लए ॥५॥

वे कान व्यर्थ हैं जो परायी निन्दा सुनते हैं, वे हाथ भी व्यर्थ हैं जो दूसरे के धन का अपहरण करते हैं। वे नेत्र व्यर्थ हैं जो परायी स्त्री के रूप सौन्दर्य को ताकते रहते हैं और वह जीभ भी व्यर्थ है जो अन्य स्वादों वाले भोजन को लेती रहती है। दूसरे का बुरा करने के लिए चलने वाले पैर भी व्यर्थ हैं और वह मन भी व्यर्थ है जो सदैव लोभ करते

हुए ललचाता रहता है। जो परोपकार नहीं करता वह तन भी व्यर्थ है और वह नाक भी व्यर्थ है जो विकारों की गन्ध लेता रहता है। परमात्मा को बूझने के अतिरिक्त सभी कार्य व्यर्थ हैं और हे नानक वही शरीर धन्य है जो प्रभु के नाम का सुमिरन करता रहता है।। ५ ।।

बिरथी साकत की आरजा ॥ साच बिना कह होवत सूचा ॥ बिरथा नाम बिना तनु अंध ॥ मुखि आवत ता कै दुरगंध ॥ बिनु सिमरन दिनु रैनि ब्रिथा बिहाइ ॥ मेघ बिना जिउ खेती जाइ ॥ गोबिद भजन बिनु ब्रिथे सभ काम॥ जिउ किरपन के निरारथ दाम ॥ धंनि धंनि ते जन जिह घटि बसिओ हरि नाउ ॥ नानक ता कै बलि बलि जाउ ॥६॥

प्रभु से टूटे हुए व्यक्ति की सारी आयु ही व्यर्थ है। सत्य के बिना भला कोई कैसे पवित्र हो सकता है। प्रभु-नाम के बिना यह अन्धा तन भी व्यर्थ है और ऐसे तन के मुख से विकारों की दुर्गन्ध आती रहती है। सुमिरन के बिना सभी कार्य वैसे ही व्यर्थ हैं जैसे कंजूस व्यक्ति की धन-सम्पदा भी व्यर्थ हो जाती है। वे व्यक्ति धन्य हैं जिनके हृदय में हरि-नाम बसता है। नानक उन पर बार बार बलिहारी जाता है।। ६ ।।

रहत अवर कछु अवर कमावत ॥ मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत ॥ जाननहार प्रभू परबीन ॥ बाहरि भेख न काहू भीन ॥ अवर उपदेसै आपि न करै ॥ आवत जावत जनमै मरै ॥ जिस कै अंतरि बसै निरंकारु ॥ तिस की सीख तरै संसारु ॥ जो तुम भाने तिन प्रभु जाता ॥ नानक उन जन चरन पराता ॥७॥

व्यक्ति रहता तो कुछ और ढंग से है और उसके कार्य कलाप बिल्कुल ही कुछ और प्रकार के होते हैं। उसके मन में वास्तविक प्रेम नहीं होता परन्तु वह मुँह से शेखी बघारता रहता है। वह प्रवीण प्रभु सब कुछ जानता है और किसी के भी बाहरी दिखावे से वह प्रसन्न नहीं होता। जो अन्यों को उपदेश देता है परन्तु स्वयं उसके अनुरूप कार्य नहीं करता वह आवागमन में पड़ा मरता-जन्मता रहता है। जिसके अन्तर्मन में वह निराकार प्रभु बसता है उसकी शिक्षा के फलस्वरूप सारा संसार पार उतर जाता है। हे प्रभु, जो मुझे अच्छे लगते हैं केवल वे ही तुझे जान पाते हैं। नानक उन सेवकों के चरणों पर गिरा हुआ है।। ७ ।।

करउ बेनती पारब्रह्मु सभु जानै ॥ अपना कीआ आपहि मानै ॥ आपहि आप आपि करत निबेरा ॥ किसै दूरि जनावत किसै बुझावत नेरा ॥ उपाव सिआनप सगलते रहत ॥ सभु कछु जानै आतम की रहत ॥ जिसु भावै तिसु लए लड़ि लाइ ॥ थान थनंतरि रहिआ समाइ ॥ सो सेवकु जिसु किरपा करी

॥ निमख निमख जपि नानक हरी ॥८॥५॥

उस परमात्मा के आगे प्रार्थना करो जो सब कुछ जानता है। अपनी रचना को वह स्वयं ही सम्मान देता है। वह स्वयं ही सभी फैसले करता है और किसी को अपने आप को दूर जनवाता है और किसी को अपने पास ही अपना आप दिखवा देता है। वह समस्त उपायों और चतुराईयों से दूर है। वह व्यक्ति की आत्मा की मर्यादा को भली प्रकार जानता है। वह जिसे चाहता है उसे अपने आँचल से लगा लेता है और वह प्रभु सभी स्थान और स्थानान्तरों में समाया हुआ है। जिस पर प्रभु कृपा करता है वही उसका सेवक माना जाता है। हे नानक, प्रत्येक क्षण उस प्रभु का सुमिरन कर।। ८ ।। ५ ।।

सलोकु ॥ काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहंमेव ॥ नानक प्रभ सरणागती करि प्रसादु गुरदेव ॥१॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं मेरा अंहकार आदि विनष्ट हो जाए।। नानक प्रभु का शरणागत बन गया है इसीलिए हे गुरुदेव प्रभु मेरे पर कृपा कर।। १ ।।

असटपदी ॥ जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि ॥ तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि ॥ जिह प्रसादि सुगंधत तनि लावहि ॥ तिस कउ सिमरत परम गति पावहि ॥ जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि ॥ तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि ॥ जिह प्रसादि ग्रिह संगि सुख बसना ॥ आठ पहर सिमरहु तिसु रसना ॥ जिह प्रसादि रंग रस भोग ॥ नानक सदा धिआईऐ धिआवन जोग ॥१॥

जिसकी कृपा से तू छत्तीस प्रकार के अमृत रसवाले भोजन खाता है उस प्रभु को अपने हृदय में धारण करके रख। जिसकी कृपा से तू सुखदायक महलों में बसता है, हे जीव, सदैव, मन में उसका ध्यान बनाए रख। जिसकी कृपा से तू घर में सुखपूर्वक बसता है आठों प्रहर अपनी जीभ से उसका सुमिरन कर। जिसकी कृपा से सब प्रकार के रंगों रसों का उपभोग तू करता है हे नानक, ऐसे प्रभु का सदैव सुमिरन करना चाहिए जो सुमिरन के योग्य है।। १ ।।

जिह प्रसादि पाट पटंबर हढावहि ॥ तिसहि तिआगि कत अवर लुभावहि॥ जिह प्रसादि सुखि सेज सोईजै ॥ मन आठ पहर ता का जसु गावीजै ॥ जिह प्रसादि तुझु सभु कोऊ मानै ॥ मुखि ता को जसु रसन बखानै ॥ जिह प्रसादि तेरो रहता धरमु ॥ मन सदा धिआइ केवल पारब्रह्मु ॥ प्रभ जी जपत दरगह मानु पावहि ॥ नानक पति सेती घरि जावहि ॥२॥

जिसकी कृपा से तू रेशम और रेशम के वस्त्र पहनता है उसे छोड़कर तू दूसरों की

तरफ क्यों ललचाता है। जिसकी कृपा से सुखपूर्वक शय्या पर तू सोता है हे मेरे मन, आठों प्रहर उसका गुणानुवाद कर। जिसकी कृपा से तुझे सभी मानते हैं तू अपने मुख और जीभ से उसके यश का उच्चारण कर। हे मन, तू केवल उस परब्रह्म का सुमिरन कर जिसकी कृपा से तू अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता है। हे नानक, प्रभु का सुमिरन करके तुझे उसके दरबार में सम्मान मिलेगा और तू सम्मान सहित अपने मूल घर में निवास करेगा।। २ ।।

जिह प्रसादि आरोग कंचन देही ॥ लिव लावहु तिसु राम सनेही ॥ जिह प्रसादि तेरा ओला रहत ॥ मन सुखु पावहि हरि हरि जसु कहत ॥ जिह प्रसादि तेरे सगल छिद्र ढाके ॥ मन सरनी परु ठाकुर प्रभ ता कै ॥ जिह प्रसादि तुझु को न पहूचै ॥ मन सासि सासि सिमरहु प्रभ ऊचे ॥ जिह प्रसादि पाई दुलभ देह ॥ नानक ता की भगति करेह ॥३॥

अपनी सुरति को उस प्यारे प्रभु में लगा जिसकी कृपा से तुझे कंचन जैसा निरोग शरीर प्राप्त हुआ है। हे मन, तू प्रभु के गुणानुवाद में सुख पाएगा क्योंकि उसकी कृपा से तेरी इज़्ज़त बनी हुई है। हे मन, उस प्रभु की शरण में आ जा जिसकी कृपा से तेरे समस्त पाप ढके हुए हैं। जिसकी कृपा से, हे मन, तुझे कोई भी छेड़ने वाला नहीं है, तुम प्रत्येक श्वास के साथ उस ऊँचे प्रभु का सुमिरन कर। हे नानक, तू उस प्रभु की भक्ति कर जिसकी कृपा से तुझे दुर्लभ देह प्राप्त हुई है।। ३ ।।

जिह प्रसादि आभूखन पहिरीजै ॥ मन तिसु सिमरत किउ आलसु कीजै ॥ जिह प्रसादि अस्व हसति असवारी ॥ मन तिसु प्रभ कउ कबहू न बिसारी॥ जिह प्रसादि बाग मिलख धना ॥ राखु परोइ प्रभु अपुने मना ॥ जिनि तेरी मन बनत बनाई ॥ ऊठत बैठत सद तिसहि धिआई ॥ तिसहि धिआइ जो एक अलखै ॥ ईहा ऊहा नानक तेरी रखै ॥४॥

हे मन, तू उसका सुमिरन करने में आलस्य क्यों करता है जिसकी कृपा से तू आभूषण आदि धारण किए रहता है। हे मन, उस प्रभु को कभी मत भूल जिसकी कृपा से तू हाथी, घोड़ों पर सवारी करता है। हे प्राणी, उस प्रभु को अपने मन में धारण किए रह जिसके प्रसाद् स्वरूप तेरे पास बाग, सम्पति एवं धन है। हे मन, जिसने तुझे यह आकार दिया है उसे उठते-उठते बैठते सदैव याद रख। हे नानक, जो इस लोक और परलोक में तेरी इज़्ज़त बचाने वाला है उस एक अदृष्ट प्रभु का सुमिरन कर।। ४ ।।

जिह प्रसादि करहि पुंन बहु दान ॥ मन आठ पहर करि तिस का धिआन॥ जिह प्रसादि तू आचार बिउहारी ॥ तिसु प्रभ कउ सासि सासि चितारी ॥ जिह प्रसादि तेरा सुंदर रूपु ॥ सो प्रभु सिमरहु सदा अनूपु ॥ जिह प्रसादि

तेरी नीकी जाति ॥ सो प्रभु सिमरि सदा दिन राति ॥ जिह प्रसादि तेरी पति रहै ॥ गुर प्रसादि नानक जसु कहै ॥५॥

हे मन, आठों प्रहर उसमें ध्यान लगा जिसकी कृपा से तू अनेकों दान एवं पुण्य करता है। उस प्रभु को प्रत्येक श्वास के साथ याद कर जिसकी कृपा से तू अच्छे आचरण वाला व्यवहार करता है। उस अनुपम प्रभु का सदैव सुमिरन करो जिसकी कृपा से तुझे सुन्दर रूप प्राप्त हुआ है। उस प्रभु का दिन-रात सुमिरन करो जिसकी कृपा से तेरी (तथाकथित) ऊँची जाति है। हे नानक, गुरु की कृपा से उसकी कीर्ति का उच्चारण करो जिसके प्रसाद स्वरूप तेरा सम्मान बचा रहता है।। ५ ।।

जिह प्रसादि सुनहि करन नाद ॥ जिह प्रसादि पेखहि बिसमाद ॥ जिह प्रसादि बोलहि अंम्रित रसना ॥ जिह प्रसादि सुखि सहजे बसना ॥ जिह प्रसादि हसत कर चलहि ॥ जिह प्रसादि संपूरन फलहि ॥ जिह प्रसादि परम गति पावहि ॥ जिह प्रसादि सुखि सहजि समावहि ॥ ऐसा प्रभु तिआगि अवर कत लागहु ॥ गुर प्रसादि नानक मनि जागहु ॥६॥

जिसकी कृपा से तेरे कान नाद को सुनते हैं, जिसकी कृपा से तू आश्चर्य विभोर होकर देखता है, जिसकी कृपा से तेरी जीभ अमृत वचनों का उच्चारण करती है, जिसकी कृपा से तू सुखपूर्वक सहज भाव में निवास करता है, जिसकी कृपा से तेरे हाथ पाँव चलते हैं, जिसकी कृपा से तू पूर्ण रूप से फलता-फूलता है, जिसकी कृपा से तू परमगति प्राप्त करता है, जिसकी कृपा से तू सुखपूर्वक सहजभाव में लीन हो जाता है, ऐसे प्रभु को त्याग कर तू किसी अन्य में क्यों मन लगाता है। हे नानक, गुरु की कृपा के फलस्वरूप मन को प्रभु की ओर से चेतन बनाओ।। ६ ।।

जिह प्रसादि तूं प्रगटु संसारि ॥ तिसु प्रभ कउ मूलि न मनहु बिसारि ॥ जिह प्रसादि तेरा परतापु ॥ रे मन मूड़ तू ता कउ जापु ॥ जिह प्रसादि तेरे कारज पूरे ॥ तिसहि जानु मन सदा हजूरे ॥ जिह प्रसादि तूं पावहि साचु ॥ रे मन मेरे तूं ता सिउ राचु ॥ जिह प्रसादि सभ की गति होइ ॥ नानक जापु जपै जपु सोइ ॥७॥

उस प्रभु को मन से तनिक भी मत भुलाओ जिसकी कृपा से तुम संसार में प्रसिद्ध हो। हे मूर्ख मन तू उसका जाप कर जिसकी कृपा से तेरा तेज एवं प्रताप है। हे मन, उस प्रभु को सदैव प्रत्यक्ष समझ जिसकी कृपा से तेरे सभी कार्य पूर्ण होते हैं। जिसकी कृपा से तुझे सत्य प्राप्त होता है, हे मेरे मन, तू उसी में लीन हो जा। नानक उसके नाम का लगातार जाप करता है जिसकी कृपा से सभी पार उतर जाते हैं।। ७ ।।

आपि जपाए जपै सो नाउ ॥ आपि गावाए सु हरि गुन गाउ ॥ प्रभ किरपा ते होइ प्रगासु ॥ प्रभू दइआ ते कमल बिगासु ॥ प्रभ सुप्रसंन बसै मनि सोइ ॥ प्रभ दइआ ते मति ऊतम होइ ॥ सरब निधान प्रभ तेरी मइआ ॥ आपहु कछू न किनहू लइआ ॥ जितु जितु लावहु तितु लगहि हरि नाथ ॥ नानक इन कै कछू न हाथ ॥८॥६॥

प्रभु जिससे जपाता है वही नाम जपता है और जिससे हरि गुण का गायन कराता है केवल वही गाता है। प्रभु की कृपा से ही ज्ञान का प्रकाश होता है और प्रभु-दया से ही हृदय-कमल खिलता है। प्रभु प्रसन्न होता है तो व्यक्ति के मन में आन बसता है और प्रभु-दया से ही उत्तम पदवी प्राप्त होती है। हे प्रभु, तेरी कृपा में ही सभी खजाने हैं परन्तु अपने आप कोई भी कुछ नहीं ले सका। जहाँ तू जीवों को लगाता है, हे नाथ प्रभु, वहीं वे लगते हैं। नानक का कथन है कि इनके हाथ में कुछ भी नहीं।। ८ ।। ६ ।।

सलोकु ॥ अगम अगाधि पारब्रहमु सोइ ॥ जो जो कहै सु मुकता होइ ॥ सुनि मीता नानकु बिनवंता ॥ साध जना की अचरज कथा ॥१॥

वह परब्रह्म प्रभु अगम्य एवं अथाह है। जो भी उसका सुमिरन करता है मुक्त हो जाता है। हे मित्र, नानक प्रार्थना करता है कि अब प्रभु के सेवक साधुजनों की कौतुक कथा को सुनो।। १ ।।

असटपदी ॥ साध कै संगि मुख ऊजल होत ॥ साधसंगि मलु सगली खोत॥ साध कै संगि मिटै अभिमानु ॥ साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु ॥ साध कै संगि बुझै प्रभु नेरा ॥ साधसंगि सभु होत निबेरा ॥ साध कै संगि पाए नाम रतनु ॥ साध कै संगि एक ऊपरि जतनु ॥ साध की महिमा बरनै कउनु प्रानी॥ नानक साध की सोभा प्रभ माहि समानी ॥१॥

साधसंगत में मुख उज्जवल हो जाता है और समस्त प्रकार की मैल उतर जाती है। साधसंगत में अभिमान मिट जाता है और पवित्र ज्ञान प्रकट हो जाता है। साधसंगत में प्रभु पास ही में अनुभव होता है और व्यक्ति के सभी झंझट निपट जाते हैं। साधसंगत में नाम रत्न प्राप्त होता है और साधसंगत में रहकर व्यक्ति केवल एक परमात्मा की ओर ही ध्यान लगाता है। साधु पुरुषों की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है और हे नानक, साधु का बड़प्पन तो प्रभु में ही लीन बना रहता है।। १ ।।

साध कै संगि अगोचरु मिलै ॥ साध कै संगि सदा परफुलै ॥ साध कै संगि आवहि बसि पंचा ॥ साधसंगि अंम्रित रसु भुंचा ॥ साधसंगि होइ सभ की रेन ॥ साध कै संगि मनोहर बैन ॥ साध कै संगि न कतहूं धावै ॥ साधसंगि

असथिति मनु पावै ॥ साध कै संगि माइआ ते भिंन ॥ साधसंगि नानक प्रभ सुप्रसंन ॥२॥

साधसंगत मे अदृष्ट प्रभु से मिलाप हो जाता है और व्यक्ति सदैव प्रफुल्लित बना रहता है। साधसंगत में पांचों विकार वश में आ जाते हैं और व्यक्ति अमृत रस के आनन्द का उपभोग करता है। साधसंगत में व्यक्ति सब की चरण-धूलि बन जाता है और उसकी वाणी मनोहारी हो जाती है। साधसंगत में माया से अलगाव प्राप्त होता है और हे नानक, साधसंगत में ही प्रभु प्रसन्न होता है।। २ ।।

साधसंगि दुसमन सभि मीत ॥ साधू कै संगि महा पुनीत ॥ साधसंगि किस सिउ नही बैरु ॥ साध कै संगि न बीगा पैरु ॥ साध कै संगि नाही को मंदा ॥ साधसंगि जाने परमानंदा ॥ साध कै संगि नाही हउ तापु ॥ साध कै संगि तजै सभु आपु ॥ आपे जानै साध बडाई ॥ नानक साध प्रभू बनि आई ॥३॥

साधसंगत के फलस्वरूप सभी शत्रु मित्र हो जाते हैं और साधु व्यक्तियों के साथ में व्यक्ति परम पुनीत हो जाता है। साधसंगत में किसी से शत्रुता नहीं रहती और व्यक्ति का कोई भी कदम टेढ़ा नहीं उठता। साधसंगत में कोई बुरा नहीं लगता और साधसंगत के माध्यम से ही व्यक्ति परमानन्द जो जान जाता है। साधसंगत में ही अहंकार का ज्वर उतर जाता है और व्यक्ति अपने अहम् का त्याग कर देता है। साधु पुरुषों के बड़प्पन को वह प्रभु स्वयं ही जानता है और हे नानक, भले व्यक्ति और प्रभु की सदा से ही बनती आई है।। ३ ।।

साध कै संगि न कबहू धावै ॥ साध कै संगि सदा सुखु पावै ॥ साधसंगि बसतु अगोचर लहै ॥ साधू कै संगि अजरु सहै ॥ साध कै संगि बसै थानि ऊचै ॥ साधू कै संगि महलि पहूचै ॥ साध कै संगि द्रिड़ै सभि धरम ॥ साध कै संगि केवल पारब्रहम ॥ साध कै संगि पाए नाम निधान ॥ नानक साधू कै कुरबान ॥४॥

साधु पुरुषों की संगत में व्यक्ति इधर-उधर नहीं भटकता और सदैव सुख प्राप्त करता है। साधसंगत में अदृष्ट पदार्थों को पा जाता है और साधसंगत में ही व्यक्ति को असह्य को सहने की शक्ति प्राप्त होती है। साधसंगत में व्यक्ति उच्च स्थान में निवास बनाता है और प्रभु के स्थान तक जा पहुँचता है। साधसंगत में व्यक्ति कर्त्तव्य कर्म में भी दृढ़ हो जाता है और केवल एक परब्रह्म परमात्मा का ही सुमिरन करता है। साधसंगत में व्यक्ति नाम का खज़ाना पा जाता है और यह नानक ऐसे साधु पुरुष पर बलिहारी जाता है।। ४ ।।

साध कै संगि सभ कुल उधारै ॥ साधसंगि साजन मीत कुटम्ब निसतारै ॥

साधू कै संगि सो धनु पावै ॥ जिसु धन ते सभु को वरसावै ॥ साधसंगि धरम राइ करे सेवा ॥ साध कै संगि सोभा सुरदेवा ॥ साधू कै संगि पाप पलाइन ॥ साधसंगि अंम्रित गुन गाइन ॥ साध कै संगि स्रब थान गंमि ॥ नानक साध कै संगि सफल जनंम ॥५॥

साधसंगत में व्यक्ति के कुल का उद्धार हो जाता है और इतना ही नहीं, सज्जन, मित्र और कुटुम्ब आदि भी पार उतर जाते हैं। साधसंगत में वह धन प्राप्त होता है जिस धन से हर कोई लाभ उठाता है। साधुसंगत वाले व्यक्ति की धर्मराज भी सेवा करता है और ऐसे व्यक्ति की शोभा का देवता गण भी गायन करते हैं। साधसंगत में पाप भाग खड़े होते हैं और व्यक्ति अमृतमय गुणों का गायन करता है। साधसंगत के माध्यम से व्यक्ति सब स्थानों पर गमन करने योग्य हो जाता है और हे नानक, साधसंगत में बने रहने वाले व्यक्ति का जन्म सफल हो जाता है।। ५ ।।

साध कै संगि नही कछु घाल ॥ दरसनु भेटत होत निहाल ॥ साध कै संगि कलूखत हरै ॥ साध कै संगि नरक परहरै ॥ साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला॥ साधसंगि बिछुरत हरि मेला ॥ जो इछै सोई फलु पावै ॥ साध कै संगि न बिरथा जावै ॥ पारब्रहमु साध रिद बसै ॥ नानक उधरै साध सुनि रसै ॥६॥

साधसंगत वाला व्यक्ति किसी मुसीबत में नहीं फँसता। ऐसे व्यक्ति का दर्शन करने से सभी प्रसन्न हो उठते हैं। साधसंगत सब कलंकों को धो देती है और नर्क दूर भाग जाता है। साधसंगत वाला व्यक्ति इस लोक और उस लोक में सुखी बना रहता है और साधसंगत में ही प्रभु से बिछुड़े हुए लोगों का प्रभु से मिलाप हो जाता है। साधसंगत व्यर्थ नहीं जाती और व्यक्ति यहाँ पर मनोवांछित फल पा लेता है। परमात्मा साधु पुरुषों के हृदय में बसता है और साधु की जीभ से प्रभु-नाम सुनकर, हे नानक, जीवों का उद्धार हो जाता है।। ६ ।।

साध कै संगि सुनउ हरि नाउ ॥ साधसंगि हरि के गुन गाउ ॥ साध कै संगि न मन ते बिसरै ॥ साधसंगि सरपर निसतरै ॥ साध कै संगि लगै प्रभु मीठा ॥ साधू कै संगि घटि घटि डीठा ॥ साधसंगि भए आगिआकारी ॥ साधसंगि गति भई हमारी ॥ साध कै संगि मिटे सभि रोग ॥ नानक साध भेटे संजोग ॥७॥

साधसंगत में प्रभु-नाम को सुनों और हरि के गुणों का गायन करो। साधसंगत में प्रभु मन से विस्मृत नहीं होता और निश्चित रूप से व्यक्ति का उद्धार हो जाता है। साधसंगत में प्रभु प्यारा लगने लग जाता है और वह हर हृदय में दिखाई देने लग जाता है। साधसंगत में व्यक्ति प्रभु के हुकुम को मानने वाला बन जाता है और साधसंगत में ही मुझे परमगति मिल गयी है। साधसंगत में ही सभी रोग मिट जाते हैं और हे नानक, अच्छे

भाग्य से ही साधु व्यक्तियों से भेंट होती है।। ७ ।।

साध की महिमा बेद न जानहि ॥ जेता सुनहि तेता बखिआनहि ॥ साध की उपमा तिहु गुण ते दूरि ॥ साध की उपमा रही भरपूरि ॥ साध की सोभा का नाही अंत ॥ साध की सोभा सदा बेअंत ॥ साध की सोभा ऊच ते ऊची॥ साध की सोभा मूच ते मूची ॥ साध की सोभा साध बनि आई ॥ नानक साध प्रभ भेदु न भाई ॥८॥७॥

साधना वाले व्यक्तियों की महिमा वेद भी नहीं जानते। वे उनका केवल उतना ही बखान करते हैं जितना उन्होंने सुन रखा है। साधु की महिमा तीनों गुणों (सत, रज, तम) से परे है। साधु पुरुषों की महिमा सब ओर व्याप्त रहती है। साधु की महिमा सदैव अनन्त रही है। साधु पुरुषों की शोभा ऊँची से भी ऊँची रही है और उनकी महिमा महान से भी महान रही है। साधु की शोभा तो केवल साधु को ही शोभा देती है। हे नानक, साधु और प्रभु में कोई भी भेद नहीं होता।। ८ ।। ७ ।।

सलोकु ॥ मनि साचा मुखि साचा सोइ ॥ अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ॥ नानक इह लछण ब्रहम गिआनी होइ ॥१॥

जिसके हृदय एवं मुख में प्रभु का सच्चा नाम ही है और जो केवल एक प्रभु के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं देखता हे नानक, यही सब लक्षण ब्रह्मज्ञानी के होते हैं।। १ ।।

असटपदी ॥ ब्रहम गिआनी सदा निरलेप ॥ जैसे जल महि कमल अलेप ॥ ब्रहम गिआनी सदा निरदोख ॥ जैसे सूरु सरब कउ सोख ॥ ब्रहम गिआनी कै द्रिसटि समानि ॥ जैसे राज रंक कउ लागै तुलि पवान ॥ ब्रहम गिआनी कै धीरजु एक ॥ जिउ बसुधा कोऊ खोदै कोऊ चंदन लेप ॥ ब्रहम गिआनी का इहै गुनाउ ॥ नानक जिउ पावक का सहज सुभाउ ॥१॥

ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्मज्ञानी सदा वैसे ही निर्लेप बना रहता है जैसे जल में कमल अलिप्त रहता है। ब्रह्मज्ञानी सदैव ही पक्षपात से विहीन होता है जैसे सूर्य अच्छे-बुरे सब स्थानों से जल को सोखता है (और वर्षा के रूप में शुद्ध जल सबके लिए प्रदान करता है)। ब्रह्मज्ञानी समदृष्टि वाला वैसा ही होता है जैसे पवन, राजा और रंक को एक जैसी प्राप्त होती है। ब्रह्मज्ञानी वैसा ही धैर्यवान होता है जैसी धरती होती है जिसको कोई खोदता है और कोई उस पर चन्दन लीपता है (परन्तु वह दोनों को समान भाव से सहन करती है)। हे नानक, जैसे अग्नि का सबको निर्मल बना देने का सहज स्वभाव है, वैसे ही गुण ब्रह्मज्ञानी के हृदय में होते है।। १ ।।

ब्रहम गिआनी निरमल ते निरमला ॥ जैसे मैलु न लागै जला ॥ ब्रहम गिआनी कै मनि होइ प्रगासु ॥ जैसे धर ऊपरि आकासु ॥ ब्रहम गिआनी कै मित्र सत्रु समानि ॥ ब्रहम गिआनी कै नाही अभिमान ॥ ब्रहम गिआनी ऊच ते ऊचा ॥ मनि अपनै है सभ ते नीचा ॥ ब्रहम गिआनी से जन भए॥ नानक जिन प्रभु आपि करेइ ॥२॥

ब्रह्मज्ञानी वैसा ही निर्मल से भी निर्मल है जैसे जल को कभी मैल नहीं लगती। धरती पर आकाश की तरह फैला हुआ ब्रह्मज्ञानी का मन प्रकाशमान बना रहता है। मित्र और शत्रु ब्रह्मज्ञानी के लिए एक समान ही होते है और ब्रह्मज्ञानी को किसी प्रकार का भी अभिमान नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी सबसे ऊँचा होता है परन्तु वह अपने मन में स्वयं को सबसे विनम्र मानता है। हे नानक, जिन पर प्रभु अपनी कृपा करता है वे सेवक ही ब्रह्मज्ञानी बन पाते है।। २ ।।

ब्रहम गिआनी सगल की रीना ॥ आतम रसु ब्रहम गिआनी चीना ॥ ब्रहम गिआनी की सभ ऊपरि मइआ ॥ ब्रहम गिआनी ते कछु बुरा न भइआ ॥ ब्रहम गिआनी सदा समदरसी ॥ ब्रहम गिआनी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी॥ ब्रहम गिआनी बंधन ते मुकता ॥ ब्रहम गिआनी की निरमल जुगता ॥ ब्रहम गिआनी का भोजनु गिआन ॥ नानक ब्रहम गिआनी का ब्रहम धिआनु ॥३॥

ब्रह्मज्ञानी सबकी चरण-धूलि होता है और उसने आत्म-रस की पहचान कर ली होती है। ब्रह्मज्ञानी सब पर कृपालु होता है और उससे कभी भी कुछ भी बुरा नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी सदैव समदर्शी बना रहता है और ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि से अमृत बरसता रहता है। ब्रह्मज्ञानी बन्धनों से मुक्त होता है और उसके जीवन का ढंग निर्मल एवं पवित्र होता है। ज्ञान ही ब्रह्मज्ञानी का भोजन है और हे नानक, ब्रह्मज्ञानी सदैव ब्रह्म के ध्यान में ही लीन रहता है।। ३ ।।

ब्रहम गिआनी एक ऊपरि आस ॥ ब्रहम गिआनी का नही बिनास ॥ ब्रहम गिआनी कै गरीबी समाहा ॥ ब्रहम गिआनी परउपकार उमाहा ॥ ब्रहम गिआनी कै नाही धंधा ॥ ब्रहम गिआनी ले धावतु बंधा ॥ ब्रहम गिआनी कै होइ सु भला॥ ब्रहम गिआनी सुफल फला ॥ ब्रहम गिआनी संगि सगल उधारु ॥ नानक ब्रहम गिआनी जपै सगल संसारु ॥४॥

ब्रह्मज्ञानी केवल एक प्रभु से ही आशा करता है (अन्य किसी से कुछ नहीं मांगता); इसीलिए ब्रह्मज्ञानी कभी विनष्ट नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी विनम्रता से ओत-प्रोत रहता है और परोपकार करने के लिए ब्रह्मज्ञानी सदैव उत्साह से भरा रहता है। ब्रह्मज्ञानी सांसारिक

पाखण्डों प्रपंचों में लीन नहीं होता और इधर-उधर दौड़ते हुए मन को वह बाँध लेता है। ब्रह्मज्ञानी के द्वारा सब भला होता है और ब्रह्मज्ञान वाला व्यक्ति ही भली प्रकार फलता-फूलता है। ब्रह्मज्ञानी की संगत में सभी पार उतर जाते हैं और हे नानक, सारा संसार ब्रह्मज्ञानी के नाम की महिमा करता रहता है।। ४ ।।

ब्रहम गिआनी कै एकै रंग ॥ ब्रहम गिआनी कै बसै प्रभु संग ॥ ब्रहम गिआनी कै नामु आधारु ॥ ब्रहम गिआनी कै नामु परवारु ॥ ब्रहम गिआनी सदा सद जागत ॥ ब्रहम गिआनी अहंबुधि तिआगत ॥ ब्रहम गिआनी कै मनि परमानंद ॥ ब्रहम गिआनी कै घरि सदा अनंद ॥ ब्रहम गिआनी सुख सहज निवास ॥ नानक ब्रहम गिआनी का नही बिनास ॥५॥

ब्रह्मज्ञानी केवल एक ही रंग में रंगा रहता है और प्रभु उसके अंग-संग बसा रहता है। प्रभु-नाम ही ब्रह्मज्ञानी का आधार है और प्रभु-नाम ही उसका परिवार है। ब्रह्मज्ञानी सदैव जागृत बना रहता है और अंहकार को त्याग देता है। ब्रह्मज्ञानी के मन में परमानन्द और घर-परिवार में सदैव आनन्द बना रहता है। ब्रह्मज्ञानी सहज सुख में निवास करता है और हे नानक, ब्रह्मज्ञानी का कभी भी विनाश नहीं होता।। ५ ।।

ब्रहम गिआनी ब्रहम का बेता ॥ ब्रहम गिआनी एक संगि हेता ॥ ब्रहम गिआनी कै होइ अचिंत ॥ ब्रहम गिआनी का निरमल मंत ॥ ब्रहम गिआनी जिसु करै प्रभु आपि ॥ ब्रहम गिआनी का बड परताप ॥ ब्रहम गिआनी का दरसु बडभागी पाईऐ ॥ ब्रहम गिआनी कउ बलि बलि जाईऐ ॥ ब्रहम गिआनी कउ खोजहि महेसुर ॥ नानक ब्रहम गिआनी आपि परमेसुर ॥६॥

ब्रह्मवेत्ता ही ब्रह्मज्ञानी है जिसका केवल एक प्रभु के साथ ही प्रेम है। ब्रह्मज्ञानी को कोई चिन्ता नहीं होती और उसका उपदेश भी निर्मल होता है। जिसे प्रभु स्वयं बनाता है वही ब्रह्मज्ञानी बनता है और ऐसे ब्रह्मज्ञानी का प्रताप महान है। बड़े भाग्य से ब्रह्मज्ञानी का दर्शन प्राप्त होता है और ऐसे ब्रह्मज्ञानी पर बार-बार बलिहारी हुआ जाता है। महेश्वर भी ब्रह्मज्ञानी को खोजता है और हे नानक, ब्रह्मज्ञानी तो स्वयं ही परमेश्वर है।। ६ ।।

ब्रहम गिआनी की कीमति नाहि ॥ ब्रहम गिआनी कै सगल मन माहि ॥ ब्रहम गिआनी का कउन जानै भेदु ॥ ब्रहम गिआनी कउ सदा अदेसु ॥ ब्रहम गिआनी का कथिआ न जाइ अधाख्यरु ॥ ब्रहम गिआनी सरब का ठाकुरु ॥ ब्रहम गिआनी की मिति कउनु बखानै ॥ ब्रहम गिआनी की गति ब्रहम गिआनी जानै ॥ ब्रहम गिआनी का अंतु न पारु ॥ नानक ब्रहम गिआनी कउ सदा नमसकारु ॥७॥

ब्रह्मज्ञानी का मूल्य नहीं आंका जा सकता। ब्रह्मज्ञानी के हृदय में सब कुछ निवास करता है। ब्रह्मज्ञानी के रहस्य को कौन जान सकता है और ब्रह्मज्ञानी को ही सदैव प्रणाम किया जाता है। ब्रह्मज्ञानी के आधे अक्षर का भी कथन नहीं किया जा सकता क्योंकि ब्रह्मज्ञानी ही सबका स्वामी है। ब्रह्मज्ञानी की सीमा को कौन बता सकता है क्योंकि ब्रह्मज्ञानी का ओर-छोर तो केवल स्वयं ब्रह्मज्ञानी ही जानता है। ब्रह्मज्ञानी का कोई भी अन्त और सीमा नहीं होती। हे नानक, ऐसे ब्रह्मज्ञानी को सदैव बार-बार नमस्कार है।। ७ ।।

ब्रहम गिआनी सभ स्रिसटि का करता ॥ ब्रहम गिआनी सद जीवै नही मरता॥ ब्रहम गिआनी मुकति जुगति जीअ का दाता ॥ ब्रहम गिआनी पूरन पुरखु बिधाता ॥ ब्रहम गिआनी अनाथ का नाथु ॥ ब्रहम गिआनी का सभ ऊपरि हाथु ॥ ब्रहम गिआनी का सगल अकारु ॥ ब्रहम गिआनी आपि निरंकारु ॥ ब्रहम गिआनी की सोभा ब्रहम गिआनी बनी ॥ नानक ब्रहम गिआनी सरब का धनी ॥८॥८॥

ब्रह्मज्ञानी ही सृष्टि का कर्ता है; ब्रह्मज्ञानी ही मरता नहीं अपितु सदैव जीवित रहता है। ब्रह्मज्ञानी ही मुक्ति, युक्ति आदि जीवों को प्रदान करने वाला है और वही पूर्ण पुरुष विधाता है। ब्रह्मज्ञानी ही अनाथों का नाथ है और उसका ही हाथ सबके सिर पर है। ब्रह्मज्ञानी सृष्टि के सब आकारों का स्वामी है। ब्रह्मज्ञानी ही स्वयं निराकार प्रभु है। ब्रह्मज्ञानी की शोभा केवल ब्रह्मज्ञानी के लिए ही उपयुक्त है। हे नानक, ब्रह्मज्ञानी ही सबका मालिक है।। ८ ।। ८ ।।

सलोकु ॥ उरि धारै जो अंतरि नामु ॥ सरब मै पेखै भगवानु ॥ निमख निमख ठाकुर नमसकारै ॥ नानक ओहु अपरसु सगल निसतारै ॥१॥

जो अपने हृदय में प्रभु-नाम को धारण करता है समस्त रचना में परमात्मा को देखता है, प्रति क्षण प्रभु को प्रणाम करता है, हे नानक, विकारो को न छूने वाला ऐसा अपरस व्यक्ति अर्थात साधु सब लोगों का उद्धार करता है।। १ ।।

असटपदी ॥ मिथिआ नाही रसना परस ॥ मन महि प्रीति निरंजन दरस ॥ पर त्रिअ रूपु न पेखै नेत्र ॥ साध की टहल संतसंगि हेत ॥ करन न सुनै काहू की निंदा ॥ सभ ते जानै आपस कउ मंदा ॥ गुर प्रसादि बिखिआ परहरै ॥ मन की बासना मन ते टरै ॥ इंद्री जित पंच दोख ते रहत ॥ नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस ॥१॥

जिसकी जीभ झूठ को स्पर्श नहीं करती, जिसके मन में प्रभु-दर्शन के लिए प्रेम है, जिसके नेत्र पराई स्त्री के रूप पर नहीं गड़ते, जो साधक पुरुषों की सेवा और शान्त पुरुषों

से प्रेम करता है, जिसके कान किसी की निन्दा नहीं सुनते, जो अपने आप को सबसे तुच्छ समझता है, गुरु की कृपा से जो विष रूपी बुराई का त्याग करता है, जो मन की वासनाओं को मन से दूर कर देता और इन्द्रियों जो जीत कर जो पाँचों विकारों से मुक्त बना रहता है, हे नानक, ऐसा अपरस अर्थात किसी में भी लिप्त न होने वाला व्यक्ति करोड़ों में कोई एक ही होता है।। १ ।।

बैसनो सो जिसु ऊपरि सुप्रसंन ॥ बिसन की माइआ ते होइ भिंन ॥ करम करत होवै निहकरम ॥ तिसु बैसनो का निरमल धरम ॥ काहू फल की इछा नही बाछै ॥ केवल भगति कीरतन संगि राचै ॥ मन तन अंतरि सिमरन गोपाल ॥ सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥ आपि द्रिड़ै अवरह नामु जपावै ॥ नानक ओहु बैसनो परम गति पावै ॥२॥

वैष्णव वही है जिस पर प्रभु प्रसन्न हो और जो प्रभु की माया से अलग बना रहता है। जो कर्म करते हुए भी निष्कर्म अर्थात फल की इच्छा न रखने वाला होता है, उसी वैष्णव का कर्त्तव्य कर्म निर्मल होता है। जिसे कोई फल की इच्छा नहीं होती, जो केवल प्रभु-भक्ति और उसके गुणानुवाद में ही लीन रहता है, जो मन, तन से प्रभु का सुमिरन करता रहता है, जो सब पर कृपालु बना रहता है और जो स्वयं प्रभु को याद रखता है तथा अन्यों को भी उसके नाम का जाप कराता है, हे नानक, वही वैष्णव परमगति को प्राप्त होता है।। २ ।।

भगउती भगवंत भगति का रंगु ॥ सगल तिआगै दुसट का संगु ॥ मन ते बिनसै सगला भरमु ॥ करि पूजै सगल पारब्रह्मु ॥ साधसंगि पापा मलु खोवै ॥ तिसु भगउती की मति ऊतम होवै ॥ भगवंत की टहल करै नित नीति ॥ मनु तनु अरपै बिसन परीति ॥ हरि के चरन हिरदै बसावै ॥ नानक ऐसा भगउती भगवंत कउ पावै ॥३॥

भक्ति करने वाला वही है जो प्रभु की भक्ति के रंग में रंगा रहता है। वह दुष्टों की संगत का त्याग करता है। उसके मन से सारे भ्रम मिट जाते हैं। वह सब में परब्रह्म को देखता हुआ केवल प्रभु की ही उपासना करता है। साधसंगत में जो अपने मन की मैल को खो देता है, ऐसे भक्त की मति उत्तम होती है। जो सदैव परमात्मा की सेवा करता है, परमात्मा के प्रेम के लिए तन मन अर्पण कर देता है और प्रभु चरणों को हृदय में बसाता है, हे नानक, ऐसा भक्त भगवान को पा लेता है।। ३ ।।

सो पंडितु जो मनु परबोधै ॥ राम नामु आतम महि सोधै ॥ राम नाम सारु रसु पीवै ॥ उसु पंडित कै उपदेसि जगु जीवै ॥ हरि की कथा हिरदै

बसावै॥ सो पंडितु फिरि जोनि न आवै ॥ बेद पुरान सिम्रिति बूझै मूल ॥ सूखम महि जानै असथूलु ॥ चहु वरना कउ देउपदेसु ॥ नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु ॥४॥

पंडित वही है जो अपने मन को समझाता है। राम-नाम के रहस्य को अपने अन्दर ही खोजता है और प्रभु-नाम के अमृत-रस का पान करता है; उसी पंडित के उपदेश से सारा संसार आध्यात्मिक तौर पर जीवित बना रहता है। जो प्रभु की कथा-वार्ता को हृदय में बसा लेता है वह पंडित फिर योनियों में नहीं आता। जो वेद, पुराण, स्मृति के मूल भाव को समझता है, सूक्ष्म परमात्मा तत्त्व में ही स्थूल संसार की स्थिति जानता है और जो चारों वर्णों को समान भाव से उपदेश देता है, हे नानक, उस पंडित को सदैव प्रणाम है।। ४ ।।

बीज मंत्रु सरब को गिआनु ॥ चहु वरना महि जपै कोऊ नामु ॥ जो जो जपै तिस की गति होइ ॥ साधसंगि पावै जनु कोइ ॥ करि किरपा अंतरि उर धारै ॥ पसु प्रेत मुघद पाथर कउ तारै ॥ सरब रोग का अउखदु नामु ॥ कलिआण रूप मंगल गुण गाम ॥ काहू जुगति कितै न पाईऐ धरमि ॥ नानक तिसु मिलै जिसु लिखिआ धुरि करमि ॥५॥

प्रभु-नाम के मन्त्र का ज्ञान बीज रूप में सब को दिया गया है ताकि वर्णों में जो चाहे प्रभु-नाम का जाप करे। जो प्रभु-नाम का सुमिरन करता है वही मुक्त हो जाता है। कोई बिरला ही साधसंगत में इस गति को प्राप्त होता है। प्रभु कृपा करके अन्तर्मन में स्थित होता अैर फिर पशु, प्रेत, गँवार, पत्थरों को भी पार कर देता है। प्रभु का नाम ही सभी रोगों की औषधि है और प्रभु का गुणानुवाद ही परम मंगल और मुक्ति का स्वरूप है। अन्य किसी भी युक्ति और किसी भी कर्म द्वारा इसे नहीं पाया जा सकता। हे नानक, यह उसी को मिलता है जिसके भाग्य में शुरू से ही लिखा होता है।। ५ ।।

जिस कै मनि पारब्रहम का निवासु ॥ तिस का नामु सति रामदासु ॥ आतम रामु तिसु नदरी आइआ ॥ दास दसंतण भाइ तिनि पाइआ ॥ सदा निकटि निकटि हरि जानु ॥ सो दासु दरगह परवानु ॥ अपुने दास कउ आपि किरपा करै ॥ तिसु दास कउ सभ सोझी परै ॥ सगल संगि आतम उदासु॥ ऐसी जुगति नानक रामदासु ॥६॥

जिसके चित्त में परमात्मा का निवास बन गया है, उसी का नाम 'स्वामी का सच्चा सेवक' होता है। उसे सर्वत्र व्याप्त परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं और वह दासों का दास बनकर इसे पा लेता है। जो सदैव प्रभु को प्रत्यक्ष एवं अंग-संग ही जानता है वही सेवक प्रभु-दरबार में स्वीकृत होता है। अपने सेवक पर प्रभु स्वयं कृपा करता है और ऐसे सेवक

को सब कुछ समझ में आने लगता है। हे नानक, प्रभु के सेवक का जीवन-ढंग इस प्रकार का होता है कि वह सब के संग बना रह कर भी अन्तर्मन से निर्लिप्त बना रहता है।। ६ ।।

प्रभ की आगिआ आतम हितावै ॥ जीवन मुकति सोऊ कहावै ॥ तैसा हरखु तैसा उसु सोगु ॥ सदा अनंदु तह नही बिओगु ॥ तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी ॥ तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी ॥ तैसा मानु तैसा अभिमानु ॥ तैसा रंकु तैसा राजानु ॥ जो वरताए साई जुगति ॥ नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति ॥७॥

जो प्रभु की आज्ञा को आत्मा से प्यार करता है वही जीवन-मुक्त कहलाता है। उसके लिए जैसा हर्ष है वैसा ही शोक भी है और सदा आनन्दित बना रहकर वह परमात्मा से बिछुड़ता नहीं। सोना और मिट्टी उसके लिए एक समान हैं और अमृत और विष भी उसके लिए एक जैसा ही होता है। मान और अपमान, दोनों उसके लिए एक जैसे होते हैं तथा राजा और रंक दोनों ही उसके लिए बराबर होते हैं। हे नानक, ऐसे व्यक्ति को जीवन मुक्त कहा जाता है जो प्रभु के किए हुए को जीवन के लिए अच्छा व्यवहार मानता है।। ७ ।।

पारब्रहम के सगले ठाउ ॥ जितु जितु घरि राखै तैसा तिन नाउ ॥ आपे करन करावन जोगु ॥ प्रभ भावै सोई फुनि होगु ॥ पसरिओ आपि होइ अनत तरंग॥ लखे न जाहि पारब्रहम के रंग ॥ जैसी मति देइ तैसा परगास ॥ पारब्रहम करता अबिनास ॥ सदा सदा सदा दइआल ॥ सिमरि सिमरि नानक भए निहाल ॥८॥६॥

सभी स्थान परमात्मा के हैं और जिस-जिस स्थान पर वह जीवों को रखता है वैसे-वैसे ही उनके नाम हो जाते हैं। परमात्मा ही सब कुछ करने कराने के योग्य है और प्रभु जो चाहता है अन्ततः वही होता है। वह अनेक तरंगों के रूप में फैला हुआ है और उस परमात्मा के रंगों को जाना नहीं जा सकता। जीव को प्रभु जैसी बुद्धि देता है कार्यों के रूप में वैसा ही प्रकाश जीव से बाहर निकलता है। वह परमात्मा ही कर्ता एवं अविनाशी हैं। वह सदा से ही दयालु है और नानक उसी का सुमिरन कर-कर के धन्य हो गया है।। ८।। ६ ।।

सलोकु ॥ उसतति करहि अनेक जन अंतु न पारावार ॥ नानक रचना प्रभि रची बहु बिधि अनिक प्रकार ॥१॥

अनेकों व्यक्ति उसकी स्तुति करते हैं परन्तु उसका न तो कोई अन्त है और न ही कोई ओर-छोर। हे नानक, अनेकों विधियों से अनेकों प्रकार की सृष्टि रचना प्रभु ने की है।। १ ।।

असटपदी ॥ कई कोटि होए पूजारी ॥ कई कोटि आचार बिउहारी ॥ कई कोटि भए तीरथ वासी ॥ कई कोटि बन भ्रमहि उदासी ॥ कई कोटि बेद के स्रोते ॥ कई कोटि तपीसुर होते ॥ कई कोटि आतम धिआनु धारहि ॥ कई कोटि कबि काबि बीचारहि ॥ कई कोटि नवतन नाम धिआवहि ॥ नानक करते का अंतु न पावहि ॥१॥

करोड़ों ही पूजा करने वाले हुए हैं और करोड़ों ही धार्मिक तथा व्यवहारिक कार्य करने वाले हैं। अनेकों करोड़ों तीर्थ-वासी और वनों में भ्रमण करने वाले बैरागी हैं। करोड़ों वेदों को सुनने वाले और करोड़ों श्रेष्ठ तप करने वाले हैं। करोड़ों मन में उसका ध्यान लगाने वाले हैं और करोड़ों कविगण काव्य के माध्यम से उसका चिन्तन करते हैं। करोड़ों नए-नए नामों से उसका ध्यान करते हैं परन्तु हे नानक, उस कर्ता प्रभु की सीमा को नहीं जान पाते हैं।। १ ।।

कई कोटि भए अभिमानी ॥ कई कोटि अंध अगिआनी ॥ कई कोटि किरपन कठोर ॥ कई कोटि अभिग आतम निकोर ॥ कई कोटि पर दरब कउ हिरहि ॥ कई कोटि पर दूखना करहि ॥ कई कोटि माइआ स्रम माहि॥ कई कोटि परदेस भ्रमाहि ॥ जितु जितु लावहु तितु तितु लगना ॥ नानक करते की जानै करता रचना ॥२॥

करोड़ों ही अभिमानी, नासमझ अज्ञानी हैं, करोड़ों ही पत्थर-दिल, कंजूस और प्रभु-नाम से अनभिज्ञ एवं कुछ भी प्राप्त न करने वाले हैं। करोड़ों अन्य लोगों का द्रव्य चुराने वाले हैं और करोड़ों ही दूसरों के दोष निकालने वाले हैं। करोड़ों ही धन के लिए मेहनत करने वाले हैं और करोड़ों ही दूसरे देशों में भ्रमण करने वाले हैं। हे प्रभु, जहाँ-जहाँ, तू लगाता है वहीं-वहीं लोग लगे रहते हैं। हे नानक, वह कर्ता-प्रभु ही केवल अपनी रचना को जानता है।। २ ।।

कई कोटि सिध जती जोगी ॥ कई कोटि राजे रस भोगी ॥ कई कोटि पंखी सरप उपाए ॥ कई कोटि पाथर बिरख निपजाए ॥ कई कोटि पवण पाणी बैसंतर ॥ कई कोटि देस भू मंडल ॥ कई कोटि ससीअर सूर नख्यत्र ॥ कई कोटि देव दानव इंद्र सिरि छत्र ॥ सगल समग्री अपनै सूति धारै ॥ नानक जिसु जिसु भावै तिसु तिसु निसतारै ॥३॥

करोड़ों की सिद्ध, यति, योगी, राजा और रसों को भोगने वाले हैं। करोड़ों ही पक्षी, सर्प उत्पन्न किए गए हैं और करोड़ों प्रकार के पत्थर, वृक्ष आदि पैदा किए गए हैं। करोड़ों प्रकार के वायु, जल, अग्नियाँ, देश और भू-मण्डल हैं। कितने ही करोड़ चन्द्रमा, सूर्य और

नक्षत्र हैं और करोड़ों ही देव दानव और छत्रधारी इन्द्र हैं। प्रभु ने इस सारी रचना को अपने एक सूत्र में धारण कर रखा है और हे नानक, जिस पर वह प्रसन्न होता है उसी का उद्धार करता है।। ३ ।।

कई कोटि राजस तामस सातक ॥ कई कोटि बेद पुरान सिम्रिति अरु सासत ॥ कई कोटि कीए रतन समुद ॥ कई कोटि नाना प्रकार जंत ॥ कई कोटि कीए चिर जीवे ॥ कई कोटि गिरी मेर सुवरन थीवे ॥ कई कोटि जख्य किंनर पिसाच ॥ कई कोटि भूत प्रेत सूकर म्रिगाच ॥ सभ ते नेरै सभहू ते दूरि ॥ नानक आपि अलिपतु रहिआ भरपूरि ॥४॥

करोड़ों ही रजोगुणी, तमोगुणी एवं सात्विक व्यक्ति हैं। करोड़ों ही वेद (ज्ञान), पुराण, स्मृति और शास्त्र हैं। समुद्रों में करोड़ों प्रकार के रत्न हैं और करोड़ों ही छोटे बड़े पर्वत सोने के बने हुए हैं। करोड़ों ही यक्ष, किन्नर और पिशाच हैं और करोड़ों ही भूत, प्रेत, सुअर और शेर हैं। प्रभु सब के पास ही और सबसे परे भी है। हे नानक, वह अलिप्त रहकर सब में व्याप्त है।। ४ ।।

कई कोटि पाताल के वासी ॥ कई कोटि नरक सुरग निवासी ॥ कई कोटि जनमहि जीवहि मरहि ॥ कई कोटि बहु जोनी फिरहि ॥ कई कोटि बैठत ही खाहि ॥ कई कोटि घालहि थकि पाहि ॥ कई कोटि कीए धनवंत ॥ कई कोटि माइआ महि चिंत ॥ जह जह भाणा तह तह राखे ॥ नानक सभु किछु प्रभ कै हाथे ॥५॥

करोड़ों ही पाताल के और नर्क-स्वर्ग के निवासी हैं। करोड़ों ही जन्मते, जीते, मरते और अनेकों योनियों में भटकते रहते हैं। करोड़ों ही खाली बैठे खाते रहते हैं और करोड़ों ऐसे भी है जो परिश्रम करते हुए थक जाते हैं। करोड़ों ही उसने धनवान बनाए हैं और करोड़ों ही धन-दौलत की चिन्ता में लीन बने हुए हैं। हे नानक, सब कुछ प्रभु के हाथ में हैं और वह जहाँ जिसे चाहता है उसे वही रखता है।। ५ ।।

कई कोटि भए बैरागी ॥ राम नाम संगि तिनि लिव लागी ॥ कई कोटि प्रभ कउ खोजंते ॥ आतम महि पारब्रह्मु लहंते ॥ कई कोटि दरसन प्रभ पिआस॥ तिन कउ मिलिओ प्रभु अबिनास ॥ कई कोटि मागहि सतसंगु॥ पारब्रहम तिन लागा रंगु ॥ जिन कउ होए आपि सुप्रसंन ॥ नानक ते जन सदा धनि धंनि ॥६॥

करोड़ों ही वैराग्यवान हो गुजरे हैं जिनकी लौ प्रभु-नाम के साथ लगी रही है। करोड़ों ही प्रभु को खोज रहे हैं और अपनी आत्मा में ही परब्रह्म का दर्शन कर लेते हैं। करोड़ों

को ही प्रभु-दर्शन की प्यास बनी हुई है और ऐसे ही लोगों को वह अविनाशी प्रभु मिल जाता है। करोड़ों ही सद्संगत को चाहते हैं और वे परब्रह्म के रंग में रंग जाते हैं। हे नानक, ऐसे व्यक्ति सदैव धन्य है जिन पर प्रभु स्वयं प्रसन्न होता है।। ६ ।।

कई कोटि खाणी अरु खंड ॥ कई कोटि अकास ब्रहमंड ॥ कई कोटि होए अवतार ॥ कई जुगति कीनो बिसथार ॥ कई बार पसरिओ पासार ॥ सदा सदा इकु एकंकार ॥ कई कोटि कीने बहु भाति ॥ प्रभ ते होए प्रभ माहि समाति ॥ ता का अंतु न जानै कोइ ॥ आपे आपि नानक प्रभु सोइ ॥७॥

करोड़ों ही जीवन के स्रोत और महाद्वीप है, करोड़ों ही आकाश और ब्रह्माण्ड हैं, करोड़ों ही तथाकथित अवतार हो चुके हैं और अनेकों ढंगों से प्रभु ने अपना विस्तार किया हुआ है। यह फैलाव अनेकों बार फैलाया गया है परन्तु वह प्रभु सदैव एक रस ही बना रहता है। अनेकों प्रकार के करोड़ों जीव पैदा किए गए हैं जो प्रभु से ही पैदा होते हैं और प्रभु में ही लीन हो जाते हैं। हे नानक, वह प्रभु ही स्वयं सब कुछ है और उसकी सीमा को कोई नहीं जान सकता।। ७ ।।

कई कोटि पारब्रहम के दास ॥ तिन होवत आतम परगास ॥ कई कोटि तत के बेते ॥ सदा निहारहि एको नेत्रे ॥ कई कोटि नाम रसु पीवहि ॥ अमर भए सद सद ही जीवहि ॥ कई कोटि नाम गुन गावहि ॥ आतम रसि सुखि सहजि समावहि ॥ अपुने जन कउ सासि सासि समारे ॥ नानक ओइ परमेसुर के पिआरे ॥८॥१०॥

करोड़ों ही परमात्मा के सेवक हैं जिनकी आत्मा प्रकाशित होती है। करोड़ों ही ऐसे तत्त्ववेत्ता हैं जो सदैव अपनी आँखों से केवल एक ही प्रभु को देखते हैं। करोड़ों ही प्रभु-नाम-रस का पान करते हुए अमर हो जाते हैं और अच्छे कार्यों के कारण सदैव जीवित बने रहते हैं। करोड़ों ही प्रभु-नाम का गुणानुवाद करते हुए आत्म-रस के माध्यम से सहज-सुख में लीन बने रहते हैं। प्रभु अपने जिन सेवकों को अपनी हर श्वास के साथ याद रखता है, हे नानक, वे ही परमेश्वर के प्यारे सेवक हैं।। ८।। १०।।

सलोकु ॥ करण कारण प्रभु एकु है दूसर नाही कोइ ॥ नानक तिसु बलिहारणै जलि थलि महीअलि सोइ ॥१॥

करने-कराने वाला केवल एक प्रभु ही है अन्य कोई नहीं है। नानक उस पर बलिहारी जाता है जो जल, स्थल एवं पाताल अर्थात् सर्वत्र व्याप्त है।। १ ।।

असटपदी ॥ करन करावन करनै जोगु ॥ जो तिसु भावै सोई होगु ॥ खिन

महि थापि उथापनहारा ॥ अंतु नही किछु पारावारा ॥ हुकमे धारि अधर रहावै ॥ हुकमे उपजै हुकमि समावै ॥ हुकमे ऊच नीच बिउहार ॥ हुकमे अनिक रंग परकार ॥ करि करि देखै अपनी वडिआई ॥ नानक सभ महि रहिआ समाई ॥१॥

वह प्रभु ही करने-कराने वाला और सब कुछ कर लेने में समर्थ है। जो उसे अच्छा लगता है वही होता है। वह क्षण भर में ही स्थापना एवं विध्वंस कर देने वाला है। उसकी कोई सीमा और ओर-छोर नहीं है।। हुकुम में ही उसने सृष्टि को धारण कर रखा है और इसे बिना किसी आश्रय के स्थित कर रखा है। हुकुम में ही सब कुछ पैदा होता है और हुकुम में ही सब लीन हो जाता है। भला-बुरा व्यवहार भी हुकुम में ही होता है और हुकुम के अन्तर्गत ही रचना के अनेकों रंग और प्रकार हैं। वह अपनी विशालता की रचना करके उसे देखता है और हे नानक, वह सब में व्याप्त रहता है।। १।।

प्रभ भावै मानुख गति पावै ॥ प्रभ भावै ता पाथर तरावै ॥ प्रभ भावै बिनु सास ते राखै ॥ प्रभ भावै ता हरि गुण भाखै ॥ प्रभ भावै ता पतित उधारै॥ आपि करै आपन बीचारै ॥ दुहा सिरिआ का आपि सुआमी ॥ खेलै बिगसै अंतरजामी ॥ जो भावै सो कार करावै ॥ नानक द्रिसटी अवरु न आवै ॥२॥

यदि प्रभु चाहे तो व्यक्ति मुक्ति पा लेता है और प्रभु चाहे तो पत्थरों को भी तैरा देता है। प्रभु चाहे तो बिना श्वास के भी जीव को बचाए रखता है और प्रभु चाहे तो व्यक्ति प्रभु के यश का उच्चारण करता है। प्रभु चाहे तो पतितों का उद्धार कर देता है और ऐसा करके स्वयं ही उनके बारे में चिन्तन करता है। इस लोक और परलोक अर्थात दोनों का स्वामी वह स्वयं ही है और वह अन्तर्यामी प्रभु अपना खेल खेलता हुआ प्रसन्न बना रहता है। जो चाहता है वह वही काम करवा लेता है और हे नानक, उसके अतिरिक्त अन्य कोई दिखाई नहीं देता।। २ ।।

कहु मानुख ते किआ होइ आवै ॥ जो तिसु भावै सोई करावै ॥ इस कै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ ॥ जो तिसु भावै सोई करेइ ॥ अनजानत बिखिआ महि रचै ॥ जे जानत आपन आप बचै ॥ भरमे भूला दह दिसि धावै ॥ निमख माहि चारि कुंट फिरि आवै ॥ करि किरपा जिसु अपनी भगति देइ॥ नानक ते जन नामि मिलेइ ॥३॥

भला बताओ, मनुष्य क्या कर सकता है? जो प्रभु को अच्छा लगता है वह वही करवाता है। जीव के हाथ में यदि कुछ होता तो वह सब कुछ पा लेता परन्तु जो उस प्रभु को अच्छा लगता है केवल वही किया जाता है। अनजान व्यक्ति-विकारों में लीन बना रहता

है परन्तु यदि वह प्रभु को जान जाता है तो वह अपने आप को बचा लेता है। भ्रमों में भटकता हुआ मन दसों दिशाओं में दौड़ता रहता है और क्षण भर में चारों दिशाओं का चक्कर लगा लेता है। हे नानक, वही सेवक प्रभु-नाम में लीन हो जाता है जिस पर कृपा करके प्रभु उसे अपनी भक्ति प्रदान करता है।। ३ ।।

खिन महि नीच कीट कउ राज ॥ पारब्रहम गरीब निवाज ॥ जा का द्रिसटि कछू न आवै ॥ तिसु ततकाल दह दिस प्रगटावै ॥ जा कउ अपुनी करै बखसीस ॥ ता का लेखा न गनै जगदीस ॥ जीउ पिंडु सभ तिस की रासि॥ घटि घटि पूरन ब्रहम प्रगास ॥ अपनी बणत आपि बनाई ॥ नानक जीवै देखि बडाई ॥४॥

क्षण भर में वह एक तुच्छ कीड़े को राजा बना सकता है क्योंकि परमात्मा वास्तव में गरीब को सम्मान देने वाला है। जो बिल्कुल किसी की नज़र में ही नहीं होता, प्रभु उसे क्षण भर में ही दसों दिशाओं में प्रसिद्ध कर देता है। जिस पर वह अपनी कृपा कर देता है संसार का स्वामी उससे लेखा-जोखा नहीं पूछता। प्राण और शरीर सब उस प्रभु की ही पूँजी हैं और प्रत्येक शरीर में प्रभु का पूर्ण प्रकाश निहित है। अपनी रचना प्रभु ने स्वयं की है और नानक उसी के बड़प्पन को देखकर जीवित बना रहता है।। ४ ।।

इस का बलु नाही इसु हाथ ॥ करन करावन सरब को नाथ ॥ आगिआकारी बपुरा जीउ ॥ जो तिसु भावै सोई फुनि थीउ ॥ कबहू ऊच नीच महि बसै॥ कबहू सोग हरख रंगि हसै ॥ कबहू निंद चिंद बिउहार ॥ कबहू ऊभ अकास पइआल ॥ कबहू बेता ब्रहम बीचार ॥ नानक आपि मिलावणहार ॥५॥

जीव की शक्ति जीव के अपने हाथ में नहीं है क्योंकि करने कराने वाला सबका नाथ तो प्रभु ही है। यह बेचारा जीव तो केवल आज्ञा का पालन करता है क्योंकि जो प्रभु को भाता है अन्ततः वही होता है। व्यक्ति कभी ऊँचे और कभी तुच्छ भाव में रहता है; कभी उत्साहित होकर आसमान में उड़ता है और हतोत्साहित होकर पाताल में धंस जाता है। कभी वह ब्रह्मवेता बनकर विचार करता है परन्तु हे नानक, वह प्रभु ही जीव को अपने से मिला लेने वाला है।। ५।।

कबहू निरति करै बहु भाति ॥ कबहू सोइ रहै दिनु राति ॥ कबहू महा क्रोध बिकराल ॥ कबहूं सरब की होत रवाल ॥ कबहू होइ बहै बड राजा ॥ कबहु भेखारी नीच का साजा ॥ कबहू अपकीरति महि आवै ॥ कबहू भला भला कहावै ॥ जिउ प्रभु राखै तिव ही रहै ॥ गुर प्रसादि नानक सचु कहै ॥६॥

कभी वह जीव स्वार्थ के लिए अनेकों प्रकार के नाच नाचता है और कभी यह

दिन-रात अज्ञानी बनकर सोया ही रहता है। कभी यह विकराल रूप से महाक्रोधी बन जाता है और कभी यह सब की चरण-धूलि हो जाता है। कभी यह बड़ा राजा बन जाता है और कभी भिखारी और तुच्छ व्यक्तियों जैसी पोशाक पहन लेता है। कभी इसका अपयश होता है और कभी इसको भला भला कहा जाता है। गुरु की कृपा से नानक सत्य कह रहा है कि जिस तरह प्रभु जीव को रखता है वह वैसे ही रहता है।। ६ ।।

कबहू होइ पंडितु करे बख्यानु ॥ कबहू मोनिधारी लावै धिआनु ॥ कबहू तट तीरथ इसनान ॥ कबहू सिध साधिक मुखि गिआन ॥ कबहू कीट हसति पतंग होइ जीआ ॥ अनिक जोनि भरमै भरमीआ ॥ नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै ॥ जिउ प्रभ भावै तिवै नचावै ॥ जो तिसु भावै सोई होइ ॥ नानक दूजा अवरु न कोइ ॥७॥

कभी व्यक्ति विद्वान बनकर व्याख्यान देता है और कभी मौन धारण कर ध्यान लगाता है। कभी यह नदी के किनारों पर तीर्थ स्नान करता है और कभी सिद्ध साधक के रूप में अपने मुँह से ज्ञान की बातें करता है। कभी यह जीव कीड़ा, हाथी और पतंगा बनके अनेकों योनियों में लगातार भटकता रहता है। जिस प्रकार बहुरूपिया अनेकों स्वांग दिखाता है उसी प्रकार प्रभु जैसा चाहता है इसे नचाता रहता है। जो इसे अच्छा लगता है वही होता है। हे नानक, प्रभु के सिवाय अन्य दूसरा कोई नहीं है।। ७ ।।

कबहू साधसंगति इहु पावै ॥ उसु असथान ते बहुरि न आवै ॥ अंतरि होइ गिआन परगासु ॥ उसु असथान का नही बिनासु ॥ मन तन नामि रते इक रंगि ॥ सदा बसहि पारब्रहम कै संगि ॥ जिउ जल महि जलु आइ खटाना॥ तिउ जोती संगि जोति समाना ॥ मिटि गए गवन पाए बिस्राम ॥ नानक प्रभ कै सद कुरबान ॥८॥११॥

कभी व्यक्ति साधसंगत को प्राप्त कर लेता है परन्तु उस स्थान पर दुबारा नहीं आता। जब अन्तर्मन में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है तो उस अवस्था का कभी विनाश नहीं होता। अब उसका मन, तन प्रभु के एक नाम के रंग में लीन हो जाता है तो वह सदैव परब्रह्म के साथ बसा रहता है। जिस प्रकार पानी पानी में मिल जाता है उसी प्रकार जीव की ज्योति उस परम ज्योति में लीन हो जाती है। जीव के आवागमन मिट जाते हैं और वह विश्राम की अवस्था में ठहर जाता है। नानक ऐसे परम ज्योति प्रभु पर सदैव बलिहारी जाता है।। ८ ।। ११ ।।

सलोकु ॥ सुखी बसै मसकीनीआ आपु निवारि तले ॥ बडे बडे अहंकारीआ नानक गरबि गले ॥१॥

अपने अभिमान को त्याग कर विनम्र बना हुआ व्यक्ति सुखपूर्वक बसता है। हे नानक, बड़े-बड़े अहंकारी व्यक्ति अपने अभिमान में ही मर खप गए हैं।। १ ।।

असटपदी ॥ जिस कै अंतरि राज अभिमानु ॥ सो नरकपाती होवत सुआनु॥ जो जानै मै जोबनवंतु ॥ सो होवत बिसटा का जंतु ॥ आपस कउ करमवंतु कहावै ॥ जनमि मरै बहु जोनि भ्रमावै ॥ धन भूमि का जो करै गुमानु ॥ सो मूरखु अंधा अगिआनु ॥ करि किरपा जिस कै हिरदै गरीबी बसावै ॥ नानक ईहा मुकतु आगै सुखु पावै ॥१॥

जिसके मन में राजा होने का अभिमान है वह नर्कगामी व्यक्ति कुत्ते की तरह हो जाता है। जो अपने आप को यौवनपूर्ण मानता है वह गन्दगी का कीड़ा ही होता है। जो अपने आप को अच्छे कर्मों वाला कहलवाता है वह जन्मता-मरता योनियों में भटकता रहता है। जो धन और भूमि का अभिमान करता है वह मूर्ख अन्धा और अज्ञानी है। हे नानक, प्रभु कृपा करके जिसके हृदय में विनम्रता का भाव बसा देता है वह इस लोक में ही मुक्त हो जाता है और परलोक में भी सुख पाता है।। १ ।।

धनवंता होइ करि गरबावै ॥ त्रिण समानि कछु संगि न जावै ॥ बहु लसकर मानुख ऊपरि करे आस ॥ पल भीतरि ता का होइ बिनास ॥ सभ ते आप जानै बलवंतु ॥ खिन महि होइ जाइ भसमंतु ॥ किसै न बदै आपि अहंकारी ॥ धरम राइ तिसु करे खुआरी ॥ गुर प्रसादि जा का मिटै अभिमानु ॥ सो जनु नानक दरगह परवानु ॥२॥

व्यक्ति धनवान होकर गर्व करता है परन्तु तिनका भर भी यहाँ से उसके साथ नहीं जाता। जो अपनी अधिक सेना और व्यक्तियों पर आशाएँ बाँधे रहता है वह पल भर में ही विनष्ट हो जाता है। अपने को सबसे ज्यादा बलवान मानने वाला क्षण भर में ही भस्म हो जाता है। अहंकारी व्यक्ति किसी को भी कुछ नहीं समझता और धर्मराज उसको ख्वार करता है। हे नानक, गुरु की कृपा से जिसका अभिमान मिट जाए वही प्रभु के समक्ष स्वीकृत होता है।। २ ।।

कोटि करम करै हउ धारे ॥ स्रमु पावै सगले बिरथारे ॥ अनिक तपसिआ करे अहंकार ॥ नरक सुरग फिरि फिरि अवतार ॥ अनिक जतन करि आतम नही द्रवै ॥ हरि दरगह कहु कैसे गवै ॥ आपस कउ जो भला कहावै ॥ तिसहि भलाई निकटि न आवै ॥ सरब की रेन जा का मनु होइ ॥ कहु नानक ता की निरमल सोइ ॥३॥

करोड़ों अच्छे काम करता हुआ भी व्यक्ति यदि अभिमान करता है तो उसकी

समस्त मेहनत व्यर्थ ही जाती है। अहंकार में जो अनेकों यत्नों के बावजूद द्रवित नहीं होता वह भला प्रभु-दरबार में कैसे जा सकता है। जो अपने आप को भला कहलवाता है वास्तव में भलाई उसके निकट भी नहीं आती। हे नानक, जिसका मन सब की चरण-धूलि बन गया है उसकी कीर्ति पवित्र होती है।। ३ ।।

जब लगु जानै मुझ ते कछु होइ ॥ तब इस कउ सुखु नाही कोइ ॥ जब इह जानै मै किछु करता ॥ तब लगु गरभ जोनि महि फिरता ॥ जब धारै कोऊ बैरी मीतु ॥ तब लगु निहचलु नाही चीतु ॥ जब लगु मोह मगन संगि माइ॥ तब लगु धरम राइ देइ सजाइ ॥ प्रभ किरपा ते बंधन तूटै ॥ गुर प्रसादि नानक हउ छूटै ॥४॥

जब तक व्यक्ति मानता है कि मैं कुछ कर सकता हूँ तब तक उसे कोई सुख नहीं मिलता। जब तक यह अपने को कर्ता मानता है तब तक यह योनियों में भटकता रहता है। जब तक यह किसी को शत्रु और मित्र मानता रहता है तब तक इसका मन स्थिर नहीं होता। जब तक यह धन के मोह में मग्न रहता है तब तक धर्मराज (इसके आवागमन के कारण) इसे सजा देता रहता है। प्रभु की कृपा से ही व्यक्ति के बन्धन टूटते हैं और हे नानक, गुरु की कृपा से ही व्यक्ति का अहंकार छूटता है।। ४ ।।

सहस खटे लख कउ उठि धावै ॥ त्रिपति न आवै माइआ पाछै पावै ॥ अनिक भोग बिखिआ के करै ॥ नह त्रिपतावै खपि खपि मरै ॥ बिना संतोख नही कोऊ राजै ॥ सुपन मनोरथ ब्रिथे सभ काजै ॥ नाम रंगि सरब सुखु होइ ॥ बडभागी किसै परापति होइ ॥ करन करावन आपे आपि ॥ सदा सदा नानक हरि जापि ॥५॥

हजारों कमाकर व्यक्ति लाखों के लिए दौड़ता है। धन के पीछे भागने से वह कभी तृप्त नहीं होता। विषयों के अनेकों प्रकार के भोग करने पर भी वह तृप्त नहीं होता और व्यर्थ मेहनत करता हुआ मर जाता है। संतोष किए बिना कभी कोई तृप्त नहीं हो सका है क्योंकि स्वप्न में किए हुए कामों की तरह उसके सारे कार्य व्यर्थ ही होते हैं। नाम के रंग में सभी सुख प्राप्त होते हैं और किसी भाग्यशाली को ही नाम हासिल होता है। प्रभु स्वयं ही सब करने कराने वाला है इसलिए हे नानक, सदा प्रभु का सुमिरन करता रह।। ५।।

करन करावन करनैहारु ॥ इस कै हाथि कहा बीचारु ॥ जैसी द्रिसटि करे तैसा होइ ॥ आपे आपि आपि प्रभु सोइ ॥ जो किछु कीनो सु अपनै रंगि ॥ सभ ते दूरि सभहू कै संगि ॥ बूझै देखै करै बिबेक ॥ आपहि एक आपहि अनेक॥ मरै न बिनसै आवै न जाइ ॥ नानक सद ही रहिआ समाइ ॥ ६॥

कर्ता-प्रभु ही सब कुछ करने कराने वाला है। व्यक्ति के हाथ में तो कुछ भी करने-विचारने योग्य नहीं है। प्रभु जैसी दृष्टि करता है व्यक्ति वैसा ही हो जाता है क्योंकि वह प्रभु स्वयं ही सब कुछ है। उसने जो कुछ भी किया है अपनी रज़ा के हिसाब से ही किया है। वह सबसे दूर भी है और सबके साथ भी है। वह देखता है, बूझता है और विवेकपूर्ण न्याय भी करता है। वह आप ही एक और अनेक भी है। वह न मरता है, न आता जाता है और न ही विनष्ट होता है। हे नानक, वह सदा ही सब में समाया रहता है।। ६ ।।

आपि उपदेसै समझै आपि ॥ आपे रचिआ सभ कै साथि ॥ आपि कीनो आपन बिसथारु ॥ सभु कछु उस का ओहु करनैहारु ॥ उस ते भिंन कहहु किछु होइ ॥ थान थनंतरि एकै सोइ ॥ अपुने चलित आपि करणैहार ॥ कउतक करै रंग आपार ॥ मन महि आपि मन अपुने माहि ॥ नानक कीमति कहनु न जाइ ॥७॥

वह स्वयं ही समझता है और शिक्षा भी देता है।। वह प्रभु स्वयं ही सबमें रमा हुआ है। अपना विस्तार उसने स्वयं ही किया है क्योंकि सब कुछ उसी का ही है और वह ही कर्ता है। बताओ भला उससे अलग क्या हो सकता है। स्थानों एवं स्थानांतरों में वह एक ही प्रभु व्याप्त है। अपने कौतुकों को करने वाला वह आप ही है, और उसके ये कौतुक अनन्त प्रकार के हैं। सब मनों में वही प्रभु है और सब मन उस प्रभु में ही हैं। हे नानक, उसका मूल्य नहीं आंका जा सकता।। ७ ।।

सति सति सति प्रभु सुआमी ॥ गुर परसादि किनै वखिआनी ॥ सचु सचु सचु सभु कीना ॥ कोटि मधे किनै बिरलै चीना ॥ भला भला भला तेरा रूप ॥ अति सुंदर अपार अनूप ॥ निरमल निरमल निरमल तेरी बाणी ॥ घटि घटि सुनी स्रवन बख्याणी ॥ पवित्र पवित्र पवित्र पुनीत ॥ नामु जपै नानक मनि प्रीति ॥८॥१२॥

प्रभु सत्य है सत्य है और सत्य ही है। गुरु की कृपा से कोई बिरला ही उसका बखान कर सकता है। उस सत्य ने सब कुछ सत्य ही रचा है और करोड़ों में से कोई बिरला ही उसको पहचान पाता है। हे प्रभु, तेरा रूप भला, अत्यन्त सुन्दर, अपार एवं अनुपम है। तेरी वाणी निर्मल, पवित्र एवं शुद्ध है जिसे प्रत्येक हृदय, कानों से सुनता है और उसका उच्चारण करता है। हे प्रभु, तू पवित्र, पवित्र एवं पुनीत है और मन से प्रीतिपूर्वक नानक तेरे नाम का सुमिरन करता है।। ८ ।। १२ ।।

सलोकु ॥ संत सरनि जो जनु परै सो जनु उधरनहार ॥ संत की निंदा नानका बहुरि बहुरि अवतार ॥१॥

जो व्यक्ति सन्त (सब प्रकार से शान्त हो चुके) की शरण में आता है वह पार उतर जाता है। हे नानक, सन्त पुरुषों की निन्दा करने वाला जन्मता मरता रहता है।। १ ।।

असटपदी ॥ संत कै दूखनि आरजा घटै ॥ संत कै दूखनि जम ते नही छुटै॥ संत कै दूखनि सुखु सभु जाइ ॥ संत कै दूखनि नरक महि पाइ ॥ संत कै दूखनि मति होइ मलीन ॥ संत कै दूखनि सोभा ते हीन ॥ संत के हते कउ रखै न कोइ ॥ संत कै दूखनि थान भ्रसटु होइ ॥ संत क्रिपाल क्रिपा जे करै॥ नानक संतसंगि निंदकु भी तरै ॥१॥

सन्तों के दोष निकालने पर आयु घटती है। सन्त की निन्दा से यम से नहीं बचा जा सकता। सन्त की निन्दा से सभी सुख भाग जाते हैं। सन्त की निन्दा से जीव नर्क में जाता है। सन्त की निन्दा से बुद्धि मलीन हो जाती है। सन्त की निन्दा से व्यक्ति अपनी शोभा गँवा लेता है। सन्त द्वारा तिरस्कृत को कोई भी बचाता नहीं है। सन्त की निन्दा से स्थान अपवित्र हो जाता है। हे नानक, कृपालु सन्त यदि कृपा करे तो सन्त के साथ निन्दक भी पार उतर जाता है।। १ ।।

संत के दूखन ते मुखु भवै ॥ संतन कै दूखनि काग जिउ लवै ॥ संतन कै दूखनि सरप जोनि पाइ ॥ संत कै दूखनि त्रिगद जोनि किरमाइ ॥ संतन कै दूखनि त्रिसना महि जलै ॥ संत कै दूखनि सभु को छलै ॥ संत कै दूखनि तेजु सभु जाइ ॥ संत कै दूखनि नीचु नीचाइ ॥ संत दोखी का थाउ को नाहि ॥ नानक संत भावै ता ओइ भी गति पाहि ॥२॥

सन्त की निन्दा से मुख विकृत हो जाता है। सन्त का निन्दक कौए की तरह काँव-काँव करता रहता है। सन्त की निन्दा से सर्प योनि मिलती है और सन्त की निन्दा से व्यक्ति रेंगने और टेढ़ा चलने वाले कीड़ों की योनियों में जाता है। सन्त का निन्दक नीचों से भी नीच हो जाता है। सन्त से ईर्ष्या करने वाले को कोई ठिकाना नहीं मिलता। परन्तु हे नानक, यदि सन्त को अच्छा लग जाए तो उसकी भी मुक्ति हो जाती है।। २ ।।

संत का निंदकु महा अतताई ॥ संत का निंदकु खिनु टिकनु न पाई ॥ संत का निंदकु महा हतिआरा ॥ संत का निंदकु परमेसुरि मारा ॥ संत का निंदकु राज ते हीनु ॥ संत का निंदकु दुखीआ अरु दीनु ॥ संत के निंदक कउ सरब रोग ॥ संत के निंदक कउ सदा बिजोग ॥ संत की निंदा दोख महि दोखु ॥ नानक संत भावै ता उस का भी होइ मोखु ॥३॥

सन्त का निन्दक अत्यन्त अत्याचारी होता है और उसे क्षण भर की भी शान्ति नहीं मिलती। सन्त का निन्दक महा हत्यारा और परमेश्वर द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति होता है। सन्त

का निन्दक अपना राज भी गँवा लेता है और दीन तथा दुखी हो जाता है। सन्त के निन्दक को सभी रोग आ लगते हैं और वह सदा तड़पते रहने की स्थिति में बना रहता है। पापों का पाप सन्त की निन्दा है परन्तु हे नानक, यदि सन्त को भा जाए तो निन्दक को भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है।। ३ ।।

संत का दोखी सदा अपवितु ॥ संत का दोखी किसै का नही मितु ॥ संत के दोखी कउ डानु लागै ॥ संत के दोखी कउ सभ तिआगै ॥ संत का दोखी महा अहंकारी ॥ संत का दोखी सदा बिकारी ॥ संत का दोखी जनमै मरै ॥ संत की दूखना सुख ते टरै ॥ संत के दोखी कउ नाही ठाउ ॥ नानक संत भावै ता लए मिलाइ ॥४॥

सन्त का निन्दक सदैव अपवित्र बना रहता है और वह किसी का भी मित्र नहीं होता। सन्त के निन्दक को सज़ा मिलती है और सभी उसका त्याग कर देते हैं। सन्त का निन्दक महा अहंकारी होकर सदा विकारों में लीन बना रहता है। सन्त का निन्दक जन्मता-मरता रहता है और सन्त की निन्दा करने से व्यक्ति सुख-विहीन हो जाता है। सन्त के निन्दक को कोई ठिकाना नहीं मिलता परन्तु हे नानक, यदि सन्त चाहे तो उसे भी प्रभु से मिला देता है।। ४ ।।

संत का दोखी अध बीच ते टूटै ॥ संत का दोखी कितै काजि न पहूचै ॥ संत के दोखी कउ उदिआन भ्रमाईऐ ॥ संत का दोखी उझड़ि पाईऐ ॥ संत का दोखी अंतर ते थोथा ॥ जिउ सास बिना मिरतक की लोथा ॥ संत के दोखी की जड़ किछु नाहि ॥ आपन बीजि आपे ही खाहि ॥ संत के दोखी कउ अवरु न राखनहारु ॥ नानक संत भावै ता लए उबारि ॥५॥

सन्त का निन्दक ठीक बीचों बीच से टूट जाता है और वह किसी भी कार्य को पूरा नहीं कर पाता। सन्त के निन्दक को वनों में भटकाया जाता है और उसे सुनसान स्थान पर फेंक दिया जाता है। सन्त का निन्दक अन्दर से वैसे ही खोखला हो जाता है जैसे श्वास के बिना मृतक व्यक्ति का शरीर होता है। सन्त के निन्दक की जड़ें कहीं भी नहीं होती और अपने बोये हुए को वह स्वयं ही खाता है। अन्य कोई भी सन्त के निन्दक का रक्षक नहीं होता परन्तु हे नानक, सन्त चाहे तो उसको भी बचा लेता है।। ५ ।।

संत का दोखी इउ बिललाइ ॥ जिउ जल बिहून मछुली तड़फड़ाइ ॥ संत का दोखी भूखा नही राजै ॥ जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै ॥ संत का दोखी छुटै इकेला ॥ जिउ बूआड़ु तिलु खेत माहि दुहेला ॥ संत का दोखी धरम ते रहत ॥ संत का दोखी सद मिथिआ कहत ॥ किरतु निंदक का धुरि ही

पइआ ॥ नानक जो तिसु भावै सोई थिआ ॥६॥

सन्त का निन्दक इस प्रकार चीखता पुकारता है जैसे जल-विहीन होकर मछली तड़पती है। जैसे ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती इसी तरह से सन्त के निन्दक की भूख कभी सन्तुष्ट नहीं होती। सन्त का निन्दक इसी प्रकार अकेला रह जाता है जैसे तिल का खोखला बीज खेत में अकेला ही पड़ा रहता है। सन्त का निन्दक कर्त्तव्य, कर्म एवं धर्म से विहीन होता है और हे नानक, जो प्रभु को भाता है वही होता है।। ६ ।।

संत का दोखी बिगड़ रूपु होइ जाइ ॥ संत के दोखी कउ दरगह मिलै सजाइ ॥ संत का दोखी सदा सहकाईऐ ॥ संत का दोखी न मरै न जीवाईऐ ॥ संत के दोखी की पुजै न आसा ॥ संत का दोखी उठि चलै निरासा ॥ संत कै दोखि न त्रिसटै कोइ ॥ जैसा भावै तैसा कोई होइ ॥ पइआ किरतु न मेटै कोइ ॥ नानक जानै सचा सोइ ॥७॥

सन्त का निन्दक विकृत और भयानक चेहरे वाला हो जाता है और उसे प्रभु दरबार में भी सज़ा मिलती है। सन्त का निन्दक सदैव मरणासन्न बना रहता है और वह न तो मरा हुआ होता है और न ही जीवित होता है। सन्त के निन्दक की कोई भी आशा पूरी नहीं होती और वह निराश होकर इस संसार से उठ जाता है। सन्त का निन्दक होने पर कहीं भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती। प्रभु को जैसा अच्छा लगता है व्यक्ति वैसा ही हो जाता है। किए हुए कार्यों के फल को कोई मिटा नहीं सकता, हे नानक, वह सच्चा प्रभु सब कुछ जानता है।। ७ ।।

सभ घट तिस के ओहु करनैहारु ॥ सदा सदा तिस कउ नमसकारु ॥ प्रभ की उसतति करहु दिनु राति ॥ तिसहि धिआवहु सासि गिरासि ॥ सभु कछु वरतै तिस का कीआ ॥ जैसा करे तैसा को थीआ ॥ अपना खेलु आपि करनैहारु ॥ दूसर कउनु कहै बीचारु ॥ जिस नो क्रिपा करै तिसु आपन नामु देइ ॥ बडभागी नानक जन सेइ ॥८॥१३॥

सभी शरीर एवं हृदय उसी कर्ता प्रभु के हैं जिसे सदा-सदा नमस्कार किया जाता है। हे जीव, दिन-रात प्रभु की स्तुति करो और हर श्वास और ग्रास के साथ उसका सुमिरन करो। सब कुछ उसी का किया हुआ ही होता है। वह जिस प्रकार जैसा जिसको चाहता है वैसा कर देता है। अपने खेल का सूत्रधार वह स्वयं ही है; दूसरा कोई भला कौन सोच विचार सकता है। जिस पर कृपा करता है उसी को प्रभु अपना नाम देता है और हे नानक ऐसे व्यक्ति ही भाग्यशाली हैं।। ८ ।। १३ ।।

सलोकु ॥ तजहु सिआनप सुरि जनहु सिमरहु हरि हरि राइ ॥ एक आस हरि

मनि रखहु नानक दूखु भरमु भउ जाइ ॥१॥

हे देवता स्वरूप भले पुरुषो, अपनी चतुराईयों को छोड़कर केवल प्रभु का सुमिरन करो। मन में केवल एक प्रभु का ही आसरा रखो; हे नानक, समस्त भ्रम, भय और दुख दूर हो जाएंगे।। १ ।।

असटपदी ॥ मानुख की टेक ब्रिथी सभ जानु ॥ देवन कउ एकै भगवानु॥ जिस कै दीऐ रहै अघाइ ॥ बहुरि न त्रिसना लागै आइ ॥ मारै राखै एको आपि ॥ मानुख कै किछु नाही हाथि ॥ तिस का हुकमु बूझि सुखु होइ ॥ तिस का नामु रखु कंठि परोइ ॥ सिमरि सिमरि सिमरि प्रभु सोइ ॥ नानक बिघनु न लागै कोइ ॥१॥

मनुष्य पर टेक रखने को हे जीव, तू व्यर्थ ही मान क्योंकि देने वाला एक प्रभु है। उसी के दिए जाने से व्यक्ति तृप्त होता है और फिर उसे तृष्णा नहीं सताती। एक प्रभु ही मारता और रक्षा करता है; व्यक्ति के हाथ में कुछ भी नहीं है। उसके हुकुम को समझ लेने से सुख मिलता है और हे जीव, उसी का नाम हृदय में धारण करके रख। हे नानक, प्रभु का सुमिरन करते रहने से कोई भी विघ्न सामने नहीं आता।। १ ।।

उसतति मन महि करि निरंकार ॥ करि मन मेरे सति बिउहार ॥ निरमल रसना अंम्रितु पीउ ॥ सदा सुहेला करि लेहि जीउ ॥ नैनहु पेखु ठाकुर का रंगु ॥ साधसंगि बिनसै सभ संगु ॥ चरन चलउ मारगि गोबिंद ॥ मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद ॥ कर हरि कर्म स्रवनि हरि कथा ॥ हरि दरगह नानक ऊजल मथा ॥२॥

निराकार प्रभु की स्तुति मन में करो और हे मेरे मन, सत्य का व्यवहार अपनाओ। जीभ से निर्मल अमृत-पान करने से हे जीव, तू अपनी आत्मा को सदा के लिए सुखी कर लेगा। अपनी आँखों से उस परमात्मा के रंगों को देखता रह और साधसंगत में तेरे अन्य सभी कुसंग छूट जाएंगे। चरणों से तू प्रभु के मार्ग पर चल क्योंकि क्षण भर के लिए भी प्रभु का जाप करने से पाप मिट जाते हैं। प्रभु की ही सेवा कर और प्रभु की ही कथा-वार्ता सुन जिससे हे नानक, प्रभु दरबार में तेरा मस्तक उज्जवल हो जाएगा।। २ ।।

बडभागी ते जन जग माहि ॥ सदा सदा हरि के गुन गाहि ॥ राम नाम जो करहि बीचार ॥ से धनवंत गनी संसार ॥ मनि तनि मुखि बोलहि हरि मुखी॥ सदा सदा जानहु ते सुखी ॥ एको एकु एकु पछानै ॥ इत उत की ओहु सोझी जानै ॥ नाम संगि जिस का मनु मानिआ ॥ नानक तिनहि निरंजनु जानिआ ॥३॥

इस संसार में वे व्यक्ति भाग्यशाली हैं जो सदैव प्रभु का गुणानुवाद करते हैं। जो प्रभु-नाम का विचार और सुमिरन करते हैं उन्हें ही सदैव सुखी जानना चाहिए। जो केवल एक प्रभु से ही पहचान बनाता है उसे इस लोक और परलोक के बारे में सब पता लग जाता है। हे नानक, जिसका मन प्रभु-नाम में लीन हो गया है वास्तव में उसी ने उस प्रभु को जान लिया है।। ३ ।।

गुर प्रसादि आपन आपु सुझै ॥ तिस की जानहु त्रिसना बुझै ॥ साधसंगि हरि हरि जसु कहत ॥ सरब रोग ते ओहु हरि जनु रहत ॥ अनदिनु कीरतनु केवल बख्यानु ॥ गृहसत महि सोई निरबानु ॥ एक ऊपरि जिसु जन की आसा ॥ तिस की कटीऐ जम की फासा ॥ पारब्रहम की जिसु मनि भूख॥ नानक तिसहि न लागहि दूख ॥४॥

जो गुरु की कृपा से अपने आप को जान लेता है उसकी तो समझ लो तृष्णा ही समाप्त हो जाती है। साधसंगत में जो हरि-यश करता है प्रभु का वह सेवक सभी रोगों से मुक्त हो जाता है। जो दिन-रात प्रभु की महिमा का गायन और बखान करता रहता है वही व्यक्ति घरबारी होते हुए भी अलिप्त अवस्था में बना रहता है। जिस व्यक्ति की आशा केवल एक प्रभु ही है उसका यमपाश कट जाता है। हे नानक, जिस के मन में केवल एक प्रभु की ही भूख बनी रहती है उसे कभी भी कोई दुख नहीं लगता।। ४ ।।

जिस कउ हरि प्रभु मनि चिति आवै ॥ सो संतु सुहेला नही डुलावै ॥ जिसु प्रभु अपुना किरपा करै ॥ सो सेवकु कहु किस ते डरै ॥ जैसा सा तैसा द्रिसटाइआ ॥ अपुने कारज महि आपि समाइआ ॥ सोधत सोधत सोधत सीझिआ ॥ गुर प्रसादि ततु सभु बूझिआ ॥ जब देखउ तब सभु किछु मूलु॥ नानक सो सूखमु सोई असथूलु ॥५॥

जिसके मन और चित्त में प्रभु और स्वामी का सुमिरन चलता रहता है वह प्रसन्न मन वाला सन्त कभी भी इधर उधर भटकता नहीं है। जिस सेवक पर प्रभु की कृपा होती है वह भला किसी से क्यों डरेगा ? उसको प्रभु वास्तविक स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है और वह जान जाता है कि अपने प्रत्येक कार्य में वह स्वयं ही समाया हुआ है। खोजते खोजते अन्ततः जीव सफल हो जाता है और गुरु की कृपा से वह जीवन के सार-तत्त्व को जान जाता है। हे नानक, जब भी देखा जाता है तो वही सब पदार्थों के मूल में दिखाई देता है; वही सूक्ष्म है और वही स्थूल है।। ५ ।।

नह किछु जनमै नह किछु मरै ॥ आपन चलितु आप ही करै ॥ आवनु जावनु द्रिसटि अनद्रिसटि ॥ आगिआकारी धारी सभ स्रिसटि ॥ आपे आपि सगल

महि आपि ॥ अनिक जुगति रचि थापि उथापि ॥ अबिनासी नाही किछु खंड ॥ धारण धारि रहिओ ब्रहमंड ॥ अलख अभेव पुरख परताप ॥ आपि जपाए त नानक जाप ॥६॥

न तो कुछ जन्मता है और न ही कुछ मरता है। अपने कौतुकपूर्ण कार्मों की वही स्वयं ही रचना करता है। आवागमन, गोचरता एवं अगोचरता आदि इस सृष्टि में उसने अपनी आज्ञा में ही रखे हुए हैं। वह स्वयं ही सब कुछ है और सब में वह आप ही है। उसने अनेकों युक्तियों से रचना बनाई और विनष्ट की है। अविनाशी प्रभु अखण्ड है और उसी ने ही सारे ब्रह्माण्ड को धारण कर रखा है। उस प्रभु का प्रताप अलक्ष्य एवं रहस्यातीत है। हे नानक, व्यक्ति से वह जब अपना नाम जपाता है तब ही व्यक्ति उसका सुमिरन करता है।। ६ ।।

जिन प्रभु जाता सु सोभावंत ॥ सगल संसारु उधरै तिन मंत ॥ प्रभ के सेवक सगल उधारन ॥ प्रभ के सेवक दूख बिसारन ॥ आपे मेलि लए किरपाल॥ गुर का सबदु जपि भए निहाल ॥ उन की सेवा सोई लागै ॥ जिस नो क्रिपा करहि बडभागै ॥ नामु जपत पावहि बिस्रामु ॥ नानक तिन पुरख कउ ऊतम करि मानु ॥७॥

जिन्होंने प्रभु को जाना है वे ही शोभा से युक्त हैं। सारे संसार का उनके उपदेश से उद्धार हो जाता है। प्रभु के सेवक सब को बचा लेते हैं और उनकी संगत में दुख भूल जाता है। कृपालु प्रभु उन्हें अपने से मिला लेता है और शब्द-गुरु का जाप करके वे प्रसन्न बने रहते हैं। ऐसे सेवकों की सेवा ऐसे भाग्यशाली ही करते हैं जिन पर प्रभु की कृपा होती है। नाम-सुमिरन करने वाले शान्त अवस्था प्राप्त कर लेते हैं। हे नानक, ऐसे व्यक्तियों को श्रेष्ठ मानना चाहिए।। ७ ।।

जो किछु करै सु प्रभ कै रंगि ॥ सदा सदा बसै हरि संगि ॥ सहज सुभाइ होवै सो होइ ॥ करणैहारु पछाणै सोइ ॥ प्रभ का कीआ जन मीठ लगाना॥ जैसा सा तैसा द्रिसटाना ॥ जिस ते उपजे तिसु माहि समाए ॥ ओइ सुख निधान उनहू बनि आए ॥ आपस कउ आपि दीनो मानु ॥ नानक प्रभ जनु एको जानु ॥८॥१४॥

प्रभु का सेवक जो कुछ भी करता है वह प्रभु के हुकुम के अन्तर्गत ही करता है और प्रभु सदैव उसके साथ ही बसता है। प्रभु का सेवक सहज स्वभाव ही जो होने वाला होता है उसी को स्वीकार करता है और करने वाले प्रभु को पहचान लेता है। प्रभु का किया हुआ सेवक को मीठा लगता है और प्रभु उसे वास्तविक रूप में दृष्टिगोचर होता

है। वह जिससे पैदा हुआ है उसी में समा जाता है और सुखों का यह खज़ाना केवल उस सेवक के लिए ही बना होता है। अपने सेवक को प्रभु सम्मान देता है और हे नानक, प्रभु और सेवक को एक ही समझ ।। ७ ।। १४ ।।

सलोकु ॥ सरब कला भरपूर प्रभ बिरथा जाननहार ॥ जा कै सिमरनि उधरीऐ नानक तिसु बलिहार ॥१॥

स्वामी प्रभु सभी शक्तियों सहित व्याप्त है और जीव की व्यथा को जानने वाला है। हे नानक, जिसके सुमिरन से उद्धार होता है मैं उस पर बलिहारी जाता हूँ।। १ ।।

असटपदी ॥ टूटी गाढनहार गोपाल ॥ सरब जीआ आपे प्रतिपाल ॥ सगल की चिंता जिसु मन माहि ॥ तिस ते बिरथा कोई नाहि ॥ रे मन मेरे सदा हरि जापि ॥ अबिनासी प्रभु आपे आपि ॥ आपन कीआ कछू न होइ ॥ जे सउ प्रानी लोचै कोइ ॥ तिसु बिनु नाही तेरै किछु काम ॥ गति नानक जपि एक हरि नाम ॥१॥

सृष्टि का पोषण करने वाला प्रभु अपने से टूटे हुओं को फिर जोड़ लेने वाला है। सब जीवों का पालन वह स्वयं ही करता है। जिसके मन में सबकी चिन्ता है उससे अलग कोई भी नहीं है। हे मेरे मन, तू सदा सदा प्रभु का सुमिरन कर क्योंकि वह अविनाशी प्रभु स्वयं ही सब कुछ है। जीव का अपना किया हुआ कुछ भी नहीं होता बेशक जीव सैंकड़ों बार करने की सोचता रहे। उसके बिना तेरे काम का कुछ भी नहीं होता। हे नानक, एक प्रभु-नाम के जाप से ही मुक्ति प्राप्त होती है।। १ ।।

रूपवंतु होइ नाही मोहै ॥ प्रभ की जोति सगल घट सोहै ॥ धनवंता होइ किआ को गरबै ॥ जा सभु किछु तिस का दीआ दरबै ॥ अति सूरा जे कोऊ कहावै ॥ प्रभ की कला बिना कह धावै ॥ जे को होइ बहै दातारु ॥ तिसु देनहारु जानै गावारु ॥ जिसु गुर प्रसादि तूटै हउ रोगु ॥ नानक सो जनु सदा अरोगु ॥२॥

जीव केवल रूपवान होकर प्रभु को मोहित नहीं कर सकता क्योंकि उसकी सुन्दर ज्योति तो सभी जीवों में शोभयमान है। जब सारी धन-सम्पदा उसी की दी हुई है तो धनवान होकर भला कोई क्यों अभिमान कर रहा है। यदि कोई अत्यन्त शूरवीर भी कहलाता है तो भला वह भी प्रभु की शक्ति के बिना कहां जा सकता है। यदि कोई दाता बनकर बैठ जाए तो ऐसे दाता को प्रभु मूर्ख ही समझता है। हे नानक, वह व्यक्ति सदा निरोग है जिसका गुरु की कृपा से अहंकार का रोग समाप्त हो गया है।। २ ।।

जिउ मंदर कउ थामै थंमनु ॥ तिउ गुर का सबदु मनहि असथंमनु ॥ जिउ पाखाणु नाव चड़ि तरै ॥ प्राणी गुर चरण लगतु निसतरै ॥ जिउ अंधकार दीपक परगासु ॥ गुर दरसनु देखि मनि होइ बिगासु ॥ जिउ महा उदिआन महि मारगु पावै ॥ तिउ साधू संगि मिलि जोति प्रगटावै ॥ तिन संतन की बाछउ धूरि ॥ नानक की हरि लोचा पूरि ॥३॥

जैसे एक भवन को स्तम्भ थामे रहता है ऐसे ही गुरु का शब्द अर्थात शब्द-गुरु मन को थामे रहता है। जैसे नाव में पड़ा हुआ पत्थर भी पार हो जाता है वैसे ही गुरु के चरणों से लगकर व्यक्ति पार हो जाता है। जिस प्रकार अन्धकार में दीपक प्रकाश देता है उसी तरह से गुरु के दर्शन करके मन खिल उठता है। जैसे भयानक वन में व्यक्ति (मेहनत से) रास्ता ढूँढ लेता है वैसे ही साधसंगत में रहकर वह अपने अन्तर्मन की निर्मल ज्योति को प्रकट कर लेता है। हे प्रभु, नानक की यह आशा पूरी कर दे कि मैं ऐसे साधु पुरुषों की चरण-धूलि चाहता रहूँ।। ३ ।।

मन मूरख काहे बिललाईऐ ॥ पुरब लिखे का लिखिआ पाईऐ ॥ दूख सूख प्रभ देवनहारु ॥ अवर तिआगि तू तिसहि चितारु ॥ जो कछु करै सोई सुखु मानु ॥ भूला काहे फिरहि अजान ॥ कउन बसतु आई तेरै संग ॥ लपटि रहिओ रसि लोभी पतंग ॥ राम नाम जपि हिरदे माहि ॥ नानक पति सेती घरि जाहि ॥४॥

हे मूर्ख मन, तू क्यों प्रलाप कर रहा है क्योंकि वही मिलता है जो पूर्व से ही भाग्य में लिखा होता है। प्रभु सुख और दुख दोनों ही देने वाला है इसलिए तू अन्यों को त्याग कर केवल उसी का सुमिरन कर। वह जो कुछ करता है उसमें ही सुख मान और हे नासमझ जीव, तू क्यों भूला हुआ भटक रहा है। तेरे साथ कौन सी वस्तु आई है जिससे तू सांसारिक रसों में लोभी पतंगे की तरह लिपटा हुआ है। तू अपने मन में प्रभु-नाम का जाप कर और हे नानक, इस प्रकार तू सम्मान सहित अपने मूल ठिकाने अर्थात प्रभु के पास चला जाएगा।। ४ ।।

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ ॥ राम नामु संतन घरि पाइआ ॥ तजि अभिमानु लेहु मन मोलि ॥ राम नामु हिरदे महि तोलि ॥ लादि खेप संतह संगि चालु ॥ अवर तिआगि बिखिआ जंजाल ॥ धंनि धंनि कहै सभु कोइ॥ मुख ऊजल हरि दरगह सोइ ॥ इहु वापारु विरला वापारै ॥ नानक ता कै सद बलिहारै ॥ ५॥

जिस राम-नाम रूपी सौदे को लेने के लिए तू यहां आया है वह सौदा शान्त पुरुषों

के पास ही प्राप्त होता है। तू अभिमान का त्याग कर और मन में राम-नाम रूपी सौदे को तोल ले और तौलकर उसे मोल ले ले। अपनी खेप को लादकर शान्त पुरुषों के संग चलता चल और विषयों के अन्य जंजालों को त्याग दे। इस प्रकार प्रभु दरबार में तेरी महिमा होगी, तेरा मुख उज्ज्वल होगा और सभी तुझे धन्य-धन्य कहेंगे। कोई बिरला ही इस सौदे का व्यापारी होता है। नानक ऐसे व्यापारी पर सदैव बलिहारी जाता है।। ५ ।।

चरन साध के धोइ धोइ पीउ ॥ अरपि साध कउ अपना जीउ ॥ साध की धूरि करहु इसनानु ॥ साध ऊपरि जाईऐ कुरबानु ॥ साध सेवा वडभागी पाईऐ ॥ साधसंगि हरि कीरतनु गाईऐ ॥ अनिक बिघन ते साधू राखै ॥ हरि गुन गाइ अंम्रित रसु चाखै ॥ ओट गही संतह दरि आइआ ॥ सरब सूख नानक तिह पाइआ ॥६॥

साधु के चरणों को धो-धोकर पीना चाहिए और साधु व्यक्ति को अपनी आत्मा भी अर्पण कर देनी चाहिए। साधु की चरण-धूलि में स्नान करो और साधु पर कुर्बान हो जाओ। बड़े भाग्य से साधु की सेवा प्राप्त होती है और साधसंगत में ही प्रभु-गुणानुवाद होता है। अनेकों विघ्नों से साधु रक्षा करता है और वह हरि गुण गाता हुआ अमृत रस का पान करता है। हे नानक, जो शान्त पुरुषों का आसरा लेकर उनके द्वार पर आ गया वह सब प्रकार के सुखों को पा लेता है।। ६ ।।

मिरतक कउ जीवालनहार ॥ भूखे कउ देवत अधार ॥ सरब निधान जा की द्रिसटी माहि ॥ पुरब लिखे का लहणा पाहि ॥ सभु किछु तिस का ओहु करनै जोगु ॥ तिसु बिनु दूसर होआ न होगु ॥ जपि जन सदा सदा दिनु रैणी ॥ सभ ते ऊच निरमल इह करणी ॥ करि किरपा जिस कउ नामु दीआ॥ नानक सो जनु निरमलु थीआ ॥७॥

प्रभु मृतक को भी जिला देने वाला है और भूखे को भी जीवन देता है। उसकी दृष्टि में ही सभी ख़जाने विद्यमान है परन्तु व्यक्ति वही पाता है जिसे पूर्व से ही उसके लिए लिखा गया है। सब कुछ उसी का है और वही सब कुछ करने के योग्य है। उसके अतिरिक्त न तो कोई हुआ है और न ही होगा। हे जीव, दिन-रात तू सदैव उसका जाप कर और यही जीवन व्यवहार सबसे ऊँचा और निर्मल है। हे नानक, वह व्यक्ति पवित्र हो जाता है जिसे कृपा करके प्रभु ने अपना नाम दे दिया है।। ७ ।।

जा कै मनि गुर की परतीति ॥ तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥ भगतु भगतु सुनीऐ तिहु लोइ ॥ जा कै हिरदै एको होइ ॥ सचु करणी सचु ता की रहत॥ सचु हिरदै सति मुखि कहत ॥ साची द्रिसटि साचा आकारु ॥ सचु वरतै

साचा पासारु ॥ पारब्रहमु जिनि सचु करि जाता ॥ नानक सो जनु सचि समाता ॥८॥१५॥

जिसके मन में गुरु का प्रेम है उसे हरि-प्रभु की याद चित्त में आती रहती है। जिसके हृदय में केवल एक प्रभु होता है, तीनों लोकों में उसे भक्त और श्रेष्ठ भक्त सुना और कहा जाता है। उसका व्यवहार और कार्य सच्चे होते हैं। उसके हृदय और मुख में भी सत्य ही होता है। उसकी दृष्टि और उसका स्वरूप सच्चा होता है। वह सत्य का ही व्यवहार करता है और सत्य का ही प्रसार करता है। प्रभु को जिसने सत्य रूप में जान लिया है, हे नानक, वह सेवक सत्य में ही लीन हो जाता है।। ८ ।। १५ ।।

सलोकु ॥ रूपु न रेख न रंगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभ भिंन ॥ तिसहि बुझाए नानका जिसु होवै सुप्रसंन ॥१॥

तीनों गुणों से अलग प्रभु का न तो कोई रूप है, न आकार है और न ही कोई रंग है। हे नानक, जिस पर वह प्रसन्न होता है उसे ही वह अपना आप जनवाता है।। १ ।।

असटपदी ॥ अबिनासी प्रभु मन महि राखु ॥ मानुख की तू प्रीति तिआगु॥ तिस ते परै नाही किछु कोइ ॥ सरब निरंतरि एको सोइ ॥ आपे बीना आपे दाना ॥ गहिर गंभीरु गहीरु सुजाना ॥ पारब्रहम परमेसुर गोबिंद ॥ क्रिपा निधान दइआल बखसंद ॥ साध तेरे की चरनी पाउ ॥ नानक कै मनि इहु अनराउ ॥१॥

हे जीव, मनुष्य की प्रीति को त्याग कर तू उस अविनाशी प्रभु को ही मन में याद रख। उससे परे कुछ भी नहीं है क्योंकि वह एक प्रभु ही सबके अन्दर रमण कर रहा है। वह स्वयं ही अन्तर्यामी है और स्वयं ही देने वाला है। वह गहरा है, गम्भीर है और सुजान भी है। वह परब्रह्म परमेश्वर सृष्टि का स्वामी, कृपानिधान, दयालु एवं क्षमा कर देने वाला है। नानक के मन में यही इच्छा है कि वह साधुजनों के चरणों पर आन पड़े।। १ ।।

मनसा पूरन सरना जोग ॥ जो करि पाइआ सोई होगु ॥ हरन भरन जा का नेत्र फोरु ॥ तिस का मंत्रु न जानै होरु ॥ अनद रूप मंगल सद जा कै ॥ सरब थोक सुनीअहि घरि ता कै ॥ राज महि राजु जोग महि जोगी ॥ तप महि तपीसरु ग्रिहसत महि भोगी ॥ धिआइ धिआइ भगतह सुखु पाइआ ॥ नानक तिसु पुरख का किनै अंतु न पाइआ ॥२॥

प्रभु आशाओं को पूर्ण करने वाला और शरण देने में समर्थ है। प्रभु ने जैसा विधान बना दिया है वैसा ही होता है। खाली कर देना और भर देना उसके आँख झपकने के साथ ही हो जाता है। अन्य कोई भी उसके रहस्य को नहीं जानता। सदैव मंगल रूप में

बना रहने वाला वह आनन्दस्वरूप है और सुना जाता है कि सभी पदार्थ उसके घर में विद्यमान हैं। राजाओं में राजा, योगियों में योगी, तपस्वियों में तपीश्वर और गृहस्थियों में वह सांसारिक भोगों को भोगने वाला है। लगातार उसका सुमिरन करने वाले भक्त सुख प्राप्त करते हैं और हे नानक, उस प्रभु का अन्तिम छोर किसी को भी नहीं मिल सका है।। २ ।।

जा की लीला की मिति नाहि ॥ सगल देव हारे अवगाहि ॥ पिता का जनमु कि जानै पूतु ॥ सगल परोई अपुनै सूति ॥ सुमति गिआनु धिआनु जिन देइ॥ जन दास नामु धिआवहि सेइ ॥ तिहु गुण महि जा कउ भरमाए ॥ जनमि मरै फिरि आवै जाए ॥ ऊच नीच तिस के असथान ॥ जैसा जनावै तैसा नानक जान ॥३॥

उसकी लीला की कोई सीमा नहीं है और सभी देवतागण भी उसको खोजते हुए थक गये हैं। पिता के जन्म के बारे में पुत्र भला क्या जानेगा? संसार के सभी पदार्थ उसने अपनी कृपा के धागे में पिरो कर रखे हुए हैं। उसके सेवक जिन्हें प्रभु सुमति, ज्ञान, ध्यान आदि देता है वे ही उसके नाम का सुमिरन करते हैं। जिसे प्रभु तीनों गुणों में ही भटकाता रहता है वह जन्मता-मरता बार बार आता जाता रहता है। ऊँचे नीचे सभी स्थान उसी के हैं। हे नानक, जैसा वह जनवाता है वैसा ही तू उसे जानता है।। ३ ।।

नाना रूप नाना जा के रंग ॥ नाना भेख करहि इक रंग ॥ नाना बिधि कीनो बिसथारु ॥ प्रभु अबिनासी एकंकारु ॥ नाना चलित करे खिन माहि ॥ पूरि रहिओ पूरनु सभ ठाइ ॥ नाना बिधि करि बनत बनाई ॥ अपनी कीमति आपे पाई ॥ सभ घट तिस के सभ तिस के ठाउ ॥ जपि जपि जीवै नानक हरि नाउ ॥४॥

उसके अनेकों रूप, रंग और वेश हैं परन्तु फिर भी वह एक ही बना रहता है। उसने अनेक विधियों से अपना विस्तार किया हुआ है परन्तु स्वयं वह प्रभु अविनाशी एवं अद्वितीय है। क्षण भर में ही वह अनेकों खेल खेल जाता है और वह पूर्ण प्रभु सभी स्थानों में पूर्ण रूप से व्याप्त है। अनेकों विधियों से उसने रचना बनाई है और वह अपनी कीमत को आप ही जानता और निश्चित करता है। सभी हृदय एवं सभी स्थान उसके हैं; नानक तो केवल प्रभु-नाम का सुमिरन करते रहने से ही जीवित बना हुआ है।। ४ ।।

नाम के धारे सगले जंत ॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड ॥ नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान ॥ नाम के धारे सुनन गिआन धिआन ॥ नाम के धारे आगास पाताल ॥ नाम के धारे सगल आकार ॥ नाम के धारे पुरीआ सभ भवन ॥ नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन ॥ करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए ॥

नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए ॥५॥

प्रभु नाम ने ही सभी जीवों को आश्रय दिया हुआ है और नाम ही सारे खण्डों एवं ब्रह्माण्डों का आधार है। नाम ने ही स्मृति, वेद, पुराण आदि को धारण कर रखा है और नाम के आधार से ही सुनना, ध्यान करना और ज्ञानवान होना संभव होता है। प्रभु-नाम ने ही आकाश, पाताल और सभी आकारों को धारण कर रखा है। नाम ही सभी पुरियों, भुवनों का आधार है। नाम की संगत में ही नाम सुनकर अनेकों जीव पार उतर गए हैं। हे नानक, वह सेवक चौथे पद (तुरीय अवस्था) में पहुँच कर मुक्त हो जाता है जिस पर प्रभु कृपा करके उसे अपने नाम में लीन कर लेता है।। ५ ।।

रूपु सति जा का सति असथानु ॥ पुरखु सति केवल प्रधानु ॥ करतूति सति सति जा की बाणी ॥ सति पुरख सभ माहि समाणी ॥ सति करमु जा की रचना सति ॥ मूलु सति सति उतपति ॥ सति करणी निरमल निरमली ॥ जिसहि बुझाए तिसहि सभ भली ॥ सति नामु प्रभ का सुखदाई ॥ बिस्वासु सति नानक गुर ते पाई ॥६॥

उसका स्वरूप और स्थान सत्य है। उसका व्यक्तित्व भी सत्य है और केवल वही सर्वोच्च है। उसकी वाणी एवं व्यवहार सब सत्य है। वही बलशाली सत्य सबमें समाया हुआ है। उसका व्यवहार और उसकी सृष्टि सत्य है। उत्पत्ति भी सत्य है और इस उत्पत्ति का मूल (प्रभु) भी सत्य है। परम पवित्र उसकी कार्य-शैली भी सत्य है। जिसे वह इसका रहस्य बुझाता है उसी के लिए सब कुछ भला बन जाता है। प्रभु का सत्य-नाम सुखदायक है; हे नानक, उस सत्य पर विश्वास गुरु के पास से प्राप्त किया जाता है।। ६ ।।

सति बचन साधू उपदेस ॥ सति ते जन जा कै रिदै प्रवेस ॥ सति निरति बूझै जे कोइ ॥ नामु जपत ता की गति होइ ॥ आपि सति कीआ सभु सति॥ आपे जानै अपनी मिति गति ॥ जिस की स्रिसटि सु करणैहारु ॥ अवर न बूझि करत बीचारु ॥ करते की मिति न जानै कीआ ॥ नानक जो तिसु भावै सो वरतीआ ॥ ७॥

साधु पुरुषों के वचन और उपदेश भी सत्य हैं। वे सेवक भी सत्य हैं जिनके हृदय में प्रभु प्रवेश कर चुका है। यदि कोई सत्य और असत्य को जान जाए तो प्रभु का नाम जपते हुए वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। प्रभु स्वयं सत्य है और उसने जो भी उत्पन्न किया है सब सत्य है। वह स्वयं ही अपनी सीमा और गति को जानता है। जिसकी रचना है वही इसका सृजनहार है। अन्य कोई भी बेशक कितना विचार कर ले उसे नहीं बूझ सकता। उसके द्वारा बनाया गया जीव उसकी सीमा को नहीं जान सकता है; हे नानक, जो उसे

भाता है केवल वही होता है।। ७ ।।

बिसमन बिसम भए बिसमाद ॥ जिनि बूझिआ तिसु आइआ स्वाद ॥ प्रभ कै रंगि राचि जन रहे ॥ गुर कै बचनि पदारथ लहे ॥ ओइ दाते दुख काटनहार ॥ जा कै संगि तरै संसार ॥ जन का सेवकु सो वडभागी ॥ जन कै संगि एक लिव लागी ॥ गुन गोबिद कीरतनु जनु गावै ॥ गुर प्रसादि नानक फलु पावै ॥८॥१६॥

अद्भुत आश्चर्य को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया हूँ। जिसने उसे जाना है उसी को आनन्द आया है। प्रभु के सेवक उसके प्रेम में ही लीन रहते हैं और गुरु के उपदेश के माध्यम से चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को प्राप्त कर लेते हैं। वे ही दाता और दुखों को काटने वाले होते हैं और उन्हीं के साथ सारा संसार पार उतर जाता है। सेवक का भी सेवक भाग्यशाली होता है क्योंकि उसके साथ रहकर ही व्यक्ति की सुरति एक प्रभु में ही लगी रहती है। प्रभु का सेवक प्रभु की कीर्ति का गायन करता है और हे नानक, गुरु की कृपा से वह फल प्राप्त कर लेता है।। ८ ।। १६ ।।

सलोकु ॥ आदि सचु जुगादि सचु ॥ है भि सचु नानक होसी भि सचु ॥१॥

प्रारम्भ में भी सत्य था, युगों के प्रारम्भ में भी सत्य था, वर्तमान में भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य ही विद्यमान रहेगा।। १ ।।

असटपदी ॥ चरन सति सति परसनहार ॥ पूजा सति सति सेवदार ॥ दरसनु सति सति पेखनहार ॥ नामु सति सति धिआवनहार ॥ आपि सति सति सभ धारी ॥ आपे गुण आपे गुणकारी ॥ सबदु सति सति प्रभु बकता ॥ सुरति सति सति जसु सुनता ॥ बुझनहार कउ सति सभ होइ ॥ नानक सति सति प्रभु सोइ ॥१॥

प्रभु के चरण सत्य हैं और उनका स्पर्श करने वाले भी सत्य हैं। प्रभु की उपासना भी सत्य है और प्रभु के सेवक भी सत्य हैं। वह स्वयं सत्य है और सत्य-स्वरूप में ही उसने सबको धारण कर रखा है। वह स्वयं गुण और गुण देने वाला भी है। प्रभु का शब्द भी सत्य है और वक्ता-प्रभु भी सत्य है। सुरति भी सत्य है और उसका यश सुनने वाले भी सत्य हैं। जो उसे बूझता है उसके लिए सभी सत्य हैं। हे नानक, वह प्रभु सत्य ही सत्य है।। १ ।।

सति सरूपु रिदै जिनि मानिआ ॥ करन करावन तिनि मूलु पछानिआ ॥ जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ ॥ ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ ॥ भै ते

निरभउ होइ बसाना ॥ जिस ते उपजिआ तिसु माहि समाना ॥ बसतु माहि ले बसतु गडाई ॥ ता कउ भिंन न कहना जाई ॥ बूझै बूझनहारु बिबेक ॥ नाराइन मिले नानक एक ॥२॥

जिसने हृदय में उसे सत्य-स्वरूप में मान लिया है उसने वास्तव में करने कराने वाले मूल रूपी प्रभु को पहचान लिया है। जिसके हृदय में प्रभु का विश्वास बैठ गया है उसके मन में तत्त्व-ज्ञान प्रकट हो जाता है। वह भय को त्याग कर निर्भय होकर बसता है और इस प्रकार जिससे वह उत्पन्न हुआ था उसी में लीन हो जाता है। जब वस्तु दूसरी वस्तु में लीन हो जाती है तो उससे उसे भिन्न नहीं कहा जा सकता। केवल विवेकशील ही इस तथ्य को बूझते हैं और हे नानक, प्रभु के साथ मिलकर एक ही हो जाते हैं।। २ ।।

ठाकुर का सेवकु आगिआकारी ॥ ठाकुर का सेवकु सदा पूजारी ॥ ठाकुर के सेवक कै मनि परतीति ॥ ठाकुर की सेवक के निर्मल रीति ॥ ठाकुर कउ सेवकु जानै संगि ॥ प्रभ का सेवकु नाम कै रंगि ॥ सेवक कउ प्रभ पालनहारा ॥ सेवक की राखै निरंकारा ॥ सो सेवकु जिसु दइआ प्रभु धारै॥ नानक सो सेवकु सासि सासि समारै ॥३॥

प्रभु का सेवक आज्ञाकारी और सदैव प्रभु का उपासक होता है। प्रभु के सेवक के मन में प्रेम होता है और उसका जीवन-ढंग भी निर्मल एवं पवित्र होता है। सेवक स्वामी को सदा साथ ही मानता है और वह प्रभु-नाम में ही रंगा रहता है। मालिक ही अपने सेवक का पालनहार होता है और निराकार प्रभु अपने सेवक के सम्मान की रक्षा करता है। सेवक वही है जिस पर प्रभु दयालु होता है, और हे नानक, वही सेवक प्रत्येक श्वास के साथ प्रभु का सुमिरन करता रहता है।। ३ ।।

अपुने जन का परदा ढाकै ॥ अपने सेवक की सरपर राखै ॥ अपने दास कउ देइ वडाई ॥ अपने सेवक कउ नामु जपाई ॥ अपने सेवक की आपि पति राखै ॥ ता की गति मिति कोइ न लाखै ॥ प्रभ के सेवक कउ को न पहूचै ॥ प्रभ के सेवक ऊच ते ऊचे ॥ जो प्रभि अपनी सेवा लाइआ ॥ नानक सो सेवकु दह दिसि प्रगटाइआ ॥४॥

प्रभु अपने सेवक के दोषों पर पर्दा डाल देता है और अपने सेवक की अवश्य ही लाज रखता है। वह अपने दास को बड़प्पन प्रदान करता है और अपने नाम का सुमिरन करवाता है। अपने सेवक की प्रभु स्वयं इ़ज़्ज़त बचाता है और उसकी कार्य-विधि और सीमा को कोई नहीं देख सकता। प्रभु के सेवकों की कोई भी बराबरी नहीं कर सकता क्योंकि प्रभु के सेवक सर्वोच्च्य होते हैं। प्रभु ने जिसे अपनी सेवा में लीन कर लिया, हे

नानक, वही सेवक दसों दिशाओं में प्रसिद्ध हो जाता है।। ४ ।।

नीकी कीरी महि कल राखै ॥ भसम करै लसकर कोटि लाखै ॥ जिस का सासु न काढत आपि ॥ ता कउ राखत दे करि हाथ ॥ मानस जतन करत बहु भाति ॥ तिस के करतब बिरथे जाति ॥ मारै न राखै अवरु न कोइ ॥ सरब जीआ का राखा सोइ ॥ काहे सोच करहि रे प्राणी ॥ जपि नानक प्रभ अलख विडाणी ॥५॥

यदि छोटी सी कीड़ी (चींटी) में भी वह अपनी शक्ति स्थित कर दे तो वह लाखों करोड़ों व्यक्तियों की सेना को राख कर सकती है। जिस व्यक्ति का श्वास प्रभु स्वयं नहीं समाप्त करना चाहता उसे वह स्वयं हाथ देकर बचा लेता है। व्यक्ति अनेकों प्रकार के यत्न करता है परन्तु उसके सभी कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। प्रभु के बिना अन्य कोई भी न तो मार सकता है और न ही बचा सकता है क्योंकि सभी जीवों का रखवाला वह एक ही है। हे जीव, तू क्यों चिन्ता करता है और हे नानक, तू उस अदृष्ट एवं आश्चर्य प्रभु का सुमिरन कर।। ५ ।।

बारं बार बार प्रभु जपीऐ ॥ पी अंम्रितु इहु मनु तनु ध्रपीऐ ॥ नाम रतनु जिनि गुरमुखि पाइआ ॥ तिसु किछु अवरु नाही द्रिसटाइआ ॥ नामु धनु नामो रूपु रंगु ॥ नामो सुखु हरि नाम का संगु ॥ नाम रसि जो जन त्रिपताने॥ मन तन नामहि नामि समाने ॥ ऊठत बैठत सोवत नाम ॥ कहु नानक जन कै सद काम ॥६॥

बार बार प्रभु के नाम का उच्चारण किया जाए क्योंकि प्रभु-नाम के अमृतपान से मन और तन तृप्त हो जाता है। जिस गुरमुख ने नाम-रत्न पा लिया है उसे प्रभु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई देता। उसके लिए नाम ही धन है, सौन्दर्य है और प्रसन्नता भी है। नाम से ही उसे सुख मिलता है और हरि-नाम ही उसका संगी-साथी है। जो व्यक्ति नाम रूपी अमृत रस से तृप्त हो चुके हैं उनका मन और तन नाम में ही लीन बना रहता है। नानक कहता है कि प्रभु के सेवक का सदैव यही व्यवहार रहता है कि वह उठते, बैठते, सोते प्रभु-नाम का सुमिरन करता है।। ६ ।।

बोलहु जसु जिहबा दिनु राति ॥ प्रभि अपनै जन कीनी दाति ॥ करहि भगति आतम कै चाइ ॥ प्रभ अपने सिउ रहहि समाइ ॥ जो होआ होवत सो जानै ॥ प्रभ अपने का हुकमु पछानै ॥ तिस की महिमा कउन बखानउ ॥ तिस का गुनु कहि एक न जानउ ॥ आठ पहर प्रभ बसहि हजूरे ॥ कहु नानक सेई जन पूरे ॥७॥

प्रभु ने अपने सेवक को यह दान स्वरूप दिया है कि उसकी जीभ दिन-रात प्रभु के यश का गान करती रहती है। प्रभु का सेवक हृदय की उमंग के साथ प्रभु की भक्ति करता है और प्रभु में ही लीन बना रहता है। जो हो चुका है और जो हो रहा है वह सब कुछ जानता है और उसे अपने प्रभु के हुकम की भली-भांति पहचान होती है। उसकी महिमा का बखान कौन कर सकता है। उसके एक गुण का भी बखान नहीं किया जा सकता। हे नानक, वे ही पूर्ण सेवक हैं जो आठों प्रहर प्रभु के साथ ही बने रहते हैं।। ७ ।।

मन मेरे तिन की ओट लेहि ॥ मनु तनु अपना तिन जन देहि ॥ जिनि जनि अपना प्रभू पछाता ॥ सो जनु सरब थोक का दाता ॥ तिस की सरनि सरब सुख पावहि ॥ तिस कै दरसि सभ पाप मिटावहि ॥ अवर सिआनप सगली छाडु ॥ तिसु जन की तू सेवा लागु ॥ आवनु जानु न होवी तेरा ॥ नानक तिसु जन के पूजहु सद पैरा ॥८॥१७॥

हे मेरे मन, उनके चरण पकड़ और अपना हृदय और शरीर ऐसे सेवकों को अर्पण कर दे। जिस सेवक ने अपने प्रभु को पहचान लिया है वह सेवक सभी पदार्थों का दाता है। उसकी शरण में सभी सुख प्राप्त होते हैं और उसके दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। तू अपनी समस्त अन्य चतुराईयों को छोड़ दे और ऐसे प्रभु-सेवकों की सेवा में लीन हो जा। हे नानक, ऐसे सेवकों के चरणों की वन्दना सदैव करो जिससे तुम्हारा आवागमन समाप्त हो जाएगा।। ८ ।। १७ ।।

सलोकु ॥ सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउ ॥ तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ ॥१॥

सत्य प्रभु को जानने वाले का ही नाम सत्गुरु है। हे नानक, प्रभु के गुण गाते हुए ऐसे सद्गुरु की संगत में ही शिष्यों का उद्धार होता है।।

असटपदी ॥ सतिगुरु सिख की करै प्रतिपाल ॥ सेवक कउ गुरु सदा दइआल ॥ सिख की गुरु दुरमति मलु हिरै ॥ गुर बचनी हरि नामु उचरै॥ सतिगुरु सिख के बंधन काटै ॥ गुर का सिखु बिकार ते हाटै ॥ सतिगुरु सिख कउ नाम धनु देइ ॥ गुर का सिखु वडभागी हे ॥ सतिगुरु सिख का हलतु पलतु सवारै ॥ नानक सतिगुरु सिख कउ जीअ नालि समारै ॥१॥

सच्चा गुरु अपने शिष्य का पालन पोषण करता है और अपने सेवक पर सदैव दयालु बना रहता है। गुरु शिष्य की दुर्मति रूपी मल को धो देता है और गुरु के वचनों के माध्यम से शिष्य भी हरि-नाम का उच्चारण करता है। यदि गुरु का शिष्य अपने आपको विकारों से दूर कर ले तो सच्चा गुरु अपने शिष्य के बन्धनों को काट देता है। गुरु का

शिष्य भाग्यशाली होता है जिसे सच्चा गुरु नाम रूपी धन प्रदान करता है। सच्चा गुरु सिक्ख का यह लोक एवं परलोक सँवार देता है और हे नानक, सच्चा गुरु ही पूरे मन से शिष्य की सम्भाल करता है।। १ ।।

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै ॥ गुर की आगिआ मन महि सहै ॥ आपस कउ करि कछु न जनावै ॥ हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै ॥ मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥ तिसु सेवक के कारज रासि ॥ सेवा करत होइ निहकामी ॥ तिस कउ होत परापति सुआमी ॥ अपनी क्रिपा जिसु आपि करेइ ॥ नानक सो सेवकु गुर की मति लेइ ॥२॥

जो सेवक गुरु के घर में रहते हुए गुरु की आज्ञा को मन से स्वीकार करता है, अपने आप को किसी तरह भी जनवाता नहीं, हृदय से सदैव प्रभु-नाम का सुमिरन करता है तथा अपने मन प्राण को सच्चे गुरु के पास बेच देता है, ऐसे सेवक के सभी कार्य सँवर जाते हैं। सेवा करते हुए जो फल की इच्छा नहीं रखता वह प्रभु को पा लेता है। जिस पर प्रभु स्वयं कृपा करता है, हे नानक, वही सेवक गुरु की शिक्षा को जीवन में धारण करता है ।। २ ।।

बीस बिसवे गुर का मनु मानै ॥ सो सेवकु परमेसुर की गति जानै ॥ सो सतिगुरु जिसु रिदै हरि नाउ ॥ अनिक बार गुर कउ बलि जाउ ॥ सरब निधान जीअ का दाता ॥ आठ पहर पारब्रहम रंगि राता ॥ ब्रहम महि जनु जन महि पारब्रहम ॥ एकहि आपि नही कछु भरमु ॥ सहस सिआनप लइआ न जाईऐ ॥ नानक ऐसा गुरु बडभागी पाईऐ ॥३॥

जो सेवक पूर्ण रूप से गुरु के मन को प्रसन्न कर लेता है वही परमेश्वर की गति को पहचान जाता है। वही सच्चा गुरु है जिसके हृदय में प्रभु-नाम है; मैं ऐसे गुरु पर अनेकों बार बलिहारी जाता हूँ। प्रभु ही जीवन देने वाला है और प्रत्येक वस्तु का भण्डार है। सच्चा गुरु आठों प्रहर परमात्मा के रंग में रंगा रहता है। प्रभु का सेवक प्रभु में, और प्रभु सेवक में बसता है। इसमें तनिक भी भ्रम नहीं है कि ये दोनों एक ही हैं। हजारों चतुराईयों के फलस्वरूप भी गुरु प्राप्त नहीं होता और हे नानक, बड़े भाग्य से ही प्रभु का सेवक रूपी गुरु मिलता है।। ३ ।।

सफल दरसनु पेखत पुनीत ॥ परसत चरन गति निर्मल रीति ॥ भेटत संगि राम गुन रवे ॥ पारब्रहम की दरगह गवे ॥ सुनि करि बचन करन आघाने॥ मनि संतोखु आतम पतीआने ॥ पूरा गुरु अख्यओ जा का मंत्र ॥ अंम्रित द्रिसटि पेखै होइ संत ॥ गुण बिअंत कीमति नही पाइ ॥ नानक जिसु भावै तिसु लए मिलाइ ॥४॥

ऐसे गुरु का दर्शन धन्य है और उसे देखने मात्र से व्यक्ति पवित्र हो जाता है। उनके चरण-स्पर्श से व्यक्ति का कार्य-व्यवहार और आचरण निर्मल हो जाता है। व्यक्ति उनकी संगत में प्रभु के गुणों में रमण करता है और ऐसा करते हुए प्रभु के दरबार में जा पहुँचता है। गुरु के वचनों से कान तृप्त हो जाते हैं, मन संतुष्ट हो जाता है और आत्मा आनन्दित हो उठती है। गुरु पूर्ण होता है और उसका उपदेश भी अक्षय अर्थात कभी नाश न होने वाला है। जिसे वह अपनी अमृत-दृष्टि से देखता है वही एक शान्त व्यक्ति बन जाता है। गुरु के अनन्त गुणों की कीमत को आंका नहीं जा सकता। हे नानक, जो प्रभु गुरु को अच्छा लगता है उसी को वह अपने साथ मिला लेता है।। ४ ।।

जिहबा एक उसतति अनेक ॥ सति पुरख पूरन बिबेक ॥ काहू बोल न पहुचत प्रानी ॥ अगम अगोचर प्रभ निरबानी ॥ निराहार निरवैर सुखदाई॥ ता की कीमति किनै न पाई ॥ अनिक भगत बंदन नित करहि ॥ चरन कमल हिरदै सिमरहि ॥ सद बलिहारी सतिगुर अपने ॥ नानक जिसु प्रसादि ऐसा प्रभु जपने ॥५॥

जीव तो एक है परन्तु प्रभु के गुण अनेक हैं। वह पूर्ण विवेकशील, सच्चा एवं बलशाली है। किसी भी कथन से प्राणी उस तक पहुँच नहीं सकता क्योंकि वह प्रभु अगम्य, अगोचर एवं पवित्रतम है। वह आहारों के आश्रय से परे, निरवैर और सुख देने वाला है। उसकी कीमत अर्थात ओर-छोर कोई भी आंक नहीं पाया है। अनेकों भक्त सदैव उसकी वन्दना करते हुए उसके चरण-कमलों का हृदय में ध्यान करते हैं। नानक ऐसे सच्चे गुरु पर सदैव बलिहारी जाता है जिसकी कृपा स्वरूप वह ऐसे प्रभु का सुमिरन करता है।। ५ ।।

इहु हरि रसु पावै जनु कोइ ॥ अंम्रितु पीवै अमरु सो होइ ॥ उसु पुरख का नाही कदे बिनास ॥ जा कै मनि प्रगटे गुनतास ॥ आठ पहर हरि का नामु लेइ ॥ सचु उपदेसु सेवक कउ देइ ॥ मोह माइआ कै संगि न लेपु ॥ मन महि राखै हरि हरि एकु ॥ अंधकार दीपक परगासे ॥ नानक भरम मोह दुख तह ते नासे ॥६॥

यह प्रभु-रस किसी बिरले को ही प्राप्त होता है और जो इस अमृत को पीता है अमर हो जाता है। जिसके हृदय में गुणों का खज़ाना प्रकट हो उठता है उस व्यक्ति का कभी भी विनाश नहीं होता। आठों प्रहर ही वह प्रभु का नाम लेता रहता है और अपने सेवक को सत्य का उपदेश देता रहता है। वह सांसारिक मोह-माया में लिप्त नहीं होता और मन में केवल एक ही प्रभु को टिकाए रहता है। माया रूपी घोर अन्धकार में उसके लिए ज्ञान-दीपक प्रकाशित हो उठता है और हे नानक, भ्रम, मोह, दुख उसके पास से भाग खड़े होते हैं।। ६ ।।

तपति माहि ठाढि वरताई ॥ अनदु भइआ दुख नाठे भाई ॥ जनम मरन के मिटे अंदेसे ॥ साधू के पूरन उपदेसे ॥ भउ चूका निरभउ होइ बसे ॥ सगल बिआधि मन ते खै नसे ॥ जिस का सा तिनि किरपा धारी ॥ साधसंगि जपि नामु मुरारी ॥ थिति पाई चूके भ्रम गवन ॥ सुनि नानक हरि हरि जसु स्रवन ॥७॥

हे भाई, साधु पुरुष के पूर्ण उपदेश के फलस्वरूप सांसारिक तपन में भी ठण्डक आ जाती है, आनन्द ही आनन्द हो जाता है और दुख भाग जाते हैं तथा जन्म-मरण का भय चुक जाता है और व्यक्ति निर्भय होकर स्थिर बना रहता है। सम्पूर्ण व्याधियां मन चित्त से समाप्त होकर भाग जाती हैं। वह साधु पुरुष जिस प्रभु का है उसी ने उस पर कृपा की और वह प्रभु के नाम का जाप करता है। हे नानक, हरि यश को कानों से सुनने मात्र से व्यक्ति को स्थिरता प्राप्त हो जाती है और उसके भ्रम समाप्त होकर उसका आवागमन नष्ट हो जाता है।। ७ ।।

निरगुनु आपि सरगुनु भी ओही ॥ कला धारि जिनि सगली मोही ॥ अपने चरित प्रभि आपि बनाए ॥ अपुनी कीमति आपे पाए ॥ हरि बिनु दूजा नाही कोइ ॥ सरब निरंतरि एको सोइ ॥ ओति पोति रविआ रूप रंग ॥ भए प्रगास साध कै संग ॥ रचि रचना अपनी कल धारी ॥ अनिक बार नानक बलिहारी ॥८॥१८॥

गुणातीत एवं सभी गुणों वाला वह स्वयं ही है जिसने अपनी शक्ति से सारी सृष्टि को धारण करके उसे सम्मोहित कर रखा है। प्रभु ने ही अपने कौतुकों की रचना ही है और अपना मूल्य केवल वह आप ही जानता है। प्रभु के बिना अन्य दूसरा कोई नहीं है और वह एक प्रभु ही निरन्तर रूप से सब में व्याप्त है। प्रत्येक रूप रंग में वह ओत-प्रोत होकर रमण कर रहा है और साधसंगत में ही वह प्रकट होता है। प्रभु ने रचना बनाकर अपनी शक्ति इस रचना में समाहित की है। नानक उस प्रभु पर अनेकों बार बलिहारी जाता है।। ८ ।। १८ ।।

सलोकु ॥ साथि न चालै बिनु भजन बिखिआ सगली छारु ॥ हरि हरि नामु कमावना नानक इहु धनु सारु ॥१॥

प्रभु के सुमिरन के बिना साथ कुछ नहीं जाता क्योंकि सभी विषय-विकार मात्र राख का ढेर ही हैं। हे नानक, प्रभु नाम को जीवन में उतारना ही वास्तव में सारी धन-सम्पदा का सार है।। १ ।।

असटपदी ॥ संत जना मिलि करहु बीचारु ॥ एकु सिमरि नाम आधारु ॥

अवरि उपाव सभि मीत बिसारहु ॥ चरन कमल रिद महि उरि धारहु ॥ करन कारन सो प्रभु समरथु ॥ द्रिड़ु करि गहहु नामु हरि वथु ॥ इहु धनु संचहु होवहु भगवंत ॥ संत जना का निरमल मंत ॥ एक आस राखहु मन माहि ॥ सरब रोग नानक मिटि जाहि ॥१॥

शान्त पुरुषों की संगत में प्रभु का चिन्तन करो और उसी एक का सुमिरन करते हुए प्रभु-नाम को आधार बनाओ। हे मित्र, अन्य सभी उपायों का त्याग करके हृदय में प्रभु के चरण-कमलों को धारण करो। वह प्रभु ही सब कुछ करने कराने में समर्थ है इसलिए प्रभु-नाम रूपी पदार्थ को दृढ़ता से पकड़ लेना चाहिए। इस धन का संचय करते हुए भाग्यवान बन जाओ, यही सन्तजनों का निर्मल उपदेश है। हे नानक, यदि मन में केवल एक पर ही आशा लगाए रहोगे तो तुम्हारे सभी रोग मिट जाएंगे।। १ ।।

जिसु धन कउ चारि कुंट उठि धावहि ॥ सो धनु हरि सेवा ते पावहि ॥ जिसु सुख कउ नित बाछहि मीत ॥ सो सुखु साधू संगि परीति ॥ जिसु सोभा कउ करहि भली करनी ॥ सा सोभा भजु हरि की सरनी ॥ अनिक उपावी रोगु न जाइ ॥ रोगु मिटै हरि अवखधु लाइ ॥ सरब निधान महि हरि नामु निधानु ॥ जपि नानक दरगहि परवानु ॥२॥

जिन धन के लिए तू चारों दिशाओं में उठ दौड़ता है वह धन तुझे प्रभु की सेवा से ही प्राप्त होगा। जिस शोभा प्राप्ति के लिए तू सदैव कामना करता है वह सुख तुझे साधु-पुरुषों से प्रेम करने पर ही प्राप्त होगा। जिस शोभा प्राप्ति के लिए तू भले कर्म करता है वह सम्मान दौड़ कर प्रभु की शरण में आ जाने पर तुझे प्राप्त हो जाएगा। जो रोग अनेकों उपायों से नहीं जाता वह रोग प्रभु-नाम रूपी औषधि को लेने से मिट जाता है। सभी खज़ानों में से प्रभु-नाम का भण्डार ही श्रेष्ठ खज़ाना है। हे नानक, तू प्रभु का जाप जप जिससे तू प्रभु के दरबार में स्वीकृत हो जाएगा।। २ ।।

मनु परबोधहु हरि कै नाइ ॥ दह दिसि धावत आवै ठाइ ॥ ता कउ बिघनु न लागै कोइ ॥ जा कै रिदै बसै हरि सोइ ॥ कलि ताती ठाँढा हरि नाउ ॥ सिमरि सिमरि सदा सुख पाउ ॥ भउ बिनसै पूरन होइ आस ॥ भगति भाइ आतम परगास ॥ तितु घरि जाइ बसै अबिनासी ॥ कहु नानक काटी जम फासी ॥३॥

अपने मन को प्रभु-नाम के द्वारा प्रबुद्ध करो ताकि दसों दिशाओं में भटकने वाला यह मन अपने निज-स्वरूप में स्थिर हो जाए। जिसके हृदय में प्रभु आन बसता है उसके सामने कोई भी रुकावट नहीं आती। ताप-युक्त इस कलियुग में केवल प्रभु-नाम ही ठण्डक

देने वाला है जिसका सुमिरन करके हे जीव, तू सदैव सुख को प्राप्त कर। तेरा भय विनष्ट हो जाएगा, तेरी आशा पूरी हो जाएगी और भावना से की हुई भक्ति के फलस्वरूप तेरी आत्मा प्रकाशित हो उठेगी। तू अविनाशी बनकर उस प्रभु के स्थान पर जा बसेगा और हे नानक, तेरा यम पाश कट जाएगा।। ३ ।।

ततु बीचारु कहै जनु साचा ॥ जनमि मरै सो काचो काचा ॥ आवा गवनु मिटै प्रभ सेव ॥ आपु तिआगि सरनि गुरदेव ॥ इउ रतन जनम का होइ उधारु ॥ हरि हरि सिमरि प्रान आधारु ॥ अनिक उपाव न छूटनहारे ॥ सिंम्रिति सासत बेद बीचारे ॥ हरि की भगति करहु मनु लाइ ॥ मनि बंछत नानक फल पाइ ॥४॥

सच्चा व्यक्ति तत्त्व-विचार का ही उपदेश देता है परन्तु जो स्वयं जन्म-मरण के चक्र में है वह कच्चे से भी कच्चा अर्थात झूठा है। प्रभु की सेवा से ही आवागमन मिटता है और हे जीव, तू अहंकार का त्याग करके गुरु के चरण ग्रहण कर ले। इस प्रकार अमूल्य रत्न रूपी इस जन्म का उद्धार हो जाएगा। हे जीव, तू उस प्रभु का सुमिरन कर जो सब का प्राण आधार है। अनेकों उपायों, स्मृतियों शास्त्रों एवं वेदों के (पाण्डित्यपूर्ण) चिन्तन से भी व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता। तू हृदय से प्रभु की भक्ति कर; हे नानक, तू मनोवांछित फल प्राप्त कर लेगा।। ४ ।।

संगि न चालसि तेरै धना ॥ तूं किआ लपटावहि मूरख मना ॥ सुत मीत कुटम्ब अरु बनिता ॥ इन ते कहहु तुम कवन सनाथा ॥ राज रंग माइआ बिसथार ॥ इन ते कहहु कवन छुटकार ॥ असु हसती रथ असवारी ॥ झूठा डंफु झूठु पासारी ॥ जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना ॥ नामु बिसारि नानक पछुताना ॥५॥

तेरे साथ यह धन नहीं जाएगा इसलिए हे मूर्ख मन, तू इससे क्यों लिपटा हुआ है। पुत्र, मित्र, कुटम्ब, स्त्री आदि से बताओ भला कौन लाभ प्राप्त कर सका है? राज, विलास और माया के अनेकों प्रकार के विस्तार से भला कौन मुक्त रह सका है। घोड़े, हाथी और रथों की सवारी सब झूठे प्रपंच और प्रसार हैं। मूर्ख व्यक्ति उसको नहीं बूझता जिसने ये सब दिए हैं और अन्ततः हे नानक, प्रभु-नाम को भुलाकर व्यक्ति पछताता है।। ५ ।।

गुर की मति तूं लेहि इआने ॥ भगति बिना बहु डूबे सिआने ॥ हरि की भगति करहु मन मीत ॥ निरमल होइ तुमारो चीत ॥ चरन कमल राखहु मन माहि ॥ जनम जनम के किलबिख जाहि ॥ आपि जपहु अवरा नामु जपावहु ॥ सुनत कहत रहत गति पावहु ॥ सार भूत सति हरि को नाउ ॥ सहजि सुभाइ

नानक गुन गाउ ॥६॥

हे भोले जीव, तू गुरु का उपदेश ग्रहण कर क्योंकि प्रभु की भक्ति के बिना अनेकों चतुर व्यक्ति डूब चुके हैं। हे मित्र, मन से प्रभु की भक्ति करो जिससे तुम्हारा चित्त निर्मल हो जाएगा। प्रभु के चरण कमल मन में टिकाए रहो जिससे जन्मों जन्मों के तुम्हारे पाप छूट जाएंगे। स्वयं सुमिरन करो और अन्यों से भी प्रभु नाम का जाप कराओ। सुनने, कहने और उसके अनुकूल जीवन बिताने से तू परमगति पा लेगा। प्रभु का नाम ही सभी तत्त्वों का सार-तत्त्व हैं। हे नानक, सहजभाव से ही प्रभु का गुणानुवाद करो।। ६ ।।

गुन गावत तेरी उतरसि मैलु ॥ बिनसि जाइ हउमै बिखु फैलु ॥ होहि अचिंतु बसै सुख नालि ॥ सासि ग्रासि हरि नामु समालि ॥ छाडि सिआनप सगली मना ॥ साधसंगि पावहि सचु धना ॥ हरि पूंजी संचि करहु बिउहारु॥ ईहा सुखु दरगह जैकारु ॥ सरब निरंतरि एको देखु ॥ कहु नानक जा कै मसतकि लेखु ॥७॥

प्रभु गुणानुवाद से तेरी मलीनता समाप्त हो जाएगी और तेरे अन्तर्मन में अहंकार रूपी फैला हुआ विष नष्ट हो जाएगा। तू अपने हर श्वास और ग्रास के साथ प्रभु-नाम की आराधना कर जिससे तू सुखपूर्वक चिन्ता मुक्त बना रहेगा। हे मन, तू सभी चतुराईयों को छोड़ दे और इस प्रकार तू साधसंगत में सत्य रूपी धन को प्राप्त कर लेगा। तू हरि-नाम रूपी पूंजी का ही संचय कर और उसी का ही व्यापार कर। तुझे यहाँ भी सुख मिलेगा और प्रभु के समक्ष भी तेरी जय जयकार होगी। नानक कहता है कि जिसके मस्तक पर प्रभु द्वारा लेख लिखे हुए हैं वही एक प्रभु को निरन्तर रूप में सब में देखता है।। ७ ।।

एको जपि एको सालाहि ॥ एकु सिमरि एको मन आहि ॥ एकस के गुन गाउ अनंत ॥ मनि तनि जापि एक भगवंत ॥ एको एकु एकु हरि आपि ॥ पूरन पूरि रहिओ प्रभु बिआपि ॥ अनिक बिसथार एक ते भए ॥ एकु अराधि पराछत गए ॥ मन तन अंतरि एकु प्रभु राता ॥ गुर प्रसादि नानक इकु जाता ॥८॥१९॥

केवल एक प्रभु नाम का ही जाप कर और केवल उसी का ही गुणानुवाद कर। एक प्रभु का ही सुमिरन कर और केवल उस एक की ही आकांक्षा मन में रख। उस एक ही प्रभु के अनन्त गुणों का गायन करो और तन मन से उस एक ईश्वर का ही जाप करो। वह एक ही प्रभु स्वयं अपने आप में एक ही है। वही पूर्ण प्रभु सभी स्थानों में पूरी तरह व्याप्त है। जगत के अनेकों विस्तार उस एक प्रभु से ही हुए हैं और एक प्रभु की आराधना से ही सभी पाप चले जाते हैं। गुरु की कृपा से नानक ने उस एक प्रभु को जान लिया

है और उसका मन, तन और चित्त केवल एक प्रभु में ही लीन है।। ८ ।। १६ ।।

सलोकु ॥ फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ ॥ नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ ॥१॥

भटकता घूमता हुआ, हे प्रभु, मैं तेरी शरण में आन पड़ा हूँ। हे प्रभु, नानक की यही विनती है कि उसे अपनी भक्ति में लीन कर ले।। १ ।।

असटपदी ॥ जाचक जनु जाचै प्रभ दानु ॥ करि किरपा देवहु हरि नामु ॥ साध जना की मागउ धूरि ॥ पारब्रहम मेरी सरधा पूरि ॥ सदा सदा प्रभ के गुन गावउ ॥ सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ ॥ चरन कमल सिउ लागै प्रीति ॥ भगति करउ प्रभ की नित नीति ॥ एक ओट एको आधारु ॥ नानकु मागै नामु प्रभ सारु ॥१॥

यह याचक, तेरा सेवक बनकर तुझसे हे प्रभु, एक दान मांगता है कि उसे कृपा करके हरि-नाम प्रदान कर दो। साधुजन की मैं चरण-धूलि चाहता हूँ; हे प्रभु, मेरी यह इच्छा पूरी कर दो। मैं सदैव प्रभु के गुण गाता रहूँ और हर श्वास-प्रश्वास के साथ हे प्रभु, तेरी आराधना करता रहूँ। तेरे चरण-कमल के साथ मेरी प्रीति बनी रहे और मैं सदैव प्रभु की भक्ति करता रहूँ। हे प्रभु, नानक सार-तत्त्व के रूप में प्रभु का नाम मांगता है क्योंकि उसे केवल एक प्रभु का ही आसरा है और वह एक ही उसका आधार है।। १ ।।

प्रभ की द्रिसटि महा सुखु होइ ॥ हरि रसु पावै बिरला कोइ ॥ जिन चाखिआ से जन त्रिपताने ॥ पूरन पुरख नही डोलाने ॥ सुभर भरे प्रेम रस रंगि ॥ उपजै चाउ साध कै संगि ॥ परे सरनि आन सभ तिआगि ॥ अंतरि प्रगास अनदिनु लिव लागि ॥ बडभागी जपिआ प्रभु सोइ ॥ नानक नामि रते सुखु होइ ॥२॥

प्रभु की कृपा-दृष्टि से महासुख प्राप्त होता है जिसे कोई बिरला ही प्राप्त करता है। जिन सेवकों ने उसे चखा है वे तृप्त हो गए हैं और ऐसे पूर्ण पुरुष कभी भी अस्थिर नहीं होते। वे प्रभु के प्रेम-रस में पूर्ण रूप से भरे हुए होते हैं और साधसंगत में उनके हृदय में उत्साह पैदा होता है। वे अन्य सब को छोड़कर प्रभु की शरण में आ जाते हैं। उनका हृदय प्रकाशित हो उठता है और दिन-रात वे अपनी सुरति प्रभु में लगाए रहते हैं। अच्छे भाग्य से प्रभु का जाप किया जाता है और हे नानक, जो प्रभु नाम में लीन होते हैं उन्हें सुख प्राप्त होता है।। २ ।।

सेवक की मनसा पूरी भई ॥ सतिगुर ते निरमल मति लई ॥ जन कउ प्रभु

होइओ दइआलु ॥ सेवकु कीनो सदा निहालु ॥ बंधन काटि मुकति जनु भइआ ॥ जनम मरन दूखु भ्रमु गइआ ॥ इछ पुनी सरधा सभ पूरी ॥ रवि रहिआ सद संगि हजूरी ॥ जिस का सा तिनि लीआ मिलाइ ॥ नानक भगती नामि समाइ ॥३॥

प्रभु-सेवक की इच्छा पूर्ण हो गई हैं और सच्चे गुरु से उसने पवित्र शिक्षा ले ली है। सेवक पर प्रभु दयालु हो गया है और उसने उसे तृप्त कर दिया है। बन्धनों को तोड़कर प्रभु-सेवक मुक्त हो गया है और उसका भ्रम तथा जन्म-मरण का दुख दूर हो गया है। उस की इच्छा एवं श्रद्धा दोनों पूरी हो गई हैं और अब वह सदैव प्रभु के समक्ष बना रहता है। वह जिसका था उसने उसे अपने साथ मिला लिया है और हे नानक, अब वह भक्ति और प्रभु-नाम में ही लीन बना हुआ है।। ३ ।।

सो किउ बिसरै जि घाल न भानै ॥ सो किउ बिसरै जि कीआ जानै ॥ सो किउ बिसरै जिनि सभु किछु दीआ ॥ सो किउ बिसरै जि जीवन जीआ ॥ सो किउ बिसरै जि अगनि महि राखै ॥ गुर प्रसादि को बिरला लाखै ॥ सो किउ बिसरै जि बिखु ते काढै ॥ जनम जनम का टूटा गाढै ॥ गुरि पूरै ततु इहै बुझाइआ ॥ प्रभु अपना नानक जन धिआइआ ॥ ४॥

उसे क्यों भुलाया जाए जो प्राणी की की हुई मेहनत को भुलाता नहीं। उसे क्यों भुलाया जाए जो उसकी की हुई सेवा को पूरी तरह जानता-मानता है। उसे क्यों भुलाया जाए जिसने सब कुछ दिया है और जो सभी जीवों का प्राण है। उसे क्यों भुलाया जाए जो अग्नि में भी रक्षा करता है। गुरु की कृपा से उसे कोई बिरला ही देख पाता है। उसे क्यों भुलाएं जो विकारों के विष से निकाल लेता है और जन्म-जन्म के बिछुड़ों को मिला लेता है। पूर्ण गुरु ने मुझे यही सार तत्त्व समझाया है कि हे नानक, प्रभु का सेवक केवल अपने प्रभु की ही आराधना करता है।। ४ ।।

साजन संत करहु इहु कामु ॥ आन तिआगि जपहु हरि नामु ॥ सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु ॥ आपि जपहु अवरह नामु जपावहु ॥ भगति भाइ तरीऐ संसारु ॥ बिनु भगती तनु होसी छारु ॥ सरब कलिआण सूख निधि नामु॥ बूडत जात पाए बिस्रामु ॥ सगल दूख का होवत नासु ॥ नानक नामु जपहु गुनतासु ॥५॥

हे सज्जन सन्तो, केवल यही काम करो कि अन्य सब को त्याग कर प्रभु-नाम का ही उच्चारण करो। बार बार प्रभु का सुमिरन करो और सुख प्राप्त करो। स्वयं भी जाप करो और अन्यों को भी उसका नाम जपाओ। भक्ति-भावना से ही संसार-सागर को तैरा

जाता है और सुमिरन के बिना यह राख बन जाता है। प्रभु-नाम ही सभी प्रकार के कल्याणकारी सुखों का भण्डार है। डूबता हुआ व्यक्ति भी इसके कारण शान्ति प्राप्त कर लेता है। प्रभु-नाम से सभी दुखों का नाश हो जाता है इसलिए हे नानक, गुणों के स्वामी प्रभु के नाम का ही जाप करो।। ५ ।।

उपजी प्रीति प्रेम रसु चाउ ॥ मन तन अंतरि इही सुआउ ॥ नेत्रहु पेखि दरसु सुखु होइ ॥ मनु बिगसै साध चरन धोइ ॥ भगत जना कै मनि तनि रंगु ॥ बिरला कोऊ पावै संगु ॥ एक बसतु दीजै करि मइआ ॥ गुर प्रसादि नामु जपि लइआ ॥ ता की उपमा कही न जाइ ॥ नानक रहिआ सरब समाइ ॥६॥

प्रभु-प्रेम का रस, उत्साह, प्रीति मेरे मन में उत्पन्न हो गए हैं। मेरे मन तन का यही लक्ष्य है। अपनी आंखों से प्रभु का दर्शन कर मैं सुखी होता हूँ और साधु पुरुषों के चरण धोकर मेरा मन प्रसन्न हो उठता है। भक्तजनों के तन और मन में प्रभु-प्रीति होती है और कोई बिरला व्यक्ति ही उनकी संगत प्राप्त करता है। हे प्रभु, मुझे एक ही वस्तु कृपा करके दे दो कि गुरु की कृपा से मैं नाम का जाप करूँ। हे नानक, जो प्रभु सब में समाया हुआ है उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती।। ६ ।।

प्रभ बखसंद दीन दइआल ॥ भगति वछल सदा किरपाल ॥ अनाथ नाथ गोबिंद गुपाल ॥ सरब घटा करत प्रतिपाल ॥ आदि पुरख कारण करतार॥ भगत जना के प्रान अधार ॥ जो जो जपै सु होइ पुनीत ॥ भगति भाइ लावै मन हीत ॥ हम निरगुनीआर नीच अजान ॥ नानक तुमरी सरनि पुरख भगवान ॥७॥

प्रभु क्षमाशील और दीनों पर दया करने वाला है। वह भक्त वत्सल है, सदैव कृपालु है, अनाथों का नाथ है और जीवों को धारण करने और उनका पालन करने वाला है। वह सभी जीवों का पोषण करने वाला है और वह कर्ता आदि पुरुष सब का कारण रूप है। वह भक्तजनों के प्राणों का आधार है। जो जो उसका सुमिरन करता है वह पवित्र हो जाता है और अपनी भक्ति भावना को प्रभु की सेवा में मन से लगाता है। नानक कहता है कि हे प्रभु, हम गुण-विहीन, नीच एवं अनजान हैं और तुम्हारी शरण में आन पड़े हैं।। ७ ।।

सरब बैकुंठ मुकति मोख पाए ॥ एक निमख हरि के गुन गाए ॥ अनिक राज भोग बडिआई ॥ हरि के नाम की कथा मनि भाई ॥ बहु भोजन कापर संगीत ॥ रसना जपती हरि हरि नीत ॥ भली सु करनी सोभा धनवंत ॥ हिरदै बसे पूरन गुर मंत ॥ साधसंगि प्रभ देहु निवास ॥ सरब सूख नानक

परगास ॥८॥२०॥

एक क्षण भर भी प्रभु के गुण गाने से व्यक्ति को सभी स्वर्ग, मुक्ति एवं मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं। जिसे प्रभु-नाम का वर्णन मन में अच्छा लगता है उसे अनेकों राज, भोग के पदार्थ और बड़प्पन प्राप्त हो जाते हैं। जिसकी जीभ सदैव प्रभु-नाम का जाप करती है उसे अनेकों प्रकार के भोजन, वस्त्र एवं संगीत का रस प्राप्त होता है। जिसके हृदय में पूर्ण, गुरु का उपदेश बस जाता है उसके कार्य, शोभा आदि सब भले होते हैं और वही वास्तव में धनवान होता है। हे प्रभु, साधु व्यक्तियों की संगत प्रदान कर जिससे नानक के मन में सभी सुख प्रकट हो उठें।। ८ ।। २० ।।

सलोकु ॥ सरगुन निरगुन निरंकार सुंन समाधी आपि ॥ आपन कीआ नानका आपे ही फिरि जापि ॥१॥

स्वयं ही सगुण एवं निगुर्ण प्रभु शून्य समाधि में स्थित बना रहता है। हे नानक, सब कुछ उसका अपना ही किया हुआ है और पुनः वह अपनी आराधना भी स्वयं ही करता है।। १ ।।

असटपदी ॥ जब अकारु इहु कछु न द्रिसटेता ॥ पाप पुंन तब कह ते होता॥ जब धारी आपन सुंन समाधि ॥ तब बैर बिरोध किसु संगि कमाति ॥ जब इस का बरनु चिहनु न जापत ॥ तब हरख सोग कहु किसहि बिआपत ॥ जब आपन आप आपि पारब्रहम ॥ तब मोह कहा किसु होवत भरम ॥ आपन खेलु आपि वरतीजा ॥ नानक करनैहारु न दूजा ॥१॥

जब संसार का आकार कुछ भी नहीं दिखाई देता था तब भला पाप और पुण्य करने वाला कौन था। जब प्रभु शून्य समाधि में ही लीन था तब भला शत्रुता और विरोध किसका किया जाता था। जब व्यक्ति का न तो कोई वर्ण था और न ही कोई चिन्ह था तब भला हर्ष और शोक किसे होता था। जब परब्रह्म प्रभु स्वयं ही सब कुछ था तब किसे भ्रम और किसे मोह होता था। उसने अपना खेल खुद ही फैलाया हुआ है। हे नानक, उसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा कुछ कर सकने वाला नहीं है।। १ ।।

जब होवत प्रभ केवल धनी ॥ तब बंध मुकति कहु किस कउ गनी ॥ जब एकहि हरि अगम अपार ॥ तब नरक सुरग कहु कउन अउतार ॥ जब निरगुन प्रभ सहज सुभाइ ॥ तब सिव सकति कहहु कितु ठाइ ॥ जब आपहि आपि अपनी जोति धरै ॥ तब कवन निडरु कवन कत डरै ॥ आपन चलित आपि करनैहार ॥ नानक ठाकुर अगम अपार ॥२॥

जब केवल प्रभु ही मालिक था तब भला किसे बन्धन में पड़ा हुआ और किसे मुक्त हो चुका कहा जाता था। जब केवल एक प्रभु ही अगम्य और अपार था तब भला कौन नर्क और कौन स्वर्ग में आता जाता था। जब निर्गुण प्रभु अपने ही स्वभाव में सहज रूप से स्थित था तब शान्ति और तृष्णा भला कहां थे। जब उसकी ज्योति स्वयं उसने ही सब में रखी थी तब भला कौन भय-मुक्त और कौन भयभीत होता था। अपने कौतुकों की रचना करने वाला वह स्वयं एक ही है और हे नानक, वह प्रभु अगम्य एवं अपार है।। २ ।।

अबिनासी सुख आपन आसन ॥ तह जनम मरन कहु कहा बिनासन ॥ जब पूरन करता प्रभु सोइ ॥ तब जम की त्रास कहहु किसु होइ ॥ जब अबिगत अगोचर प्रभ एका ॥ तब चित्र गुप्त किसु पूछत लेखा ॥ जब नाथ निरंजन अगोचर अगाधे ॥ तब कउन छुटे कउन बंधन बाधे ॥ आपन आप आप ही अचरजा ॥ नानक आपन रूप आप ही उपरजा ॥३॥

जब अविनाशी सुख वाला प्रभु अपने आसन पर बिराजमान था तब जन्म मरण और विनाश भला कहां थे। जब प्रभु ही पूर्ण कर्ता एवं सर्जक था तब भला यम का डर किसे हो सकता था। जब अव्यक्त एवं अगोचर एक ही प्रभु था तब भला चित्रगुप्त किससे जीवन का लेखा-जोखा पूछता था। जब केवल अगोचर, निरंजन, एवं अगाध प्रभु ही था तब भला बन्धनों में कौन था और मुक्त कौन था। प्रभु अपने आप में स्वयं ही आश्चर्य रूप है; हे नानक, उसने अपने स्वरूप को स्वयं ही उत्पन्न किया है।। ३ ।।

जह निरमल पुरखु पुरख पति होता ॥ तह बिनु मैलु कहहु किआ धोता ॥ जह निरंजन निरंकार निरबान ॥ तह कउन कउ मान कउन अभिमान ॥ जह सरूप केवल जगदीस ॥ तह छल छिद्र लगत कहु कीस ॥ जह जोति सरूपी जोति संगि समावै ॥ तह किसहि भूख कवनु त्रिपतावै ॥ करन करावन करनैहारु ॥ नानक करते का नाहि सुमारु ॥४॥

जब जीवों का स्वामी केवल निर्मल प्रभु ही था तो भला वहां स्वच्छ करने और धोने के लिए क्या था? जब निरंजन, निराकार और निर्लिप्त प्रभु ही था तब किसका सम्मान और किसे अभिमान होता था। जब केवल जगत का स्वामी ही स्थित था तब धोखा फरेब आदि पाप किसे लगते थे। जब ज्योति स्वरूप प्रभु अपनी ज्योति में ही समाहित था तब बताओ किसे भूख लगती थी और कौन तृप्त था। करने कराने वाला एक प्रभु ही सब कुछ करने योग्य है; हे नानक, उस कर्ता का कोई ओर-छोर नहीं है।। ४ ।।

जब अपनी सोभा आपन संगि बनाई ॥ तब कवन माइ बाप मित्र सुत भाई॥ जह सरब कला आपहि परबीन ॥ तह बेद कतेब कहा कोऊ चीन ॥ जब

आपन आपु आपि उरि धारै ॥ तउ सगन अपसगन कहा बीचारै ॥ जह आपन ऊच आपन आपि नेरा ॥ तह कउन ठाकुरु कउनु कहीऐ चेरा ॥ बिसमन बिसम रहे बिसमाद ॥ नानक अपनी गति जानहु आपि ॥५॥

जब प्रभु ने अपनी शोभा अपने में ही लीन कर रखी थी तब माता, पिता, मित्र और भाई कौन थे। जब वह स्वयं ही सर्व कलाओं में प्रवीण था तब वेदों और कतेबों को भला कौन जानता था। जब अपने आप को उसने अपने हृदय में धारण किया हुआ था तब शकुन और अपशकुन का विचार भला कौन करता था। जब प्रभु स्वयं ही ऊँचा और स्वयं ही समीप था तब भला कौन मालिक था और किसे नौकर कहा जा सकता था। विस्मय रूपी विस्मयकारक वह प्रभु केवल विस्मय ही है। हे नानक, वह अपनी गति केवल आप ही जानता है।। ५ ।।

जह अछल अछेद अभेद समाइआ ॥ ऊहा किसहि बिआपत माइआ ॥ आपस कउ आपहि आदेसु ॥ तिहु गुण का नाही परवेसु ॥ जह एकहि एक एक भगवंता॥ तह कउनु अचिंतु किसु लागै चिंता ॥ जह आपन आपु आपि पतीआरा ॥ तह कउनु कथै कउनु सुननैहारा ॥ बहु बेअंत ऊच ते ऊचा ॥ नानक आपस कउ आपहि पहूचा ॥६॥

जब अछल, बींधा न जा सकने वाला और भेद-रहित प्रभु सर्वत्र समाया हुआ था तब उस समय माया भला किसे प्रभावित करती थी। जब शुद्ध प्रभु अपने आप को ही स्वयं प्रणाम करता था तो तीनों गुण उसमें प्रविष्ट ही नहीं हुए थे। जब केवल एक प्रभु ही था तो कौन चिन्ता-युक्त और कौन चिन्ता-विहीन था। जब प्रभु स्वयं अपने आप से सन्तुष्ट था तब उसके बारे में कौन कहने वाला और कौन सुनने वाला था। प्रभु अनन्त एवं ऊँचे से भी ऊँचा है और हे नानक, वह स्वयं ही अपने आप तक पहुँचता है।। ६ ।।

जह आपि रचिओ परपंचु अकारु ॥ तिहु गुण महि कीनो बिसथारु ॥ पापु पुंनु तह भई कहावत ॥ कोऊ नरक कोऊ सुरग बंछावत ॥ आल जाल माइआ जंजाल ॥ हउमै मोह भरम भै भार ॥ दूख सूख मान अपमान ॥ अनिक प्रकार कीओ बख्यान ॥ आपन खेलु आपि करि देखै ॥ खेलु संकोचै तउ नानक एकै ॥७॥

जब प्रभु ने ही प्रपंच युक्त इस संसार को आकार दिया तो उसने तीन गुणों के माध्यम से इस संसार का विस्तार किया। तब पाप और पुण्य की कहावत प्रारम्भ हुई और कोई नर्क और कोई स्वर्ग की कामना करने लगा। प्रभु ने माया के जाल-जंजाल, अहंकार, मोह, भ्रम और भय के बोझ जीवों पर लाद दिए। दुख, सुख, मान-अपमान का अनेकों

प्रकार से बखान प्रारम्भ हो गया। प्रभु स्वयं ही खेलता है और स्वयं ही अपने खेल को देखता है। जब वह स्वयं इस सारे खेल को समेट लेता है तो हे नानक, वह फिर एक ही बन जाता है।। ७ ।।

जह अबिगतु भगतु तह आपि ॥ जह पसरै पासारु संत परतापि ॥ दुहू पाख का आपहि धनी ॥ उन की सोभा उनहू बनी ॥ आपहि कउतक करै अनद चोज ॥ आपहि रस भोगन निरजोग ॥ जिसु भावै तिसु आपन नाइ लावै ॥ जिसु भावै तिसु खेल खिलावै ॥ बेसुमार अथाह अगनत अतोलै ॥ जिउ बुलावहु तिउ नानक दास बोलै ॥८॥२१॥

जहां कहीं भी उस अव्यक्त प्रभु का भक्त है वहां वह स्वयं आप ही होता है। जहां वह रचना का प्रसार करता है वहीं सन्तों का प्रताप भी स्थित होता है। दोनों पक्षों का मालिक वह स्वयं ही है और उसकी शोभा केवल उसी पर ही जमती है। वह स्वयं ही अनेकों कौतुक आनन्दपूर्वक करता है और स्वयं ही निर्लिप्त बना रहकर सभी रसों को भोगता है। जिसे चाहता है उसे अपने नाम में लीन कर लेता है और जिसे चाहता है उसे इस संसार के खेल में खेलने देता है। प्रभु अनन्त, अथाह अनगिनत और सभी तौलों से परे है। हे प्रभु, तू जैसा बुलवाता है तेरा दास नानक वैसा ही बोलता है।। ८ ।। २१ ।।

सलोकु ॥ जीअ जंत के ठाकुरा आपे वरतणहार ॥ नानक एको पसरिआ दूजा कह द्रिसटार ॥१॥

जीव-जन्तुओं का स्वामी प्रभु स्वयं ही सब में समाया हुआ है। हे नानक, उस एक का ही सब प्रसार है। दूसरा भला कहां दिखाई देता है।। १ ।।

असटपदी ॥ आपि कथै आपि सुननैहारु ॥ आपहि एकु आपि बिसथारु ॥ जा तिसु भावै ता स्रिसटि उपाए ॥ आपनै भाणै लए समाए ॥ तुम ते भिंन नही किछु होइ ॥ आपन सूति सभु जगतु परोइ ॥ जा कउ प्रभ जीउ आपि बुझाए ॥ सचु नामु सोई जनु पाए ॥ सो समदरसी तत का बेता ॥ नानक सगल स्रिसटि का जेता ॥१॥

वह स्वयं ही कथन करने वाला और स्वयं ही सुनने वाला है। वह आप ही एक और आप ही अनेक रूपों में है। जब उसे भाता है तो वह सृष्टि उत्पन्न करता है और अपनी इच्छा में ही उसे अपने में समा लेता है। हे प्रभु, तुम्हारे से भिन्न कुछ नहीं होता और अपने ही सूत्र में तुमने सारे जगत को पिरोया हुआ है। जिसे प्रभु स्वयं समझा देता है वही सेवक सत्य रूपी नाम प्राप्त कर लेता है। वही सेवक समदर्शी एवं तत्ववेत्ता कहलाता है। हे नानक, वही सारे संसार को जीत लेने वाला होता है।। १ ।।

जीअ जंत्र सभ ता कै हाथ ॥ दीन दइआल अनाथ को नाथु ॥ जिसु राखै तिसु कोइ न मारै ॥ सो मूआ जिसु मनहु बिसारै ॥ तिसु तजि अवर कहा को जाइ ॥ सभ सिरि एकु निरंजन राइ ॥ जीअ की जुगति जा कै सभ हाथि॥ अंतरि बाहरि जानहु साथि ॥ गुन निधान बेअंत अपार ॥ नानक दास सदा बलिहार ॥२॥

जीव-जन्तु सभी उसी के हाथ में हैं और वही दीनों पर दया करने वाला है तथा अनाथों का भी नाथ है। जिसका वह रक्षक है उसे कोई मार नहीं सकता है। मरा हुआ तो वह है जिसे प्रभु मन से भुला देता है। सब के सिर पर केवल एक ही निरंजन प्रभु है उसे छोड़कर भला अन्य किसके पास जाया जा सकता है। सारे जीवों की युक्तियां जिस प्रभु के वश में है उसे अन्दर बाहर साथ ही जानना चाहिए। दास नानक उस पर सदैव बलिहारी जाता है जो गुणों का भण्डार अनन्त एवं अपरंपर है।। २ ।।

पूरन पूरि रहे दइआल ॥ सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥ अपने करतब जानै आपि ॥ अंतरजामी रहिओ बिआपि ॥ प्रतिपालै जीअन बहु भाति ॥ जो जो रचिओ सु तिसहि धिआति ॥ जिसु भावै तिसु लए मिलाइ ॥ भगति करहि हरि के गुण गाइ ॥ मन अंतरि बिस्वासु करि मानिआ ॥ करनहारु नानक इकु जानिआ ॥३॥

वह पूर्ण दयालु प्रभु सर्वत्र व्याप्त है और सब पर कृपालु बना रहता है। अपने कामों को वह स्वयं ही जानता है और अन्तर्यामी प्रभु सब में व्याप्त है। अनेकों प्रकार से वह जीवों का पालन करता है और उसकी समस्त रचना उसी का सुमिरन करती है। जिसे वह चाहता है उसे अपने में मिला लेता है और वह भक्ति करता हुआ प्रभु का गुणानुवाद करता है। वह मन में भरोसा करके प्रभु को मानता है और हे नानक, उस एक प्रभु को ही कर्ता के रूप में जानता है।। ३ ।।

जनु लागा हरि एकै नाइ ॥ तिस की आस न बिरथी जाइ ॥ सेवक कउ सेवा बनि आई ॥ हुकमु बूझि परम पदु पाई ॥ इस ते ऊपरि नही बीचारु ॥ जाकै मनि बसिआ निरंकारु ॥ बंधन तोरि भए निरवैर ॥ अनदिनु पूजहि गुर के पैर॥ इह लोक सुखीए परलोक सुहेले ॥ नानक हरि प्रभि आपहि मेले ॥४॥

प्रभु का सेवक केवल एक नाम में ही लीन बना रहता है और उसकी आशा व्यर्थ नहीं जाती। सेवक को सेवा करना ही भला प्रतीत होता है और वह प्रभु के हुकम को बूझकर परमपद को प्राप्त कर लेता है। जिसके चित्त में परमात्मा आन बसता है। इससे ऊपर उसके लिए अन्य कोई चिन्तन नहीं है। वह बन्धनों को तोड़कर शत्रुभाव से मुक्त हो जाता है

और रात-दिन गुरु के चरणों की उपासना करता है। ऐसे व्यक्ति इस लोक में भी सुखी और परलोक में भी प्रसन्न बने रहते हैं। हे नानक, स्वामी प्रभु स्वयं ऐसे लोगों को अपने साथ मिला लेता है।। ४ ।।

साधसंगि मिलि करहु अनंद ॥ गुन गावहु प्रभ परमानंद ॥ राम नाम ततु करहु बीचारु ॥ दुलभ देह का करहु उधारु ॥ अंम्रित बचन हरि के गुन गाउ॥ प्रान तरन का इहै सुआउ ॥ आठ पहर प्रभ पेखहु नेरा ॥ मिटै अगिआनु बिनसै अंधेरा ॥ सुनि उपदेसु हिरदै बसावहु ॥ मन इछे नानक फल पावहु ॥५॥

साधसंगत में मिलकर आनन्दित बने रहो और परम आनन्द रूपी प्रभु के गुण गाते रहो। राम-नाम रूपी तत्त्व का चिन्तन करो और इस प्रकार इस दुर्लभ देह का उद्धार कर लो। अमृत वचनों के रूप में प्रभु के गुण गाओ क्योंकि प्राणों के उद्धार करने का केवल यही साधन है। आठों प्रहर परमात्मा को अपने पास ही देखो जिससे तुम्हारा अज्ञान मिट जाएगा और अन्धकार विनष्ट हो जाएगा। गुरु का उपदेश सुनो और उसे हृदय में धारण करो। इस प्रकार हे नानक, मनोवांछित फल प्राप्त हो जाएंगे।। ५ ।।

हलतु पलतु दुइ लेहु सवारि ॥ राम नामु अंतरि उरि धारि ॥ पूरे गुर की पूरी दीखिआ ॥ जिसु मनि बसै तिसु साचु परीखिआ ॥ मनि तनि नामु जपहु लिव लाइ ॥ दूखु दरदु मन ते भउ जाइ ॥ सचु वापारु करहु वापारी॥ दरगह निबहै खेप तुमारी ॥ एका टेक रखहु मन माहि ॥ नानक बहुरि न आवहि जाहि ॥६॥

इस लोक और परलोक दानों को संवार लो और राम-नाम को हृदय में धारण कर लो। पूर्ण गुरु का उपदेश भी पूरा है; जिसके हृदय में यह बस जाता है वह परीक्षा में सच्चा पाया जाता है। तन-मन से लीन होकर नाम का सुमिरन करो और इस प्रकार दुख, दर्द और भय मन से दूर हो जाएंगे। हे व्यापारी, तू सत्य का व्यापार कर जिससे तेरा सौदा-पत्ता प्रभु दरबार तक कुशलतापूर्वक पहुँच जाएगा। एक प्रभु का आसरा ही मन में रखो ताकि हे नानक, बार-बार का आना जाना समाप्त हो जाए।। ६ ।।

तिस ते दूरि कहा को जाइ ॥ उबरै राखनहारु धिआइ ॥ निरभउ जपै सगल भउ मिटै ॥ प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै ॥ जिसु प्रभु राखै तिसु नाही दूख ॥ नामु जपत मनि होवत सूख ॥ चिंता जाइ मिटै अहंकारु ॥ तिसु जन कउ कोइ न पहुचनहारु ॥ सिर ऊपरि ठाढा गुरु सूरा ॥ नानक ता के कारज पूरा ॥७॥

उससे दूर भला कौन कहां जा सकता है। रक्षक प्रभु के सुमिरन से व्यक्ति बच जाता

है। जिसका प्रभु रक्षक है उसे कोई दुख नहीं होता क्योंकि नाम के सुमिरन से मन सुखी बना रहता है। व्यक्ति ही चिन्ता और अहंकार मिट कर छूट जाते हैं। ऐसे सेवक की बराबरी कोई नहीं कर पाता। हे नानक, ऐसे व्यक्ति के सभी कार्य पूर्ण हो जाते हैं जिसके सिर पर बलशाली प्रभु खड़ा रहता है।। ७ ।।

मति पूरी अंम्रितु जा की द्रिसटि ॥ दरसनु पेखत उधरत स्रिसटि ॥ चरन कमल जा के अनूप ॥ सफल दरसनु सुंदर हरि रूप ॥ धंनु सेवा सेवकु परवानु ॥ अंतरजामी पुरखु प्रधानु ॥ जिसु मनि बसै सु होत निहालु ॥ ता कै निकटि न आवत कालु ॥ अमर भए अमरा पदु पाइआ ॥ साधसंगि नानक हरि धिआइआ ॥८॥२२॥

उस प्रभु की मति पूर्ण है और दृष्टि अमृत के समान है। उसका दर्शन करने से सारी सृष्टि का उद्धार हो जाता है। उसके चरण-कमल अनुपम हैं और उसके दर्शन ध न्य हैं और उस प्रभु का रूप भी सुन्दर है। उस की सेवा भी धन्य है और उसका सेवक भी स्वीकृत है। वही अन्तर्यामी बलशाली पुरुष प्रभु सर्वत्र प्रमुख है। जिसके मन में वह बस जाता है वह व्यक्ति निहाल हो जाता है और काल उसके निकट भी नहीं आता। हे नानक, साधसंगत में जिसने प्रभु-नाम का सुमिरन किया वह अविनाशी होकर अमर पद को प्रात्त कर लेता है।। ८ ।। २२ ।।

सलोकु ॥ गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु ॥ हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु ॥१॥

गुरु ने मुझे ज्ञान रूपी अंजन दिया है जिससे मेरा अज्ञान का अँधेरा विनष्ट हो गया है। प्रभु की कृपा से मेरा मेल शान्त पुरुष (सन्त) से हो गया है जिससे हे नानक, मेरा मन प्रकाशित हो उठा है।। १ ।।

असटपदी ॥ संतसंगि अंतरि प्रभु डीठा ॥ नामु प्रभू का लागा मीठा ॥ सगल समिग्री एकसु घट माहि ॥ अनिक रंग नाना द्रिसटाहि ॥ नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु ॥ देही महि इस का बिस्रामु ॥ सुंन समाधि अनहत तह नाद ॥ कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥ तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए ॥ नानक तिसु जन सोझी पाए ॥१॥

सन्तसंगत में मैंने प्रभु को अपने अन्दर ही देख लिया है और प्रभु का नाम अब मुझे मीठा लग रहा है। संसार की सारी सामग्री एक ही प्रभु के अन्दर निहित है और अनेक रंगों में नाना प्रकार से दृष्टिगोचर हो रही है। प्रभु का नाम ही नवनिधियां और अमृत रूप है। उसका वास्तविक ठिकाना व्यक्ति के शरीर के अन्दर ही है। जीव के अन्दर ही शून्य

समाधि एवं अनहद् ध्वनि चलती रहती है और उसके आश्चर्य रूपी कौतूहल का वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिसे प्रभु दिखाता है केवल वही उसे देख पाता है। हे नानक, ऐसे व्यक्ति को ही सब सुझायी देने लगता है।। १ ।।

सो अंतरि सो बाहरि अनंत ॥ घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत ॥ धरनि माहि आकास पइआल ॥ सरब लोक पूरन प्रतिपाल ॥ बनि तिनि परबति है पारब्रहमु ॥ जैसी आगिआ तैसा करमु ॥ पउण पाणी बैसंतर माहि ॥ चारि कुंट दह दिसे समाहि ॥ तिस ते भिंन नही को ठाउ ॥ गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ ॥२॥

घट-घट में व्याप्त प्रभु ही अन्दर भी है और अनन्त रूप से बाहर भी है। वह धरती में, आकाश में पाताल में रहता हुआ सभी लोकों के जीवन का पूर्ण रूप से पालन करता है। वन में, तिनके में और पर्वतों में भी वही परमात्मा व्याप्त है। जैसी उसकी आज्ञा होती है जीव वैसे ही कर्म करते हैं। पवन, पानी, अग्नि, चारों ओर दसों दिशाओं में वही स्थित और समाया हुआ है। उससे अलग कोई स्थान नहीं है। हे नानक, गुरु की कृपा से तू भी सुख प्राप्त कर।। २ ।।

बेद पुरान सिंम्रिति महि देखु ॥ ससीअर सूर नख्यत्र महि एकु ॥ बाणी प्रभ की सभु को बोलै ॥ आपि अडोलु न कबहू डोलै ॥ सरब कला करि खेलै खेल ॥ मोलि न पाईऐ गुणह अमोल ॥ सरब जोति महि जा की जोति॥ धारि रहिओ सुआमी ओति पोति ॥ गुर परसादि भरम का नासु ॥ नानक तिन महि एहु बिसासु ॥३॥

उसे वेदों, पुराणों स्मृतियों, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रों में केवल एक ही प्रभु के रूप में देखो। प्रभु की वाणी के फलस्वरूप ही सभी बोलते हैं परन्तु वह प्रभु स्वयं स्थिर बना रहता है कभी भी डोलता नहीं। पूरी कुशलता के साथ वह अपना खेल खेलता है और उसके इस खेल की कीमत को आंका नहीं जा सकता; क्योंकि उसकी विशेषताएं अमूल्य हैं। सभी ज्योतियों में जिसकी ज्योति है उस प्रभु ने सारे संसार को अपने में ही ओत-प्रोत करके धारण कर रखा है। हे नानक, जिनके मन का संदेह गुरु कृपा से समाप्त हो गया है उनके अन्दर परमात्मा का पक्का भरोसा बैठ गया है।। ३ ।।

संत जना का पेखनु सभु ब्रहम ॥ संत जना कै हिरदै सभि धरम ॥ संत जना सुनहि सुभ बचन ॥ सरब बिआपी राम संगि रचन ॥ जिनि जाता तिस की इह रहत ॥ सति बचन साधू सभि कहत ॥ जो जो होइ सोई सुखु मानै ॥ करन करावनहारु प्रभु जानै ॥ अंतरि बसे बाहरि भी ओही ॥ नानक दरसनु देखि सभ मोही ॥४॥

सन्त व्यक्ति की दृष्टि में सब ओर परमात्मा ही है। सन्त के हृदय में ही पूर्ण कर्त्तव्य की भावना विद्यमान रहती है। सन्त व्यक्ति ही शुभ वचन सुनता है और सर्वव्यापी प्रभु में लीन बना रहता है। जिसने उसे जान लिया है यह उसके जीवन जीने का मार्ग बन गया है। ऐसे साधु व्यक्ति की सभी बातें सत्य-वचन के रूप में होती हैं। जो जो हो रहा है वह उसे अच्छा ही मानता है और वह यह भी जानता है कि करने कराने वाला केवल वह प्रभु ही है। वह यह भी जानता है कि अन्दर और बाहर वही बसता है। हे नानक, ऐसे व्यक्ति के दर्शन से सभी मोहित बने रहते हैं।। ४ ।।

आपि सति कीआ सभु सति ॥ तिसु प्रभ ते सगली उतपति ॥ तिसु भावै ता करे बिसथारु ॥ तिसु भावै ता एकंकारु ॥ अनिक कला लखी नह जाइ॥ जिसु भावै तिसु लए मिलाइ ॥ कवन निकटि कवन कहीऐ दूरि ॥ आपे आपि आप भरपूरि ॥ अंतरगति जिसु आपि जनाए ॥ नानक तिसु जन आपि बुझाए ॥ ५॥

वह स्वयं भी सत्य है और उसकी रचना भी सत्य है। प्रभु से ही सारी रचना उत्पन्न हुई है; उसे जब भाता है तो वह स्वयं का विस्तार कर लेता है और उसे ही जब अच्छा लगता है तो वह पुनः एक रूप में ही आ जाता है। उसकी अनेकों शक्तियां हैं जिन्हें देखा नहीं जा सकता है। जिसे वह चाहता है उसे अपने आप से मिला लेता है। किसे निकट और किसे दूर कहा जाए क्योंकि स्वयं ही वह प्रभु सब ओर व्याप्त है। हे नानक, जिस सेवक को प्रभु उसके अन्दर से ही ज्ञान प्रदान कर देता है उसे ही वह सभी रहस्य समझा देता है।। ५ ।।

सरब भूत आपि वरतारा ॥ सरब नैन आपि पेखनहारा ॥ सगल समग्री जा का तना ॥ आपन जसु आप ही सुना ॥ आवन जानु इकु खेलु बनाइआ ॥ आगिआकारी कीनी माइआ ॥ सभ कै मधि अलिपतो रहै ॥ जो किछु कहणा सु आपे कहै ॥ आगिआ आवै आगिआ जाइ ॥ नानक जा भावै ता लए समाइ ॥६॥

सभी तत्त्वों में वह प्रभु स्वयं ही कार्यशील है। सभी आँखों के माध्यम से वह स्वयं ही देखने वाला है। संसार की सारी सामग्री जिस प्रभु का शरीर है वह अपना यश स्वयं ही सुनता है। आवागमन तो उसने एक खेल बना रखा है तथा मोहिनी माया को उसने अपनी आज्ञा में ही कार्यशील किया हुआ है। सबमें बसता हुआ भी वह सबसे अलिप्त बना रहता है और जो कुछ भी उसे कहना होता है वह स्वयं ही आज्ञा देता है। उसी की आज्ञा में जीव आता जाता है और हे नानक, जब उसे अच्छा लगता है तो वह जीव को अपने में लीन कर लेता है।। ६ ।।

इस ते होइ सु नाही बुरा ॥ ओरै कहहु किनै कछु करा ॥ आपि भला करतूति अति नीकी ॥ आपे जानै अपने जी की ॥ आपि साचु धारी सभ साचु ॥ ओति पोति आपन संगि राचु ॥ ता की गति मिति कही न जाइ ॥ दूसर होइ त सोझी पाइ ॥ तिस का कीआ सभु परवानु ॥ गुर प्रसादि नानक इहु जानु ॥७॥

उस प्रभु से कुछ भी बुरा नहीं होता। बताइये भला उसके बिना किसी ने कभी भी कुछ किया है। वह स्वयं भला है और उसके कार्य भी सुन्दर हैं। केवल वही जानता है कि उसके चित्त में क्या है। वह स्वयं सच्चा है और जो कुछ उसने धारण किया हुआ है वह सब कुछ भी सच्चा ही है। वह पूर्ण रूप से ओत-प्रोत होकर अपने आप में ही लीन है। उसकी सीमा और विस्तार के बारे में कहा नहीं जा सकता क्योंकि कोई दूसरा उसके जैसा हो तब ही उसे पता लग सकता है। उसका किया हुआ सब कुछ मानना होता है; हे नानक, गुरु की कृपा से तू इस तथ्य को भली-भांति जान ले।। ७ ।।

जो जानै तिसु सदा सुखु होइ ॥ आपि मिलाइ लए प्रभु सोइ ॥ ओहु धनवंतु कुलवंतु पतिवंतु ॥ जीवन मुकति जिसु रिदै भगवंतु ॥ धंनु धंनु धंनु जनु आइआ ॥ जिसु प्रसादि सभु जगतु तराइआ ॥ जन आवन का इहै सुआउ॥ जन कै संगि चिति आवै नाउ ॥ आपि मुकतु मुकतु करै संसारु ॥ नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारु ॥८॥२३॥

जो जानता है उसे सदैव सुख होता है। प्रभु उसको स्वयं ही अपने आप में मिला लेता है। वही धनवान है, कुलशील है, इज़्ज़तदार है, जीवन-मुक्त है जिसके हृदय में परमात्मा का निवास है। प्रभु के ऐसे सेवक का आना धन्य है, धन्य है और धन्य है जिसकी कृपा से सारा संसार पार उतर जाता है। प्रभु के सेवक का संसार में आने का यही प्रयोजन होता है कि उसकी संगत में प्रभु-नाम का सुमिरन चित्त में बना रहता है। हे नानक, ऐसे सेवक को सदैव प्रणाम है जो स्वयं मुक्त होता है और सारे संसार को भी मुक्त कर देता है।। ८ ।। २३ ।।

सलोकु ॥ पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जा का नाउ ॥ नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ ॥१॥

उस पूर्ण प्रभु की मैंने आराधना की है जिसका नाम भी पूर्ण है। नानक ने पूर्ण प्रभु के गुण गाकर उस पूर्ण को पा लिया है।। १ ।।

असटपदी ॥ पूरे गुर का सुनि उपदेसु ॥ पारब्रहमु निकटि करि पेखु ॥ सासि सासि सिमरहु गोबिंद ॥ मन अंतर की उतरै चिंद ॥ आस अनित

तिआगहु तरंग ॥ संत जना की धूरि मन मंग ॥ आपु छोडि बेनती करहु ॥ साधसंगि अगनि सागरु तरहु ॥ हरि धन के भरि लेहु भंडार ॥ नानक गुर पूरे नमसकार ॥१॥

पूर्ण गुरु का उपदेश सुनो और परमात्मा को अपने पास ही देखो। प्रत्येक श्वास के साथ प्रभु का सुमिरन करो जिससे तेरे मन की चिन्ता दूर हो जाएगी। क्षणभंगुर इच्छाओं की लहरों का तू त्याग कर और सन्त पुरुषों की चरण-धूलि की मन से याचना कर। अपने अभिमान को त्याग कर प्रार्थना करो और साधसंगत में संसार रूपी अग्नि-सागर को पार कर जाओ। प्रभु रूपी धन से अपने भण्डारों को भर लो। नानक पूर्ण गुरु को नमस्कार करता है।। १ ।।

खेम कुसल सहज आनंद ॥ साधसंगि भजु परमानंद ॥ नरक निवारि उधारहु जीउ ॥ गुन गोबिंद अंम्रित रसु पीउ ॥ चिति चितवहु नाराइण एक ॥ एक रूप जा के रंग अनेक ॥ गोपाल दामोदर दीन दइआल ॥ दुख भंजन पूरन किरपाल ॥ सिमरि सिमरि नामु बारं बार ॥ नानक जीअ का इहै अधार ॥२॥

साधसंगत में परमात्मा का सुमिरन करने से तुझे मुक्ति, शान्ति, सहज और आनन्द प्राप्त हो जाएगा। अपने चित्त में केवल एक प्रभु का सुमिरन करो जिसका रूप तो एक ही है परन्तु कौतुक अनेक हैं। दुखों का नाश करने वाला वह पूर्ण कृपालु प्रभु ही धरती का पालन करने वाला है। विश्व को अपने में लीन करने वाला और दीनों पर दया करने वाला प्रभु है। बार बार उसके नाम का सुमिरन कर क्योंकि हे नानक, यही प्राणों का आसरा है।। २ ।।

उतम सलोक साध के बचन ॥ अमुलीक लाल एहि रतन ॥ सुनत कमावत होत उधार ॥ आपि तरै लोकह निसतार ॥ सफल जीवनु सफलु ता का संगु ॥ जा कै मनि लागा हरि रंगु ॥ जै जै सबदु अनाहदु वाजै ॥ सुनि सुनि अनद करे प्रभु गाजै ॥ प्रगटे गुपाल महाँत कै माथे ॥ नानक उधरे तिन कै साथे ॥३॥

साधु पुरुष के वचन सदैव श्रेष्ठ शब्द होते हैं। वे रत्नों की तरह अमूल्य रत्न होते हैं। उनको सुनने और उन पर आचरण करने से उद्धार होता है। उन्हें सुनकर व्यक्ति खुद पार उतर जाता है और लोगों का भी उद्धार कर देता है। जिसके मन में प्रभु का रंग लग गया है उसका जीवन भी सफल है और उसकी संगत भी सफल है। उस अनहद् शब्द की सदैव जय जयकार है जिसे सुनकर व्यक्ति आनन्दित बना रहता है और उसके माध्यम से प्रभु-नाम गूँजता रहता है। प्रभु स्वयं को पवित्र पुरुषों के मस्तिष्क में प्रकट करता है। ऐसे व्यक्तियों की संगत में ही हे नानक, अन्यों का भी उद्धार हो जाता है।। ३ ।।

सरनि जोगु सुनि सरनी आए ॥ करि किरपा प्रभ आप मिलाए ॥ मिटि गए बैर भए सभ रेन ॥ अंम्रित नामु साधसंगि लैन ॥ सुप्रसंन भए गुरदेव ॥ पूरन होई सेवक की सेव ॥ आल जंजाल बिकार ते रहते ॥ राम नाम सुनि रसना कहते ॥ करि प्रसादु दइआ प्रभि धारी ॥ नानक निबही खेप हमारी ॥४॥

वह शरण देने में समर्थ है यही सुनकर हम उसकी शरण में आए हैं। प्रभु ने कृपा करके हमें स्वयं से मिला लिया है। हमारे शत्रु भाव समाप्त हो गए हैं और हम सब की चरण-धूलि बन गए हैं। साधसंगत में हमने अमृत-नाम प्राप्त कर लिया है। ईश्वर रूपी गुरु प्रसन्न हो गए हैं और इस सेवक की सेवा भी सफल हो गई है। प्रभु-नाम को जीभ से कहते हुए और सुनते हुए मैं सांसारिक जंजालों एवं विकारों से बच गया हूँ। प्रभु ने कृपा करके मुझ पर दया की है और हे नानक, मेरा सौदा सही सलामत अपने ठिकाने पर पहुँच गया है।। ४ ।।

प्रभ की उसतति करहु संत मीत ॥ सावधान एकागर चीत ॥ सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम ॥ जिसु मनि बसै सु होत निधान ॥ सरब इछा ता की पूरन होइ ॥ प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ ॥ सभ ते ऊच पाए असथानु ॥ बहुरि न होवै आवन जानु ॥ हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ ॥ नानक जिसहि परापति होइ ॥५॥

हे मित्र, सन्तजनों, सावधान और एकाग्रचित होकर प्रभु की स्तुति करो; प्रभु का गुणानुवाद और नाम ही सहज एवं सुखों की मणि है। जिसके मन में यह बस जाती है वह स्वयं सुखों का भण्डार बन जाता है। उसकी सभी इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं और वह सभी लोकों में प्रधान एवं बलशाली व्यक्ति के रूप में प्रकट होता है। वह सबसे ऊँचा ठिकाना प्राप्त कर लेता है और फिर आवागमन में नहीं पड़ता। ऐसा सेवक प्रभु रूपी धन की कमाई करके यहां से जाता है और हे नानक, ऐसा वही कर पाता है जिसे यह सुखों की मणि प्राप्त होती है।। ५ ।।

खेम सांँति रिधि नव निधि ॥ बुधि गिआनु सरब तह सिधि ॥ बिदिआ तपु जोगु प्रभ धिआनु ॥ गिआनु स्रेसट ऊतम इसनानु ॥ चारि पदारथ कमल प्रगास ॥ सभ कै मधि सगल ते उदास ॥ सुंदरु चतुरु तत का बेता ॥ समदरसी एक द्रिसटेता ॥ इह फल तिसु जन कै मुखि भने ॥ गुर नानक नाम बचन मनि सुने ॥६॥

क्षेम, शान्ति, ऋद्धियां, नवनिधियां, बुद्धि एवं सब प्रकार के ज्ञान वह सिद्ध कर लेता है। विद्या, तप, योग, सुमिरन, ज्ञान, श्रेष्ठ एवं उत्तम स्नान, चारों पुरुषार्थ, हृदय रूपी

कमल का खिलना-यह सब होते हुए भी वह सबसे अलेप बना रहता है। ऐसा व्यक्ति सुन्दर, चतुर, तत्त्ववेत्ता, समदर्शी और केवल एक प्रभु पर ही आस्था रखने वाला होता है। यह सभी फल उस व्यक्ति को मिलते हैं जो हे नानक गुरु की प्रभु-नाम रूपी वाणी को मन लगाकर सुनता है।। ६ ।।

इहु निधानु जपै मनि कोइ ॥ सभ जुग महि ता की गति होइ ॥ गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी ॥ सिम्रिति सासत्र बेद बखाणी ॥ सगल मतांत केवल हरि नाम ॥ गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम ॥ कोटि अप्राध साधसंगि मिटै ॥ संत क्रिपा ते जम ते छुटै ॥ जा कै मसतकि करम प्रभि पाए ॥ साध सरणि नानक ते आए ॥७॥

जो इस नाम के भण्डार का मन से सुमिरन करता है उसकी सभी युगों में महिमा हो जाती है। यह वाणी प्रभु का गुणानुवाद और प्रभु नाम की ध्वनि है जिसका बखान स्मृतियां, शास्त्र और वेद करते हैं। सभी मतों का सार-तत्त्व केवल प्रभु-नाम ही है जो प्रभु के भक्तों के मन में टिका रहता है। साधसंगत में करोड़ों अपराध मिट जाते हैं और व्यक्ति शान्त पुरुषों की कृपा से आध्यात्मिक मौत से बच जाता है। हे नानक, साधु पुरुषों की शरण में वे लोग ही आते हैं जिनके मस्तक पर प्रभु ने भाग्य-लेख होते हैं।। ७ ।।

जिसु मनि बसै सुनै लाइ प्रीति ॥ तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥ जनम मरन ता का दूखु निवारै ॥ दुलभ देह ततकाल उधारै ॥ निरमल सोभा अंम्रित ता की बानी ॥ एकु नामु मन माहि समानी ॥ दूख रोग बिनसे भै भरम ॥ साध नाम निरमल ता के करम ॥ सभ ते ऊच ता की सोभा बनी॥ नानक इह गुणि नामु सुखमनी ॥८॥२४॥

यह वाणी जिसके मन में बसती है और जो इसे प्रेमपूर्वक सुनता है उसे परमात्मा सदैव याद रहता है। उसके जन्म-मरण के दुख दूर हो जाते हैं और उसकी इस दुर्लभ देह का तत्काल उद्धार हो जाता है। उसकी शोभा निर्मल हो जाती है और उसके बोल भी अमृत तुल्य हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के मन में केवल एक प्रभु-नाम ही बसा हुआ होता है। दुख, रोग, भय, भ्रम आदि विनष्ट हो जाते हैं। उसके कर्म निर्मल हो जाते हैं और उसको साधु पुरुष के नाम से जाना जाता है। ऐसे व्यक्ति की महिमा सबसे ऊँची बन जाती है और हे नानक, इन्हीं गुणों के कारण इसे सुखों की मणि रूपी वाणी का नाम दिया गया है।। ८ ।। २४ ।।

।। आसा की वार ।।

(गु. ग्रं. सा. पृ. ४६२-४७५)

गुरु नानक देव जी की इस रचना का गायन प्रत्येक गुरुद्वारे में प्रातःकाल किया जाता है। आसा राग में उच्चारित इस रचना में गुरु जी ने आध्यात्मिक और सामाजिक सरोकारों को एक दूसरे से अभिन्न मानते हुए स्वस्थ समाज के लिए पाखण्ड विहीन धार्मिकता की आवश्यकता पर बल दिया है। चौबीस 'पउड़ी' छन्दों को उनसठ (४४ गुरु नानक और १५ गुरु अंगद देव जी के) श्लोकों से सम्पुष्ट करने वाली इस रचना में गुरु नानक देव जी ने जहां एक ओर तत्कालीन भारतीय समाजों का विवरण देते हुए उनकी विसंगतियां दिखाई हैं वहीं यह भी बताया है कि किस प्रकार का समाज अपेक्षित नहीं है और किस प्रकार के समाज की स्थापना होनी चाहिए। गुरु नानक देव कहते हैं कि समाज दूर-दृष्टि वाला होना चाहिए और समाज की इकाई 'व्यक्ति' सेवा भाव वाला, संतुष्टि भाव वाला और अपने हाथ से अपना कार्य स्वयं संवारने वाला होना चाहिए। समाज में स्त्री का स्थान बराबरी का होना चाहिए और परिवार में जन्म मरण को लेकर किए और माने जाने वाले कर्मकाण्डों से बचना चाहिए। खण्डों में बंटे हुए व्यक्तित्व को त्यागकर अपने वास्तविक मूल स्वभाव, सभ्यता और भाषा आदि का सम्मान करना चाहिए।

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।।

आसा महला १ ॥

वार सलोका नालि सलोक भी महले पहिले के लिखे टुंडे अस राजे की धुनी ॥

श्लोकों समेत वार, श्लोक भी महला पहला के लिखे हुए ; टुण्डे (लूले) असराज की धुन। (गुरु नानक की वार रूपी इस रचना को लोकयान में प्रचलित लूले राजा असराज की जीवन कहानी गा कर सुनाने वाली धुन पर गायन करने का आदेश है)

सलोकु मः १ ॥ बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सद वार ॥ जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार ॥१॥

मैं अपने उस गुरु पर एक दिन में सौ बार बलिहारी जाता हूँ जिसने साधारण मनुष्यों को देवता बना दिया और ऐसा करते हुए उसे ज़रा सी भी देर नहीं लगी।। १ ।।

महला २ ॥ जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ॥ एते चानण होदिआँ गुर बिनु घोर अंधार ॥२॥

यदि सौ चन्द्रमा भी आकाश में उग आएं और हज़ार सूर्य भी निकल आएं तब भी इतना प्रकाश होने के बावजूद गुरु के बिना घोर अंधकार ही बना रहता है।। २ ।।

महला १ ॥ नानक गुरू न चेतनी मनि आपणै सुचेत ॥ छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत ॥ खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह ॥ फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह ॥३॥

हे नानक, जो गुरु के बताए हुए मार्ग के प्रति सचेत नहीं होते और अपने मन में ही बुद्धिमान बने रहते हैं उनका जीवन उन निरर्थक तिलों के समान है जिन्हें बेकार समझकर सूने खेतों में ही फेंक दिया जाता है। खेत में पड़े हुए ऐसे तिलों के सैंकड़ों मालिक बन जाते हैं अर्थात वे किसी एक स्वामी के नहीं बने रहते। वे बेचारे फलते-फूलते हुए दिखाई तो देते हैं परन्तु वास्तव में उनके अन्दर तेल न होकर राख ही भरी रहती है। इसी प्रकार जो जीव गुरु विहीन होते हैं उनके सैंकड़ों सलाहकार बन जाते हैं जिससे वे

प्रतिष्ठित तो दिखाई देते हैं परन्तु उनके अन्दर खोखलापन ही होता है।। ३ ।।

पउड़ी ॥

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ॥
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ ॥
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ ॥
करि आसणु डिठो चाउ ॥१॥

उस परमात्मा ने स्वयं ही अपनी सृजना आप की है और वह अपने नाम का रचयिता भी स्वयं ही है। दूसरे नम्बर पर उसने अपनी कुदरत (प्रकृति) की रचना की जिसमें वह स्वयं विराजमान होकर उत्साह से भरा हुआ उसके कार्य-कलाप को देखता है। हे प्रभु, तू स्वयं ही कर्ता है और प्रसन्न होकर तू स्वयं ही अपना प्रसार करता है। तू सबके हृदय की बात जानने वाला है और तू ही अपने हुकम में जीवों को प्राण देता है और उन प्राणों को फिर वापस भी ले लेता है। हे प्रभु, इस सृष्टि रचना में तू ही आसन जमाकर बैठा हुआ इसे चाव से देख रहा है।। १ ।।

सलोकु मः १ ॥ सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड ॥ सचे तेरे लोअ सचे आकार॥ सचे तेरे करणे सरब बीचार ॥ सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु ॥ सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु ॥ सचा तेरा करमु सचा नीसाणु ॥ सचे तुधु आखहि लख करोड़ि ॥ सचै सभि ताणि सचै सभि जोरि ॥ सची तेरी सिफति सची सालाह ॥ सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह ॥ नानक सचु धिआइनि सचु॥ जो मरि जंमे सु कचु निकचु ॥१॥

हे प्रभु, तेरे रचे हुए सभी खण्ड एवं ब्रह्माण्ड सच्चे हैं (मिथ्या नहीं हैं); तेरे रचे हुए लोक और सभी आकार भी वास्तविक हैं (झूठे नहीं हैं)। तेरे सभी विचार और कार्य सत्य हैं। तेरा हुकम और तेरा दरबार जहाँ तू न्याय करता है वे भी सच्चे हैं। तेरा आदेश और तेरा हुकमनामा दोनों ही सच्चे हैं। तेरी कृपा भी सच्ची है और तेरी स्वीकृति के चिन्ह (प्रेम, दया आदि) भी सच्चे हैं। लाखों करोड़ों जीव तेरा सत्य रूप में वर्णन करते हैं और हे प्रभु, तेरी शक्ति और उस शक्ति का विस्तार सभी सत्य हैं। तेरे गुण और तेरी शोभा सच्चे हैं और हे सच्चे सम्राट प्रभु, तेरी कुदरत रूपी यह रचना भी सच्ची है। हे नानक, जो इस सत्य का सुमिरन करते हैं और इसे जानते हैं वे भी सच्चे हैं; परन्तु जो इसे नहीं पहचानते और आवागमन में भटकते रहते हैं वे कच्चे से भी कच्चे हैं।। १ ।।

मः १ ॥ वडी वडिआई जा वडा नाउ ॥ वडी वडिआई जा सचु निआउ ॥

वडी वडिआई जा निहचल थाउ ॥ वडी वडिआई जाणै आलाउ ॥ वडी वडिआई बुझै सभि भाउ ॥ वडी वडिआई जा पुछि न दाति ॥ वडी वडिआई जा आपे आपि ॥ नानक कार न कथनी जाइ ॥ कीता करणा सरब रजाइ ॥२॥

प्रभु का बड़प्पन इसलिए है कि उसका नाम और उसके गुणों का प्रकाश बड़ा है। प्रभु की महानता इसलिए भी है कि उसका न्याय सच्चा है। वह इसलिए भी बड़ा है कि उसका आसन स्थिर है अर्थात किसी भय या लिहाज से वह अपने नियमों को बदलता नहीं। उसका बड़प्पन इसलिए भी महान है कि वह भक्तों द्वारा कही हुई बात को समझ लेता है। वह इसलिए भी महान है कि कुछ न कहने पर भी वह सबके दिल के भाव को बूझ लेता है। उसकी बड़ाई इसलिए भी है कि देने के लिए उसे किसी से पूछना नहीं पड़ता और वह इसलिए भी बड़प्पन वाला है कि वह सब कुछ स्वयं ही है। हे नानक, उसके कार्यों का कथन नहीं किया जा सकता क्योंकि जो कुछ किया हुआ है और जो कुछ उसने करना है वह उसकी रज़ा में ही है।। २ ।।

महला २ ॥ इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ॥ इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु ॥ इकन्हा भाणै कढि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु ॥ एव भि आखि न जापई जि किसै आणे रासि ॥ नानक गुरमुखि जाणीऐ जा कउ आपि करे परगासु ॥३॥

यह संसार तो सत्य का वह घर है जिसमें सत्य प्रभु का ही निवास है। कईयों को तो वह अपने हुकम में ही लीन किए रहता है और कईयों का वह हुकम के अन्तर्गत ही विनाश करता रहता है। कईयों को अपनी रज़ा में ही संसार-समुद्र से बाहर निकाल लेता है और कईयों का मायावी प्रपंचों में ही निवास बनाए रखता है। यह भी नहीं कहा जा सकता और यह जाना भी नहीं जा सकता कि किस जीव को वह सुधार देगा। हे नानक, गुरमुख व्यक्ति ही ऐसा जाना माना जाता है जिसे प्रभु स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित कर देता है।। ३ ।।

पउड़ी ॥

नानक जीअ उपाइ कै लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥
ओथै सचे ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ ॥
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥२॥

हे नानक, उसने जीव को पैदा करके उसके अन्दर ही अपना नाम रूपी धर्मराज (न्याय कर्ता) बिठा रखा है। उस नाम रूपी न्यायकर्ता के समक्ष केवल सत्य के अनुरूप ही फैसला होता है और बुरे व्यक्तियों को छाँटकर अलग कर लिया जाता है। झूठे व्यक्तियों को उसके सामने स्थान नहीं मिलता अर्थात वे टिक नहीं पाते और अपना काला मुँह लेकर वे नर्क की पीड़ा में पड़े रहते हैं। प्रभु ने अपने नाम के रूप में धर्मराज को अन्दर ही स्थित किया हुआ है।। २ ।।

सलोकु मः १ ॥ विसमादु नाद विसमादु वेद ॥ विसमादु जीअ विसमादु भेद ॥ विसमादु रूप विसमादु रंग ॥ विसमादु नागे फिरहि जंत ॥ विसमादु पउणु विसमादु पाणी ॥ विसमादु अगनी खेडहि विडाणी ॥ विसमादु धरती विसमादु खाणी ॥ विसमादु सादि लगहि पराणी ॥ विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु ॥ विसमादु भुख विसमादु भोगु ॥ विसमादु सिफति विसमादु सालाह ॥ विसमादु उझड़ विसमादु राह ॥ विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि ॥ विसमादु देखै हाजरा हजूरि ॥ वेखि विडाणु रहिआ विसमादु ॥ नानक बुझणु पूरै भागि ॥१॥

आश्चर्य है कि कितने प्रकार के नाद अर्थात बोलियां है और विभिन्न प्रकार के ज्ञान भी आश्चर्य ही आश्चर्य हैं। आश्चर्यकारक अनन्त जीव हैं और उनके भेद उपभेद भी विस्मयकारक हैं। अनेकों प्रकार के रूप हैरानी में डालने वाले हैं और विभिन्न प्रकार के रंग, स्वभाव आदि भी विस्मयकारक हैं। यह भी विस्मयकारक है कि जीव-जन्तु नंगे ही घूमते फिरते रहते हैं और यह भी आश्चर्यजनक है कि अनेकों प्रकार की पवन हैं और पता नहीं कितने प्रकार के जल हैं। यह भी विस्मयकारक है कि कितने ही प्रकार की अग्नियां हैं जो अजीब-अजीब खेल खेलती हैं। अनेकों धरतियां भी विस्मय का कारण हैं और अनेकों प्रकार की जीवन उत्पन्न करने वाली खानें भी विस्मयकारक हैं। जिन स्वादों में जीव मन लगाए हुए हैं वे भी अनेकों हैं और विस्मय में डालने वाले हैं। मिलने और बिछुड़ने के अर्थात संयोग और वियोग के दोनों सिद्धान्त भी विस्मय ही हैं। तमाम प्रकार की भूख भी विस्मयकारी है और अनेकों भोग भी हैरानी में डालने वाले हैं। अनेकों गुण भी हैरानी में डालने वाले हैं और अनेक प्रकार से उनकी की जाने वाली प्रशंसा भी विस्मयादि बोधक है। अपने उद्देश्य से भटक जाना भी हैरानी का कारण है और पुनः ठीक मार्ग पर आ जाना भी आश्चर्यजनक ही है। पास होने का सुख और दूर होने का दुख हैरानी में डालने वाला ही है क्योंकि पता ही नहीं चल पाता कि कौन पास है और कौन दूर है। प्रभु की दिव्यता को प्रत्यक्ष रूप से देखना अनुभव करना भी आश्चर्य ही है। वह प्रभु अपने आश्चर्यजनक खेल को देखकर आश्चर्य भाव में बना रहता है और हे नानक

उसके सारे कार्य-कलाप को बूझने वाला पूर्ण रूप से कोई भाग्यशाली व्यक्ति ही होता है।। १।।

मः १ ॥ कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु ॥ कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु ॥ कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु ॥ कुदरति खाणा पीणा पैनणु कुदरति सरब पिआरु॥ कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान ॥ कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु ॥ कुदरति पउणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु ॥ सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु ॥ नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु ॥२॥

जो कुछ भी दिखाई देता है अथवा जो कुछ भी सुना जाता है तथा भय का भाव और सुख का प्रारम्भ बिन्दु सब कुदरत के अनुरूप ही है अर्थात उस प्रभु की अन्तरनिहित ऊर्जा ही सब में रमण कर रही है। यही कुदरत रूपी शक्ति पातालों, आकाशों और रचना के सभी आकारों में विद्यमान है। यह कुदरत वेद-पुराण, कतेबों और सब प्रकार के चिन्तनों का मूल है। खाना-पीना, पहनना सर्व प्रेम की भावना आदि सब कुदरत के अन्तर्गत ही है। संसार के जीवों की तमाम किस्मों, प्रजातियों और रंगों में वह कुदरत ही कार्यशील है। हे कर्ता प्रभु, तू ही इस ऊर्जा का स्वामी है और तू ही अपने पवित्र नाम के कारण कार्यशील है। हे नानक, वह प्रभु अपने विधान के अन्तर्गत सब कुछ देखता करता रहता है और वह जो भी करता है पूरी निपुणता के साथ करता है। वह अन्धाधुन्ध कुछ भी नहीं करता।। २ ।।

पउड़ी ॥

आपीनै भोग भोगि कै होइ भसमड़ि भउरु सिधाइआ ॥
वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ ॥
अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखा करि समझाइआ ॥
थाउ न होवी पउदीई हुणि सुणीऐ किआ रूआइआ ॥
मनि अंधै जनमु गवाइआ ॥३॥

भोगों में लीन रहने वाला व्यक्ति अपने पर आधारित भोगों को भोगता हुआ अन्ततः राख की ढेरी बनकर इस संसार से चला जाता है। दुनियादारी में ही लीन बना रहने वाला ऐसा व्यक्ति जब मर जाता है तो उसके गले में जंजीरें डालकर उसे धकेलकर ले जाया जाता है। आगे पहुँचने पर उसकी करनी की प्रशंसा अथवा निन्दा का बयान किया जाता है और उसके लेखे-जोखे की जाँच-पड़ताल की जाती है। जब उसे मार पड़ती है तो उसे कहीं भी (सिर छिपाने तक की) जगह नहीं मिलती। अब उसका रोना भी वहाँ कौन सुनेगा? अन्धे मन ने अपना जन्म और जीवन व्यर्थ ही गँवा लिया है।। ३।।

सलोक महला १ ॥ भै विचि पवणु वहै सदवाउ ॥ भै विचि चलहि लख दरीआउ ॥ भै विचि अगनि कढै वेगारि ॥ भै विचि धरती दबी भारि ॥ भै विचि इंदु फिरै सिर भारि ॥ भै विचि राजा धरम दुआरु ॥ भै विचि सूरजु भै विचि चंदु ॥ कोह करोड़ी चलत न अंतु ॥ भै विचि सिध बुध सुर नाथ ॥ भै विचि आडाणे आकास ॥ भै विचि जोध महाबल सूर ॥ भै विचि आवहि जावहि पूर ॥ सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु ॥ नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु ॥१॥

सैंकड़ों प्रकार की वायु उस प्रभु के भय (नियम) के अन्तर्गत ही चलती है। लाखों नदियां भी उसके भय में ही बहती हैं। उसके भय रूपी हुकम में ही अग्नि भी कार्य करती है। प्रभु के भय रूपी नियम में ही धरती भार के नीचे दबी रहती है। सिर के बल घूमने वाला बादल भी किसी भय अथवा नियम के अन्तर्गत ही घूमता फिरता है। भय में ही प्रभु के द्वार पर धर्मराज स्थित बना रहता है। सूर्य और चन्द्रमा भी प्रभु के भय (नियम) में चलते हैं और करोड़ों कोस चलते रहने के बाद भी उनके चलने का कोई अन्त नहीं जाना जा सकता। बड़े-बड़े सिद्ध, बुद्ध, देवता और योगी भी उसी के भय में विचरण करते हैं और उसी के भय में आकाश भी चारों ओर फैला हुआ बना रहता है। महाबली शूरवीर एवं योद्धा भी उसी के भय में हैं और जीवों के झुण्डों के झुण्ड उसी के भय रूपी नियम में जन्मते मरते रहते हैं। सब के माथे पर उसके भय (नियम) का लेख लिखा हुआ है। हे नानक, निर्भय केवल वही एक निराकार सत्य-स्वरूप परमात्मा है।। १ ।।

महला १ ॥ नानक निरभउ निरंकारु होरि केते राम रवाल ॥ केतीआ कंनु कहाणीआ केते बेद बीचार ॥ केते नचहि मंगते गिड़ि मुड़ि पूरहि ताल ॥ बाजारी बाजार महि आइ कढहि बाजार ॥ गावहि राजे राणीआ बोलहि आल पताल ॥ लख टकिआ के मुंदड़े लख टकिआ के हार ॥ जितु तनि पाईअहि नानका से तन होवहि छार ॥ गिआनु न गलीई ढूढीऐ कथना करड़ा सारु॥ करमि मिलै ता पाईऐ होर हिकमति हुकमु खुआरु ॥२॥

हे नानक, अन्य कितने ही धूल के तुल्य राम आदि हो गुज़रे हैं। कितने ही कृष्ण, उनकी कथाएं और वेदों के कितने ही विचार प्रचलित रहे हैं। कितने ही नाचने वाले भिखारी हैं जो प्राप्तियों के लिए बार-बार एक ही ताल पर नृत्य कर रहें हैं। सौदेबाज़ लोग बाज़ार में आकर अपने स्वार्थ के लिए अनेकों प्रकार के नाटक करते हैं। राजा, रानियां आदि सभी अपने स्वार्थ के लिए माँगते हुए ऊँचा-नीचा, उलटा-पुलटा कथन करते रहते हैं। लाखों रुपयों के कानों मे डालने के गहने और लाखों रुपयों के हार जिस शरीर पर धारण किए जाते हैं हे नानक, वह शरीर अन्ततः राख हो जाता है। ज्ञान की प्राप्ति बातों

से ही नहीं होती; उसका कथन करना तो लोहे जैसा कठिन कार्य हैं। यदि प्रभु की कृपा हो जाए तभी उसे पाया जाता है अन्यथा उसको पाने के लिए चालाकी और ज़ोर-ज़बरदस्ती केवल ख्वार करने वाले ही साबित होते हैं।। २ ।।

पउड़ी ॥

नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ ॥
एहु जीउ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ ॥
सतिगुर जेवडु दाता को नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ ॥
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ी विचहु आपु गवाइआ ॥
जिनि सचो सचु बुझाइआ ॥४॥

यदि वह अपनी कृपादृष्टि करे तो उस कृपादृष्टि के फलस्वरूप सच्चा गुरु प्राप्त होता है। यह जीव अनेकों जन्मों तक भटकता रहा है और तब कहीं सच्चे गुरु के माध्यम से यह शब्द को सुन सका है। हे संसार के सभी लोगो, इस बात को ध्यान से सुन लो कि सच्चे गुरु जैसा दाता अन्य कोई नहीं है। जिन्होंने अपने अन्तर्मन से अहंकार को समाप्त कर दिया है वे ही सच्चे गुरु से मिले हैं और उन्होंने ही सत्य को प्राप्त किया है। वह सच्चा गुरु ही है जिसने सत्य के रहस्य को सही रूप से समझाया है।। ४ ।।

सलोक मः १ ॥ घड़ीआ सभे गोपीआ पहर कंनु गोपाल ॥ गहणे पउणु पाणी बैसंतरु चंदु सूरजु अवतार ॥ सगली धरती मालु धनु वरतणि सरब जंजाल ॥ नानक मुसै गिआन विहूणी खाइ गइआ जमकालु ॥१॥

समय की घड़ियों को रास लीला में नाचने वाली गोपियां समझो और प्रहरों को गोपाल कन्हैया अर्थात कृष्ण समझो। चन्द्र और सूर्य अर्थात समय को वह समझो जिनके स्वांग रासलीला वाले भरते हैं तथा हवा, पानी, अग्नि आदि तत्वों को इस लीला के पात्रों के गहने समझो। सारी धरती नाटक करने वालों का साज-सामान है और संसार का सारा व्यवहार और झमेले नाटक के पात्रों का परस्पर लेन-देन और बातचीत हैं। इस सब में स्थायी कुछ भी नहीं है इसलिए हे नानक, ज्ञान से विहीन लोग इस नाटक के धोखे में आकर लुट जाते हैं और समय उन्हें खा जाता है तथा यह दैवी नाटक चलता रहता है।। १ ।।

मः १ ॥ वाइनि चेले नचनि गुर ॥ पैर हलाइनि फेरन्हि सिर ॥ उडि उडि रावा झाटै पाइ ॥ वेखै लोकु हसै घरि जाइ ॥ रोटीआ कारणि पूरहि ताल॥ आपु पछाड़हि धरती नालि ॥ गावनि गोपीआ गावनि कान्ह ॥ गावनि सीता राजे राम ॥ निरभउ निरंकारु सचु नामु ॥ जा का कीआ सगल जहानु ॥ सेवक सेवहि करमि चड़ाउ ॥ भिंनी रैणि जिन्हा मनि चाउ ॥ सिखी

सिखिआ गुर वीचारि ॥ नदरी करमि लघाए पारि ॥ कोलू चरखा चकी चकु॥ थल वारोले बहुतु अनंतु ॥ लाटू माधाणीआ अनगाह ॥ पंखी भउदीआ लैनि न साह ॥ सूऐ चाड़ि भवाईअहि जंत ॥ नानक भउदिआ गणत न अंत ॥ बंधन बंधि भवाए सोइ ॥ पइऐ किरति नचै सभु कोइ ॥ नचि नचि हसहि चलहि से रोइ ॥ उडि न जाही सिध न होहि ॥ नचणु कुदणु मन का चाउ ॥ नानक जिन् मनि भउ तिना मनि भाउ ॥२॥

उपर्युक्त नाटक को न समझने वाले संसारी लोग झूठे लोगों के चेले बनकर अपनी-अपनी डफली बजाते रहते हैं और उनके तथाकथित गुरु उन्हीं की धुन पर नाचते हुए अनेकों प्रकार से पैरों को हिलाते हैं और सिरों को घुमाते रहते हैं। वे अपने सिर के बालों में बदनामी की उड़ती हुई धूल को डालते रहते हैं और लोग उनके व्यवहार को देखकर उन पर हँसते हुए अपने अपने घरों की राह लेते हैं। वास्तव में उनका सांसारिक सुरताल को पूरा करना मात्र अपने स्वार्थ अर्थात रोटियों के लिए ही होता है। इसीलिए वे अपने आप को पछाड़ पछाड़ कर धरती पर भी लोटते रहते हैं। इस प्रकार के बने हुए कई कृष्ण और कई गोपियां गायन- वादन करते रहते हैं तथा इसी प्रकार से अनेकों सीता और राम बनकर भी गाते रहते है। केवल निर्भय निराकार प्रभु का नाम ही सच्चा है जिसने सारे संसार को पैदा किया और धारण कर रखा है। सेवक ऐसे ही निर्भय प्रभु की वन्दना करते हैं और अपने शुभ कर्मों का चढ़ावा उसे अर्पण करते हैं। ऐसे प्रेम से भरे हुए मन वाले सेवकों की जीवन रूपी रात्रि सुहानी और रसदायक हो जाती है। सिक्खों ने गुरु के विचारों के माध्यम से यही सीखा है कि प्रभु की कृपादृष्टि करवाने वाले कर्म ही जीव को संसार-सागर से पार उतारते हैं। अनेकों ही कोल्हू, चरखा, चक्कियां और चाक है। इसी प्रकार रेगिस्तान के बवण्डर भी अनन्त हैं। अनेकों ही लट्टू, मथानियां और अन्न निकालने वाले यन्त्र हैं। अनेकों पक्षी घूमते फिरते रहते हैं और कभी भी थकते नहीं। कईयों को शूल पर चढ़ा कर भी घुमाया जाता है। हे नानक, इस प्रकार घूमते रहने वालों की गिनती का भी कोई अन्त नहीं है। बन्धनों में बाँधकर वही दौड़ाता रहता है और अपने किए हुए कर्मों के कारण ही सभी नाचते फिरते हैं। संसार की माया में खुश होकर जो नाच-नाचकर यहाँ केवल हंसते रहते हैं, यहाँ से चलते समय वे ही रोते हैं। इस जीवन से उड़ उड़ कर भागा नहीं जा सकता और न ही कोई सिद्धि प्राप्त कर सकता है। नाचना कूदना तो केवल मन का ही चाव और खेल है। हे नानक, जिनके मन में उस प्रभु का भय है वास्तविक प्रेम उन्हीं के मन में होता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

नाउ तेरा निरंकारु है नाइ लइऐ नरकि न जाईऐ ॥
जीउ पिंडु सभु तिस दा दे खाजै आखि गवाईऐ ॥
जे लोड़हि चंगा आपणा करि पुंनहु नीचु सदाईऐ ॥
जे जरवाणा परहरै जरु वेस करेदी आईऐ ॥
को रहै न भरीऐ पाईऐ ॥५॥

हे प्रभु, तू निराकार नाम वाला है और तेरे नाम का सुमिरन करने से व्यक्ति को नर्क में नहीं जाना पड़ता। यह प्राण और शरीर सब उसी प्रभु का है और जो भी पास में है बाँट कर खाना चाहिए तथा किसी को देने के बारे में कुछ कहना भी नहीं चाहिए क्योंकि देकर जताने से दिए हुए का प्रभाव गँवा लिया जाता है। यदि अपना भला चाहते हो तो पुण्य-कार्य करते हुए भी अपने आप को नीच एवं निम्न कोटि का ही जनवाओ। यदि बुढ़ापे के रंग जरा वर्ण अर्थात सफेद बालों को जो कि बुढ़ापे की निशानी है किसी तरीके से हटा भी दो तो बुढ़ापा किसी अन्य वेष में फिर भी आ जाएगा। जब जीवन रूपी घड़े में उम्र का पानी पूरा भर जाता है तो फिर कोई भी यहाँ बना नहीं रहता अर्थात मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।। ५ ।।

सलोक मः १ ॥ मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि पड़ि करहि बीचारु ॥ बंदे से जि पवहि विचि बंदी वेखण कउ दीदारु ॥ हिंदू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपारु ॥ तीरथि नावहि अरचा पूजा अगर वासु बहकारु ॥ जोगी सुंनि धिआवन्हि जेते अलख नामु करतारु ॥ सूखम मूरति नामु निरंजन काइआ का आकारु ॥ सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि ॥ दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु ॥ चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा वेकार ॥ इकि होदा खाइ चलहि ऐथाऊ तिना भि काई कार ॥ जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार ॥ ओइ जि आखहि सु तूंहै जाणहि तिना भि तेरी सार ॥ नानक भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु ॥ सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पा छारु ॥१॥

मुसलमान अपनी शरियत (नियम कानून) की प्रशंसा करते हैं और उसे बार-बार पढ़कर उस पर विचार करते हैं। वे यह मानते हैं कि बन्दा वही है जो खुदा का दीदार करने के लिए शरियत की बन्दिश में बना रहता है। हिन्दु अपने शास्त्रों के माध्यम से उस अपरंपर एवं सुन्दर प्रभु की प्रशंसा करते हैं। वे तीर्थों पर स्नान करते हैं, मूर्तियों की पूजा अर्चना करते हैं तथा चन्दन आदि के सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग करते है। योगी लोग निर्विकल्प अर्थात शून्य समाधि में जाकर आराधना करते हैं और परमात्मा को अलख-अलख

नाम से पुकारते हैं। उनके अनुसार वह प्रभु सूक्ष्म स्वरूप वाला है जिस पर माया की कालिख का प्रभाव नहीं पड़ता और यह सारा दृष्ट जगत उस प्रभु का ही शरीर है। त्यागी व्यक्तियों के मन में संतुष्टि पैदा होती है जब वे किसी ज़रूरतमन्द को कुछ देने का विचार करते हैं। परन्तु देने के साथ ही साथ वे अन्तर्मन में परमात्मा से तो हज़ारों गुना अधिक माँग भी लेते हैं और इधर दानी के रूप में संसार भी उनके गुण गाता है। दूसरी ओर संसार में अनेकों चोर, व्याभिचारी, झूठे और विकारों से युक्त बुरे लोग भी हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो की हुई कमाई को समाप्त करके यहाँ से चल पड़ते हैं। क्या वास्तव में उन्होंने यहां कोई कमाई की भी है? हे प्रभु, जल, स्थल, अनेकों पुरियों में रहने वाले लोगों के द्वारा जो भी कहा जाता है तू उस सब को जानता है और उन्हें केवल तेरा ही आसरा है। हे नानक, भक्तजनों को तो केवल तेरे (प्रभु के) गुणानुवाद की ही भूख है क्योंकि तेरा सच्चा नाम ही उनका आसरा और आधार है। वे गुणवान लोगों के चरणों की धूलि बनकर सदैव दिन-रात आनन्द में लीन बने रहते हैं।। १ ।।

मः १ ॥ मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर ॥ घड़ि भाँडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ॥ जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर ॥ नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ॥२॥

मुसलमान को दबा देने के बाद जब उसका शरीर मिट्टी हो जाता है तो वह मिट्टी भी कभी कुम्हार के पास आ जाती है। कुम्हार उस मिट्टी के बर्तन बनाता और ईंटें भी बनाता है। जब वह बर्तन और ईंटें अर्थात वह मिट्टी भट्ठे में आ पड़ती है तो वह भी जलती हुई पुकार लगाती प्रतीत होती है। वह बेचारी भी जलती हुई रोती है क्योंकि उस पर भी अंगारे गिरते पड़ते रहते हैं। हे नानक, जिस प्रभु ने जगत की रचना की है वही इसके वास्तविक रहस्य को जानता है। इसीलिए यह मानना कि जलाया हुआ शरीर दोज़ख में जाता है और मिट्टी में दफ़न किया हुआ जन्नत में जाता है व्यर्थ है।। २ ।।

पउड़ी ॥

बिनु सतिगुर किनै न पाइओ बिनु सतिगुर किनै न पाइआ ॥
सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ ॥
सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ॥
उतमु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइआ ॥
जगजीवनु दाता पाइआ ॥६॥

हे भाईयो, सच्चे गुरु के बिना किसी ने भी प्रभु को प्राप्त नहीं किया है। प्रभु ने अपने आप को सच्चे गुरु में स्थित किया हुआ है यह बात पूर्ण रूप से प्रकट में कह दी गई है। यदि सच्चा गुरु जिसने अपने अन्दर के मोह को दूर कर लिया है किसी व्यक्ति

को मिल जाए तो वह व्यक्ति मायावी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। सभी विचारों में से उत्तम विचार यही है कि जिस व्यक्ति ने सच के साथ चित्त जोड़ लिया है उसे जगत् का जीवन वह प्रभु मिल गया है।। ६।।

सलोक मः १ ॥ हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ॥ हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ ॥ हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ॥ हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ॥ हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ॥ हउ विचि पाप पुंन वीचारु ॥ हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु ॥ हउ विचि हसै हउ विचि रोवै॥ हउ विचि भरीऐ हउ विचि धोवै ॥ हउ विचि जाती जिनसी खोवै ॥ हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा ॥ मोख मुकति की सार न जाणा ॥ हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ ॥ हउमै करि करि जंत उपाइआ ॥ हउमै बूझै ता दरु सूझै ॥ गिआन विहूणा कथि कथि लूझै ॥ नानक हुकमी लिखीऐ लेखु ॥ जेहा वेखहि तेहा वेखु ॥१॥

यह जीव अहम् में ही इस संसार में आता है और परमात्मा से अपने आप को अलग समझ कर अहंकार में ही यहां से चला जाता है। अहंकार के वशीभूत होकर ही यह किसी योनि में जन्म लेता है और अहंकार में ही मर जाता है। संसार में इसका सब कुछ देना लेना अहंकार में ही होता है। अहंकार में ही यह सब कमाई करता है और अहंकार के वशीभूत होकर ही सब गँवा देता है। यह जीव तो सत्याचरण करने वाला भी अपने अहंकार के कारण ही है और झूठ का आसरा भी यह अहंकार में ही लेता है। अहंकार-वश होकर यह स्वयं को परमात्मा से अलग समझने का भ्रम पालते हुए अपने किए हुए पाप और पुण्यों की गणना करता रहता है। अहंकारवश ही यह कभी नर्क और कभी स्वर्ग की यात्रा करता है। इसका हँसना रोना भी अहंकार का ही एक रूप है। अहंकार के कारण ही जीव का मन पापों की मैल से मलीन हो जाता है और फिर कभी-कभी अच्छे कामों के द्वारा यह उस मैल को धो भी लेता है। अहंकार में ही यह मानव जाति की मानवता रूपी उच्च श्रेणी से निचली श्रेणी में आ जाता है। अहंकार में पड़ा हुआ ही यह कभी भूत बन जाता है और कभी अपने आप को सयाने लोगों की तरह प्रस्तुत करता है। अहंकार में रहते हुए इसे मोक्ष और मुक्ति की कोई खोज ख़बर नहीं रहती। अपने अहंकार में पड़े रहकर अर्थात अपने आप को परमात्मा से अलग मानकर यह भ्रमों में उलझा रहता है। अहंकार में ग्रस्त जीव ही बार-बार अनेक रूपों में जन्म लेता रहता है। वास्तव में यदि अहंकार के वास्तविक रूप को समझ लिया जाए तभी प्रभु के द्वार के बारे में पता चलता है अन्यथा ज्ञान से विहीन व्यक्ति तो केवल वाद-विवादों में ही उलझे रहते हैं। प्रभु के हुकम के अन्तर्गत ही व्यक्ति अपने कर्मों के लेख अपने लिए लिखता है और जैसा हम अपने आप

को देखते हैं अर्थात अपने प्रति जैसी धारणा हम रखते हैं उसी के अनुरूप हम प्रभु के हुकुम की व्याख्या अपने लिए कर लेते हैं।। १ ।।

महला २ ॥ हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥ हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥ हउमै किथहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ॥ हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि ॥ हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि॥ किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥ नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥२॥

अहंकार ही हमारा व्यक्तित्व है और इसी के अन्तर्गत हम कर्म करते हैं। अहंकार के अन्तर्गत काम करते हुए यही बड़ा बन्धन है कि जीव बार-बार योनियों में पड़े रहते हैं। दरअसल यह अहंकार अथवा अपने आप को अलग समझने की भावना पैदा कहाँ से होती है और कौन सा ऐसा उपाय है जिससे यह भावना दूर होती है। यह अलगाव की भावना पैदा करने वाला भी परमात्मा है और जीव अपने ही पैदा किए हुए संस्कारों के अनुसार पुनः वैसे ही कर्म करने के लिए दौड़ते रहते हैं। अहंकार एक बहुत ही दीर्घ रोग है परन्तु इसका इलाज भी इसी में अन्तर्निहित है अर्थात जब अहंकार को अपने व्यक्तित्व का आभूषण न मानकर उसे व्यक्तित्व के रोग के रूप में देखने की समझ बुद्धि आ जाए तो यही रोग वास्तव में औषधि बन जाता है। जीव पर यदि प्रभु की कृपा हो जाए तो वह शब्द-गुरु के अनुरूप अपना आचरण बना लेता है और नानक का कथन है कि हे लोगो, ध्यान से सुन लो इस उपाय से ही अहंकार का यह दुख दूर हो सकता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

सेव कीती संतोखीईं जिन्ही सचो सचु धिआइआ ॥
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुक्रितु धरमु कमाइआ ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ॥
तूं बखसीसी अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥
वडिआई वडा पाइआ ॥७॥

संतोषी व्यक्ति ही सेवा करते हैं और वे केवल और केवल एक सत्य का ही सुमिरन करते रहते हैं। वे बुरे रास्ते पर अपना पैर नहीं रखते और अच्छे आचरण के माध्यम से कर्त्तव्य कर्म करते रहते हैं। वे दुनियां के झूठे बन्धनों को तोड़ देते हैं और आहार भी कम ही खाते हैं। हे प्रभु, जब तेरी बहुत कृपा हो जाए तो तू सदैव और अधिक दान देता रहता है। इस प्रकार उस बड़े के बड़प्पन का गुणगान करने से ही उस बड़े को पा लिया जाता है।। ७ ।।

सलोक मः १ ॥ पुरखाँ बिरखाँ तीरथाँ तटाँ मेघाँ खेताँह ॥ दीपाँ लोआँ मंडलाँ खंडाँ वरभंडाँह ॥ अंडज जेरज उतभुजाँ खाणी सेतजाँह ॥ सो मिति जाणै नानका सराँ मेराँ जंताह॥ नानक जंत उपाइ कै संमाले सभनाह ॥ जिनि करतै करणा कीआ चिंता भि करणी ताह ॥ सो करता चिंता करे जिनि उपाइआ जगु ॥ तिसु जोहारी सुअसति तिसु तिसु दीबाणु अभगु ॥ नानक सचे नाम बिनु किआ टिका किआ तगु ॥१॥

हे नानक, वह प्रभु ही जानता है कि पुरुषों, वृक्षों, तीर्थों, तटों, बादलों और क्षेत्रों की कितनी गिनती है। वह परमात्मा ही जानता है कि कितने द्वीप, लोक, मण्डल, खण्ड एवं ब्रह्माण्ड हैं। कितने प्रकार के अण्डज, जेरज, उद्भिज और स्वेदज जीव है। वह प्रभु ही जानता है कि कितने प्रकार के समुद्र, पर्वत और जीव-जन्तु हैं। हे नानक, वह जीवों को पैदा करके सब का पालन-पोषण भी करता है। जिस कर्ता ने यह सब रचना की है वह ही इसकी चिन्ता भी करता है। जिस कर्ता ने यह संसार उत्पन्न किया है वही इसकी देखभाल की चिन्ता भी करता है। उस भले प्रभु को ही प्रणाम है। वही कल्याणकारी है और उसी का दरबार निरन्तर बना रहने वाला है। हे नानक, उस प्रभु के सच्चे नाम के बिना टीका और जनेऊ आदि का प्रपंच व्यर्थ है।। १ ।।

मः १ ॥ लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवाणु ॥ लख तप उपरि तीरथाँ सहज जोग बेबाण ॥ लख सूरतण संगराम रण महि छुटहि पराण ॥ लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअहि पाठ पुराण ॥ जिनि करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाणु ॥ नानक मती मिथिआ करमु सचा नीसाणु ॥२॥

लाखों ही नेकियां, अच्छाइयां और लाखों ही स्वीकृत पुण्य कार्य हैं, लाखों प्रकार की तीर्थों पर तपस्याएं की जाती हैं और जंगलों मे सहज योग का अभ्यास किया जाता है। लाखों ही संग्रामों में जूझने वाले शूरवीर हैं जो युद्ध-क्षेत्र में ही प्राण त्यागते हैं। स्मृतियों में सुरति लीन करके लाखों ही ज्ञानी-ध्यानी होते हैं जो पुराणों आदि का भी पाठ करते हैं। परन्तु इन सब से कुछ नहीं होता। हे नानक, जिस कर्ता प्रभु ने संसार पैदा किया है और जीवों का जन्म लेना एवं मरना निर्धारित किया है उस प्रभु की कृपा ही वास्तव में सच्चा प्रतीक चिन्ह है जिसे प्राप्त किया जाना चाहिए; क्योंकि अन्य सब चतुराईयां झूठी ही हैं।। २ ।।

पउड़ी ॥

सचा साहिबु एकु तूं जिनि सचो सचु वरताइआ ॥
जिसु तूं देहि तिसु मिलै सचु ता तिन्ही सचु कमाइआ ॥
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ह कै हिरदै सचु वसाइआ ॥

मूरख सचु न जाणन्ी मनमुखी जनमु गवाइआ ॥
विचि दुनीआ काहे आइआ ॥८॥

हे प्रभु, एक तू ही सच्चा साहिब है जिसने सब ओर सत्य ही सत्य व्याप्त कर रखा है। जिसे तू देता है वही सत्य प्राप्त करता है और प्राप्त करने के बाद ऐसे व्यक्ति सत्य पर आचरण करते हैं। जिन्हें सच्चा गुरु मिल जाता है उन्हें स्थिरता और सत्य की स्थिति प्राप्त होती है और सच्चा गुरु उनके हृदय में सत्य को बसा देता है। मूर्ख व्यक्ति इस सत्य की महिमा को नहीं जानते और मनमुख बनकर जीवन गँवा देते हैं। ऐसे व्यक्तियों को संसार में जन्म लेने का कोई लाभ नहीं होता।। ८ ।।

सलोकु मः १ ॥ पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ ॥ पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात ॥ पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ॥ पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास ॥ नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख ॥१॥

बेशक गाड़ियों में लदी हुई सभी पुस्तकें पढ़ ली जाएं और बेशक इतनी पुस्तकें पढ़ ली जाएं कि उनके अच्छे खासे ढेर लगाए जा सकें; बेशक इतनी पुस्तकें पढ़ ली जाएं कि बड़ी-बड़ी नावों और खड्डों को उनसे भरा जा सकें; पढ़ाई करते हुए ही बेशक सालों साल व्यतीत हो जाएं और सालों के सभी महीने ही पढ़ाई की जाए; सारी उम्र भी बेशक पढ़ते हुए गुज़ार दी जाए और बेशक जीवन के सभी श्वास पढ़ाई करते हुए ही व्यतीत किए जाएं तो भी प्रभु के समक्ष इनमें से कुछ भी स्वीकृत नहीं होता। हे नानक, प्रभु के दरबार में केवल प्रभु के गुणानुवाद की एक बात ही स्वीकार की जाती है; बाकी सब कुछ तो अहंकार बढ़ाने के लिए सिर खपाना ही है।। १ ।।

मः १ ॥ लिखि लिखि पड़िआ ॥ तेता कड़िआ ॥ बहु तीर्थ भविआ ॥ तेतो लविआ ॥ बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ ॥ सहु वे जीआ अपणा कीआ॥ अंनु न खाइआ सादु गवाइआ ॥ बहु दुखु पाइआ दूजा भाइआ ॥ बसत्र न पहिरै ॥ अहिनिसि कहरै ॥ मोनि विगूता ॥ किउ जागै गुर बिनु सूता ॥ पग उपेताणा ॥ अपणा कीआ कमाणा ॥ अलु मलु खाई सिरि छाई पाई ॥ मूरखि अंधै पति गवाई ॥ विणु नावै किछु थाइ न पाई ॥ रहै बेबाणी मड़ी मसाणी ॥ अंधु न जाणै फिरि पछुताणी ॥ सतिगुरु भेटे सो सुखु पाए ॥ हरि का नामु मंनि वसाए ॥ नानक नदरि करे सो पाए ॥ आस अंदेसे ते निहकेवलु हउमै सबदि जलाए ॥२॥

जो जितना ही लिखता-पढ़ता है वह उतना ही जला-भुना रहता है। जो अनेकों तीर्थों

पर भ्रमण करते हैं वे उतना ही ज्यादा अपने किए हुए का बखान करते हैं। जो अनेकों वेश धारण करते हैं वे केवल अपने शरीर को ही कष्ट देते हैं। हे जीव, यह सब तेरे किए हुए ही प्रपंच हैं इसलिए अब तू ही अपने किए हुए का फल भोग। जो अन्न न खाकर व्रत आदि रखते हैं उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता ब्लकि वे विभिन्न प्रकार के स्वादों से भी वंचित रह जाते हैं। द्वैतभाव में पड़कर व्यक्ति बहुत दुख ही प्राप्त करता है। व्यक्ति वस्त्र नहीं पहनता है और दिन-रात के प्रकोप को व्यर्थ ही सहन करता है। मौन धारण करके जीव ख्वार ही होता है और वह माया ही निद्रा में सोया हुआ भला गुरु के बिना कैसे जग सकता है। व्यक्ति नंगे पाँव घूमता है तो उसे अपने किए हुए इस प्रपंच का फल जरूर ही मिलता है अर्थात वह ठोकर आदि खाता ही रहता है। जो अभक्ष्य मल-मूत्र आदि का सेवन करते हैं उन्होंने सिर पर राख ही डाल रखी है। ऐसे अन्धे मूर्खों ने तो मानव होने का अपना सम्मान ही खो दिया है। प्रभु-नाम के बिना दरअसल कहीं भी जगह नहीं मिलेगी। लोग जंगलों और शमशानों में साधना करने के नाम पर रहते हैं परन्तु ये अन्धे उस प्रभु को नहीं पहचानते और इन्हें फिर पछताना पड़ता है। जो सच्चे गुरु से मिलता है वही सुख प्राप्त करता है। वही प्रभु के नाम को मन में बसाता है। हे नानक, प्रभु जिस पर कृपादृष्टि करता है वही उसे प्राप्त करता है, वही आशाओं और चिन्ताओं से विहीन होकर शब्द के माध्यम से अपने अहंकार को जलाकर नष्ट कर देता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

भगत तेरै मनि भावदे दरि सोहनि कीरति गावदे ॥
नानक करमा बाहरे दरि ढोअ न लहन्ी धावदे ॥
इकि मूलु न बुझन्हि आपणा अणहोदा आपु गणाइदे ॥
हउ ढाढी का नीच जाति होरि उतम जाति स दाइदे ॥
तिन् मंगा जि तुझै धिआइदे ॥६॥

हे प्रभु, तेरे मन को तेरे भक्त ही प्यारे लगते हैं जो तेरे द्वार पर शोभायमान हैं और तेरी कीर्ति का गान कर रहे हैं। हे नानक, अभागे और कृपा विहीन लोग भटकते फिरते हैं और उन्हें प्रभु के द्वार पर कोई आसरा नहीं मिलता। कई ऐसे हैं जो अपनी वास्तविकता को नहीं समझते और प्रभु नाम आदि उनके पास कुछ नहीं होता परन्तु फिर भी वे अपनी गिनती बड़े लोगों में करवाते हैं। हे प्रभु, मैं तो तथाकथित नीच जाति (कोटि) का व्यक्ति हूँ, अन्य सब तो अपने आप को उत्तम श्रेणी का व्यक्ति कहलाते हैं। मैं तो केवल उन्हीं का संग-साथ माँगता हूँ जो तेरा सुमिरन करते रहते हैं।। ६।।

सलोकु मः १ ॥ कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ॥ कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ॥ कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्णहारु ॥ कूड़ु काइआ

कूड़ु कपड़ु कूड़ु रूपु अपारु ॥ कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ॥ कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ॥ किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ॥ कूड़ु मिठा कूड़ु माखिउ कूड़ु डोबे पूरु ॥ नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु ॥१॥

यह सारा संसार झूठा और छलावा है। इसमें राजा प्रजा सभी छल रूप ही हैं। राजाओं के मण्डप और महल सभी छल ही हैं और इनमें बसने वाले राजा भी क्षण भंगुर छल रूप ही हैं। सोना-चाँदी और इस सोने-चाँदी को पहनने वाले भी भ्रम रूप ही हैं। यह शरीर कपड़े और रूप सौंन्दर्य सब झूठा ही है। पति, पत्नी आदि सारे सम्बन्ध छलावा ही हैं। कई इन्हीं सम्बन्धों में फंसे हुए ख्वार हो रहे हैं। इस छलावे में फंसे हुए जीवों का तो अब इस छल से ही मोह पैदा हो गया है और इसीलिए अपना पैदा करने वाला कर्ता-प्रभु भूल गया है। इस संसार में भला किससे मित्रता की जाए क्योंकि यह सारा जगत ही विनाशशील है। यह छल रूपी जगत ही सब को प्रिय लग रहा है और इसीलिए यह छलावा ही झुण्डों के झुण्ड जीवों को डुबो दे रहा है। नानक, हे प्रभु, तेरे आगे अरदास करता है कि तुझ से विहीन होकर यह संसार केवल झूठ मात्र ही बनकर रह गया है।। १।।

मः १ ॥ सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ ॥ कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ ॥ सचु ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु ॥ नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु ॥ सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ॥ धरति काइआ साधि कै विचि देइ करता बीउ ॥ सचु ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ ॥ दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ ॥ सचु ताँ परु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु ॥ सतिगुरू नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु ॥ सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ ॥ नानकु वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ ॥२॥

जगत की सत्यता तभी समझ आ सकती है जब सत्य स्वरूप परमात्मा व्यक्ति के हृदय में टिक जाए। ऐसी अवस्था में झूठ और छल की मैल उतर जाती है और उसका शरीर भी धुलकर साफ हो जाता है। सत्य की समझ तो तभी आती है जब वास्तव में व्यक्ति उस सत्य के साथ प्रेमपूर्वक जुड़ता है। तभी उस प्रभु का नाम सुनकर उसका मन खिल उठता है और उसे सांसारिक छलावों से मुक्ति का द्वार दिखाई पड़ जाता है। सत्य की पहचान तो तभी आती है जब व्यक्ति जीवन की वास्तविक युक्ति को जान जाता है अर्थात काया रूपी धरती का शोधन करके वह उसमें प्रभु-नाम का बीज बो देता है। सत्य को तो तब जाना जाता है जब व्यक्ति सच्चे गुरु के पास से सच्ची शिक्षा लेता है तथा जीवों पर दया करने की युक्ति सीखता है और ज़रूरतमन्दों को यथाशक्ति दान बाँटकर पुण्य कमाता

है। व्यक्ति के अन्दर क्रियाशील सत्य-प्रभु की पहचान तो तभी पड़ती है जब व्यक्ति अपने अन्तर्मन के तीर्थ पर अपना निवास बना ले। अपने सच्चे गुरु से उपदेश लेकर अपने आत्म-तीर्थ पर ही निवास बनाए रखे। नानक विनम्रतापूर्वक अरदास करता है कि जिनके हृदय में अर्थात जिनके पल्ले में सत्य प्रभु बना रहता है उनके सभी कष्टों की औषधि वह स्वयं बन जाता है और वह उनके सारे विकारों और पापों को धोकर बाहर निकाल देता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

दानु महिंडा तली खाकु जे मिलै त मसतकि लाईऐ ॥
कूड़ा लालचु छडीऐ होइ इक मनि अलखु धिआईऐ ॥
फलु तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ ॥
जे होवै पूरबि लिखिआ ता धूड़ि तिना दी पाईऐ ॥
मति थोड़ी सेव गवाईऐ ॥१०॥

हे प्रभु, मेरा दान तो सत्य को जानने वाले लोगों की चरण-धूलि ही है; यदि यह मुझे मिल जाए तो मैं माथे पर लगाऊँ। झूठे लालचों को छोड़ दिया जाना चाहिए और एकाग्र मन से केवल अदृष्ट प्रभु का ही सुमिरन करना चाहिए। व्यक्ति फल वैसा ही पाता है जैसा वह कर्म करता है। यदि पूर्व से ही भाग्यलेख लिखा हुआ हो तो ऐसे सत्य को जानने वाले शान्त पुरुषों की चरण-धूलि प्राप्त होती है। अल्पबुद्धि होने के कारण व्यक्ति अपनी की हुई सेवा को भी व्यर्थ बना लेता है।। १० ।।

सलोकु मः १ ॥ सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल ॥ बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि ॥ जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ ॥ नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ ॥ भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ ॥ नानक भगती जे रपै कूड़ै सोइ न कोइ ॥१॥

संसार के लोगों के मन से सत्य की भावना समाप्त हो गई है और कलियुग की कालिमा के कारण लोग वेताल (भूत, प्रेत जैसे) बन गए हैं। जिन्होंने धर्म का बीज बोया था वे उसकी महिमा और सम्मान अपने साथ ही ले गए हैं। अब तो धर्म का बीज दो टुकड़े होकर दाल बन गया है अर्थात अब विघटनकारी रुचियां प्रबल हो उठी हैं इसलिए यह दाल बना हुआ बीज भला अब कैसे उग सकता है। यदि यह अपने सम्पूर्ण रूप में एकत्व धारण करे तथा फिर वायुमण्डल भी अनुकूल हो तब यह पनप सकता है। हे नानक, जैसे कपड़े को रंग देने के योग्य बनाने के लिए पहले भट्ठी पर चढ़ाया जाता है उसी तरह मन को प्रभु के भय रूपी भट्ठी में डाल कर विनम्रता रूपी रसायन में से निकाला जाए तभी उस पर प्रभु-नाम का रंग चढ़ता है। हे नानक, यदि इस प्रकार मन को प्रभु रूपी भट्ठी में रंगा जाए तो छल आदि इसके पास भी नहीं आ पाता।। १ ।।

मः १ ॥ लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु ॥ कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु ॥ अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु ॥ गिआनी नचहि वाजे वावहि रूप करहि सीगारु ॥ ऊचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु ॥ मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु ॥ धरमी धरमु करहि गावावहि मंगहि मोख दुआरु ॥ जती सदावहि जुगति न जाणहि छडि बहहि घर बारु ॥ सभु को पूरा आपे होवै घटि न कोई आखै ॥ पति परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै ॥२॥

जगत में लोभ और पाप क्रमशः राजा और वज़ीर हैं और इनका मुख्य नौकर (चौधरी) झूठ है। इन्हीं के दरबार में काम नायब है और इसी से ही परामर्श लिया जाता है अर्थात यही बड़ा सलाहकार है। इनकी प्रजा अन्धी और ज्ञानविहीन है और तृष्णा रूपी अग्नि के ही पीछे लगी हुई है। ज्ञानवान कहलाने वाले उपदेशक लोग अपने स्वार्थ के लिए नाचते, वाद्य बजाते और अनेकों प्रकार के वेश धारण करते हैं। वे ऊँचे सुर में युद्धों का वर्णन पुकार पुकार कर करते हैं और योद्धागणों की बहादुरी की कथाएं सुनाते और उनकी व्याख्या करते हैं। ये मूर्ख लोग ही अपना पाण्डित्य दिखाते हैं और अपनी हिकमत और हुज्जत के बल पर धन-माल इकट्ठा करने में लीन बने रहते हैं। अपने आपको धार्मिक समझने वाले धर्म का काम करते हुए दिखाई देते हैं परन्तु धर्म के फल को गँवा लेते हैं क्योंकि धार्मिक कार्यों के बदले में स्वार्थी बनकर वे अपनी मुक्ति माँगते हैं अर्थात निष्काम कर्म नहीं करते। कई ऐसे भी हैं जो बहुत संयमी हैं और अपने आप को यति कहलाते हैं परन्तु यति होने की युक्ति को वे नहीं जानते और देखा देखी ही अपने घर-बार को छोड़ बैठते हैं। पाप, काम और लोभ से प्रभावित हर व्यक्ति अपने आप को पूर्ण और सर्वगुण सम्पन्न समझता है। कोई भी अपनी कमी को स्वीकार नहीं करता परन्तु हे नानक, वही व्यक्ति तौल अर्थात परख में पूरा उतरता है जिसे तौलते समय यदि तराजू के दूसरी ओर परमात्मा की ओर से मिले सम्मान रूपी बाट को डाला जाए तो वह पूरा उतरे। प्रभु दरबार में सम्मान पाने वाला ही सभी कमियों से विहीन होता है।। २ ।।

मः १ ॥ वदी सु वजगि नानका सचा वेखै सोइ ॥ सभनी छाला मारीआ करता करे सु होइ ॥ अगै जाति न जोरु है अगै जीउ नवे ॥ जिन की लेखै पति पवै चंगे सेई केइ ॥३॥

हे नानक, जो बात होती है उसी की सब ओर चर्चा होती है अर्थात यह बात जानी मानी है कि सच्चा प्रभु स्वयं सब की संभाल कर रहा है। सभी जीव अपने-अपने हिसाब से इस संसार में एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिए छलांगे लगाते हैं परन्तु जो कर्ता-प्रभु करता है वही होता है। प्रभु के दरबार में किसी की जाति का या किसी के बल का रुआब

नहीं चल सकता क्योंकि वहाँ सभी ऐसे जीव हैं जो एक दूसरे के लिए अजनबी हैं। वहाँ उन्हीं लोगों को भला माना जाता है जिनको कर्मो का लेखा-जोखा होने पर वहाँ सम्मान प्राप्त होता है।। ३ ।।

पउड़ी ॥

धुरि करमु जिना कउ तुधु पाइआ ता तिनी खसमु धिआइआ ॥
एना जंता कै वसि किछु नाही तुधु वेकी जगतु उपाइआ ॥
इकना नो तूं मेलि लैहि इकि आपहु तुधु खुआइआ ॥
गुर किरपा ते जाणिआ जिथै तुधु आपु बुझाइआ ॥
सहजे ही सचि स माइआ ॥११॥

हे प्रभु, जिन लोगों पर तूने पहले से ही कृपा की हुई है उन्होंने ही अपने मालिक प्रभु का सुमिरन किया है। इन जीवों के वश में कुछ भी नहीं है। यह तू ही है जिसने विभिन्न रूप रंगों वाला यह जगत् पैदा किया है। कई जीवों को तू अपने साथ मिलाए रहता है पर कईयों को तू अपने से दूर करके ख्वार करता रहता है। जिसको तुमने स्वयं समझाया है उसी ने ही गुरु की कृपा से प्रभु को जान लिया है। ऐसे व्यक्ति स्वाभाविक ही सत्य रूपी प्रभु में लीन हो जाते हैं।। ११ ।।

सलोकु म : १ ॥ दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होई ॥ तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई ॥१॥ बलिहारी कुदरति वसिआ॥ तेरा अंतु न जाई लखिआ ॥१॥ रहाउ ॥ जाति महि जोति जोति महि जाता अकल कला भरपूरि रहिआ ॥ तूं सचा साहिबु सिफति सुआलिउ जिनि कीती सो पारि पइआ ॥ कहु नानक करते कीआ बाता जो किछु करणा सु करि रहिआ ॥२॥

जीव के लिए, सुखों से रोगी हो चले व्यक्ति के लिए दुख तो औषधि है क्योंकि जब सुख होता है तो परमात्मा याद नहीं रहता। हे प्रभु, तू ही कर्ता है मैं कुछ भी कर सकने वाला नहीं हूँ क्योंकि जो मैं करता हूँ वह नहीं होता। सारे संसार में बसे हुए हे प्रभु, मैं तुझ पर बलिहारी जाता हूँ। तेरे ओर-छोर को समझा नहीं जा सकता।। १ ।। रहाउ।। जीवों की सभी जातियों, प्रजातियों में तेरी ही ज्योति है और तेरी ज्योति में ही सभी जीव स्थित हैं। तू बिना किसी खास कला-कौशल के इन सब में पूर्ण रूप से व्याप्त है। तू ही सच्चा मालिक है और तेरा गुणानुवाद सुन्दर है; जिसने यह किया है वह संसार सागर से पार हो गया है। हे नानक, यह सब उस कर्ता-प्रभु की लीला है कि उसने जो कुछ करना है वह किए जा रहा है।। २ ।।

मः २ ॥ जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राहमणह ॥ खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबदं परा क्रितह ॥ सरब सबदं एक सबदं जे को जाणै भेउ ॥ नानकु ता का दासु है सोई निरंजन देउ ॥३॥

योगियों का जीवन मार्ग ज्ञान प्राप्ति का जीवन मार्ग माना जाता है तथा ब्राह्मणों का जीवन मार्ग वेद-वेदांग का अध्ययन आदि करना परम्परा से माना जाता है। क्षत्रियों का जीवन-मार्ग अभी तक शौर्य का मार्ग माना जाता है तथा चली आ रही परम्परा से दूसरों की सेवा करना शूद्र का जीवन-मार्ग माना जा रहा है। सबका जीवन मार्ग वास्तव में एक ही जीवन मार्ग है अर्थात सब कार्य सबने करने है यदि कोई इस रहस्य को जान लेता है (और सबको समान भाव से देखता है) तो नानक उसका दास है और वही व्यक्ति कालिमा विहीन प्रभु का रूप है।। ३ ।।

मः २ ॥ एक क्रिसनं सरब देवा देव देवा त आतमा ॥ आतमा बासुदेवस्यि जे को जाणै भेउ ॥ नानकु ता का दासु है सोई निरंजन देउ ॥४॥

सभी देवताओं का कृष्ण अर्थात परमात्मा एक ही है। वही परमात्मा देवताओं के देवत्व की आत्मा है। आत्मा ही प्रभु है यदि कोई इस रहस्य को जानता है तो नानक उसका दास है और ऐसा व्यक्ति ही निरंजन रूप परमात्मा है।। ४ ।।

मः १ ॥ कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ ॥ गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ ॥५॥

घड़े में पानी बँधा रहकर टिका रहता है परन्तु पानी के बिना घड़ा भी बन नहीं सकता। इसी प्रकार ज्ञान का बांधा हुआ मन टिका रहता है परन्तु ज्ञान स्वयं गुरु के बिना नहीं हो सकता।। ५ ।।

पउड़ी ॥

पड़िआ होवै गुनहगारु ता ओमी साधु न मारीऐ ॥
जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ ॥
ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ ॥
पड़िआ अतै ओमीआ वीचारु अगै वीचारीऐ ॥
मुहि चलै सु अगै मारीऐ ॥१२॥

यदि पढ़ा-लिखा व्यक्ति बुरे कर्मों वाला हो जाए तो अनपढ़ व्यक्ति को घबराना नहीं चाहिए क्योंकि यदि अनपढ़ व्यक्ति भी नेक है तो उसे मार नहीं सहनी पड़ती। मनुष्य जिस प्रकार का अच्छा बुरा कर्म करता है वह उसी प्रकार का प्रसिद्ध हो जाता है इसलिए

जीवन में ऐसा खेल नहीं खेलना चाहिए जिससे प्रभु-दरबार में जीवन की बाज़ी को हार जाया जाए। वास्तविक रूप से पढ़ा लिखा कौन है और अनपढ़ कौन है इस तथ्य का विचार तो प्रभु के दरबार में ही होता है अर्थात अच्छे कर्म वाला पढ़ा लिखा और बुरे कर्म वाला तथाकथित पढ़ा-लिखा भी अनपढ़ ही माना जाता है। जो अपने मुँह की तरफ देखकर ही आगे चलता है अर्थात जो मनमुख है वह आगे जाकर अवश्य मार खाता है।। १२ ।।

सलोकु मः १ ॥ नानक मेरु सरीर का इकु रथु इकु रथवाहु ॥ जुगु जुगु फेरि वटाईअहि गिआनी बुझहि ताहि ॥ सतजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु ॥ त्रेतै रथु जतै का जोरु अगै रथवाहु ॥ दुआपुरि रथु तपै का सतु अगै रथवाहु ॥ कलजुगि रथु अगनि का कूड़ु अगै रथवाहु ॥१॥

हे नानक, सभी योनियों में सुमेरु पर्वत जैसा शिरोमणि यह मानव शरीर एक रथ है और एक इसका रथवान है। प्रत्येक युग में इस शरीर रूपी रथ और इसका स्वभाव रथवान बदलते रहते है; इस रहस्य को ज्ञानवान व्यक्ति ही बूझते हैं। सतियुग में मानव शरीर रूपी रथ संतोष का रथ कहा जाता है और इसका रथवान धर्म होता है। त्रेता युग में मानव शरीर संयम (यतीत्व) का रथ समझा जाता है और इसका रथवान बल माना जाता है। द्वापर युग में मानव शरीर तपस्या रूपी रथ बन जाता है और इसका रथवान ऊँचा आचरण होता है। कलियुग में मानव शरीर तृष्णा रूपी अग्नि का रथ बना हुआ है और अब इस रथ का रथवाहक (सारथी) झूठ बना हुआ है।। १ ।।

मः १ ॥ साम कहै सेतंबरु सुआमी सच महि आछै साचि रहे ॥ सभु को सचि समावै ॥ रिगु कहै रहिआ भरपूरि ॥ राम नामु देवा महि सूरु ॥ नाइ लइऐ पराछत जाहि ॥ नानक तउ मोखंतरु पाहि ॥ जुज महि जोरि छली चंद्रावलि कानु क्रिसनु जादमु भइआ ॥ पारजातु गोपी लै आइआ बिंद्राबन महि रंगु कीआ ॥ कलि महि बेदु अथरबणु हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ॥ नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ ॥ चारे वेद होए सचिआर ॥ पड़हि गुणहि तिन्ह चार वीचार ॥ भउ भगति करि नीचु सदाए॥ तउ नानक मोखंतरु पाए ॥२॥

सामवेद कहता है कि सतियुग में जगत के मालिक का रंग सफेद है और उस समय सब कुछ सत्य में ही लीन बना रहता था और अन्ततः सत्य में ही समा जाता था। ऋगवेद कहता है कि वह प्रभु सब में श्रेष्ठ रूप में उसी प्रकार व्याप्त है जैसे राम का नाम इष्ट देवों में श्रेष्ठ और सूर्य को देवताओं में श्रेष्ठ माना जाता है। प्रभु का नाम लेने से सभी पाप दूर होते थे और हे नानक, इस प्रकार लोग मुक्ति प्राप्त करते थे। यजुर्वेद के समय

कृष्ण कन्हैया यादव हुआ जिसने अपने बल से चन्द्रावली नामक गोपी का हरण किया। वह अपनी प्रिय गोपी सत्यभामा के लिए इन्द्र के बाग से पारिजात वृक्ष भी ले आया और वृन्दावन में आनन्द उपभोग किया। कलियुग में अथर्ववेद प्रमुख हो गया है और अब संसार के मालिक का नाम खुदा और अल्लाह हो गया है। लोगों ने नीले वस्त्रों के कपड़े पहने हुए हैं और अब तुर्कों और पठानों का राज हो गया है। इस प्रकार चारों वेद अलग अलग स्वभावों और धर्मों को बताकर सच्चे बन जाते हैं। जो लोग उन्हें पढ़ते और उनका चिन्तन करते हैं उनको कर्मों के गुणों का पता चल जाता है। परन्तु हे नानक, वास्तविक तथ्य तो यह है कि यदि व्यक्ति प्रेम से प्रभु की भक्ति करके फिर भी अपने आप को विनम्र और नीचा ही कहलाए तभी वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

सतिगुर विटहु वारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ ॥
जिनि करि उपदेसु गिआन अंजनु दीआ इनी नेत्री जगतु निहालिआ ॥
खसमु छोडि दूजै लगे डुबे से वणजारिआ ॥
सतिगुरू है बोहिथा विरलै किनै वीचारिआ ॥
करि किरपा पारि उतारिआ ॥१३॥

मैं ऐसे सच्चे गुरु पर बलिहारी जाता हूँ जिसके मिलने से प्रभु का सुमिरन किया जाता है। परमात्मा का सुमिरन और उपदेश रूपी ज्ञान-अंजन मिलने से ज्ञान की आँखों से इस संसार के विभिन्न रूपों को वास्तविक रूप में देखा जाता है। जो प्रभु को छोड़कर अन्यों के पीछे लगे रहते हैं जीवन के ऐसे व्यापारी डूब जाते हैं। कोई बिरला ही इस बात पर विचार करता है कि सच्चा गुरु वास्तव में पार ले जाने वाला जहाज है। वही कृपा करके जीव को संसार सागर से पार उतार देता है।। १३ ।।

सलोकु मः १ ॥ सिंमल रुखु सराइरा अति दीरघ अति मुचु ॥ ओइ जि आवहि आस करि जाहि निरासे कितु ॥ फल फिके फुल बकबके कंमि न आवहि पत ॥ मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु ॥ सभु को निवै आप कउ पर कउ निवै न कोइ ॥ धरि ताराजू तोलीऐ निवै सु गउरा होइ॥ अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहि ॥ सीसि निवाइऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहि ॥१॥

सेमल का वृक्ष तीर की तरह सीधा, लम्बा और रुई के समान लगे हुए फल वाला होता है। ऐसे लम्बे ऊँचे, सुन्दर और फलयुक्त वृक्ष को देखकर यदि कोई उसके पास आता है तो वही जानता है कि उसे कितनी निराशा होती है। विशाल दिखने वाले इस पेड़ के फल फीके, फूल स्वादहीन होते हैं और इसके पत्ते भी किसी काम नहीं आते। हे नानक,

सभी नैतिक नियमों का तत्व सार यही है कि सभी गुणों से मीठा गुण विनम्रता ही है; उसी को ही व्यवहार में लाना चाहिए। व्यक्ति यदि विनम्र होते भी हैं तो वे अपने स्वार्थ के लिए ही होते हैं दूसरे की भलाई और सम्मान के लिए कोई भी विनम्र नहीं होता। परन्तु तराजू पर रख कर भी यदि तौला जाए तो विनम्र बना रहने वाला ही भारी नज़र आता है। कभी-कभी अपराधी व्यक्ति भी दुगना झुकता है - जैसे मृग पर निशाना साधने वाला झुक कर ही उसको मारता है। इसीलिए मात्र सिर झुकाने से क्या होगा यदि हृदय अशुद्ध एवं छल से भरा हुआ है।

मः १ ॥ पड़ि पुसतक संधिआ बादं ॥ सिल पूजसि बगुल समाधं ॥ मुखि झूठ बिभूखण सारं ॥ त्रैपाल तिहाल बिचारं ॥ गलि माला तिलकु लिलाटं॥ दुइ धोती बसत्र कपाटं ॥ जे जाणसि ब्रहमं करमं ॥ सभि फोकट निसचउ करमं ॥ कहु नानक निहचउ धिआवै ॥ विणु सतिगुर वाट न पावै ॥२॥

विद्वान पण्डित पुस्तकें पढ़कर संध्या समय वाद-विवाद करते हैं। वे शिलाओं को पूजते हैं और बगुलों की तरह समाधि लगाते हैं। झूठ बोल बोलकर लोहे को ही सोने का बना हुआ गहना बताते हैं। तीन पंक्तियों वाली गायत्री को दिन में तीन बार विचारपूर्वक कहते हैं। गले में माला डालकर माथे पर तिलक लगाए रहते हैं। धोती और सिर पर उसका पल्लू धारण किए रहते हैं। यदि वास्तव में ऐसे व्यक्ति ब्रह्म कर्म अर्थात प्रभु के आचरण को जानते होते तो उन्हें ये सब कर्म निश्चित् तौर से व्यर्थ कर्म ही दिखाई पड़ते। नानक कथन करता है कि यदि निश्चयपूर्वक प्रभु का सुमिरन किया जाए तो यही ठीक है परन्तु सच्चे गुरु के बिना इस ओर चलने का मार्ग दिखाई नहीं पड़ता।। २ ।।

पउड़ी ॥

कपड़ु रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा ॥
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ॥
हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा ॥
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ॥
करि अउगण पछोतावणा ॥१४॥

यह शरीर रूपी कपड़ा बहुत सुन्दर है परन्तु इसे इस दुनियां में ही छोड़कर जाना होता है। अच्छा और बुरा सब अपना ही किया हुआ है जिसका फल आप ही प्राप्त करना पड़ेगा। जिन्होंने मन को अच्छे न लगने वाले काम और आज्ञाएं की हैं उन्हें परलोक में बहुत कठिन रास्तों से गुज़रना पड़ेगा। जब यह जीव नंगा ही नर्क की ओर चलता है तो दिखने में बहुत ही भयानक और कुरूप लगता है। अवगुणों वाले काम करके अन्त में पछताना ही पड़ता है।। १४ ।।

सलोकु मः १ ॥ दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ॥ एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ॥ ना एहु तुटै ना मलु लगै ना एहु जलै न जाइ॥ धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ॥ चउकड़ि मुलि अणाइआ बहि चउकै पाइआ ॥ सिखा कंनि चड़ाईआ गुरु ब्राहमणु थिआ ॥ ओहु मुआ ओहु झड़ि पइआ वेतगा गइआ ॥१॥

यदि दया की कपास हो, संतोष का सूत हो, काम वासना पर नियन्त्रण की गाँठ लगी हो तथा सत्य और दृढ़ता रूपी बटाई उस पर की गई हो, तो हे पाण्डे, यह आत्मा का जनेऊ यदि तुम्हारे पास है तो ला उसे मुझे पहना दे। यह न तो टूटेगा, न मैला होगा, न जलेगा और न ही नष्ट होगा। हे नानक, वे व्यक्ति धन्य हैं जो इसे हृदय में धारण करते हैं। साधारण जनेऊ चार कौड़ियों के मोल का है जिसे बुना जाता है और चौके में बैठकर जिसे पहन लिया जाता है। इस कार्य के लिए ब्राह्मण गुरु हो जाता है और वह कई शिक्षाएं कान में कहता है। परन्तु इसे पहनने वाला प्राणी जब मर जाता है तो यह जनेऊ भी शरीर से झड़कर अलग हो जाता है तथा पहनने वाला प्राणी जनेऊ विहीन होकर ही यहाँ से चला जाता है।। १ ।।

मः १ ॥ लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गालि ॥ लख ठगीआ पहिनामीआ राति दिनसु जीअ नालि ॥ तगु कपाहहु कतीऐ बाम्हणु वटे आइ॥ कुहि बकरा रिंन्हि खाइआ सभु को आखै पाइ ॥ होइ पुराणा सुटीऐ भी फिरि पाईऐ होरु ॥ नानक तगु न तुटई जे तगि होवै जोरु ॥२॥

लाखों किस्म की चोरियां, लाखों व्याभिचार, लाखों झूठ और लाखों गालियाँ; लाखों प्रकार की ठगी और गुप्त रखे हुए पाप सदैव दिन-रात जीव के साथ ही लगे बने रहते हैं। साधारण जनेऊ का धागा कपास को कात कर बनाया जाता है और ब्राह्मण घर में आकर इसकी बटाई करता है। बकरे को मार कर, पका कर इस जनेऊ की रस्म वाले दिन सबको खाया खिलाया जाता है और सभी कहते हैं कि जनेऊ पहनाया जाए। जब यह जनेऊ पुराना हो जाता है तो इसे फेंक दिया जाता है तथा दूसरा पहन लिया जाता है। परन्तु हे नानक, यदि धागे में (दया, संतोष, सच्चाई, दृढ़ता आदि का) बल हो तो फिर यह आत्मा का धागा कभी टूटता नहीं।। २ ।।

मः १ ॥ नाइ मंनिऐ पति ऊपजै सालाही सचु सूतु ॥ दरगह अंदरि पाईऐ तगु न तूटसि पूत ॥३॥

प्रभु के गुणानुवाद के फलस्वरूप ही सच्चा धागा प्राप्त होता है और प्रभु-नाम को मन से मान लेने पर ही उसके पक्केपन का गुण और शोभा पैदा होते हैं। यही धागा प्रभु

के दरबार में पहना जाता है और यह पवित्र धागा फिर कभी टूटता नहीं।। ३ ।।

मः १ ॥ तगु न इंद्री तगु न नारी ॥ भलके थुक पवै नित दाड़ी ॥ तगु न पैरी तगु न हथी ॥ तगु न जिहवा तगु न अखी ॥ वेतगा आपे वतै ॥ वटि धागे अवरा घतै ॥ लै भाड़ि करे वीआहु ॥ कढि कागलु दसे राहु ॥ सुणि वेखहु लोका एहु विडाणु ॥ मनि अंधा नाउ सुजाणु ॥४॥

स्त्री और पुरुष के भोग विलास के अंगों पर तो कोई भी धागा (बन्धन) नहीं डाला जाता और इसीलिए हर रोज़ उसके मुँह पर धिक्कार का थूक थूका जाता है अर्थात भोगविलास में पड़े हुए व्यक्ति रोज़ अपमानित ही होते रहते हैं। इसी प्रकार पाँव, हाथ, जीभ और आँख पर भी व्यक्ति कोई धागा (नियन्त्रण) नहीं रखता। दरअसल पहनाने वाला पण्डित भी स्वयं उपर्युक्त सच्चे जनेऊ से विहीन बना भटकता रहता है परन्तु अन्य लोगों को जनेऊ बना बना कर पहनाता चला जाता है। लोगों से भाड़ा लेकर तो वह लोगों के विवाह आदि करवाता है और पोथी-पत्रा आदि निकालकर उन्हें सही रास्ता बताने का उपक्रम करता है। हे लोगो, इस हैरानी वाली बात को सुनो और देखो कि जिस व्यक्ति का मन पूर्ण रूप से अन्धा है उसने अपना नाम सुजान अर्थात बुद्धिमान रखा हुआ है।। ४ ।।

पउड़ी ॥

साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी ॥
सो सेवकु सेवा करे जिस नो हुकमु मनाइसी ॥
हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी ॥
खसमै भावै सो करे मनहु चिंदिआ सो फलु पाइसी ॥
ता दरगह पैधा जाइसी ॥१५॥

जब प्रभु दयालु होता है तो कृपा करके वही सारे कार्य करवाता है। जिसको हुकम का रहस्य समझाकर मनवा लेता है वही सेवक उसकी सेवा करता है। उसके हुकम को मानने से व्यक्ति उसके दरबार में स्वीकृत होता है और तभी वह उस मालिक के दरबार में स्थान पाता है। जब जीव वह करता है जो परमात्मा रूपी मालिक को अच्छा लगता है तो उसे मन से माँगा हुआ फल भी प्राप्त हो जाता है। तभी व्यक्ति उसके दरबार में सम्मान सहित पुरस्कृत होकर जाता है।। १५ ।।

सलोक मः १ ॥ गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई ॥ धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछाँ खाई ॥ अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई ॥ छोडीले पाखंडा ॥ नामि लइऐ जाहि तरंदा ॥१॥

एक ओर तो गाय और ब्राह्मण पर तुम लोग कर लगाते हो और दूसरी ओर गाय

के गोबर से लीपी हुई धरती को पवित्र मानते हो। यह गोबर आदि से संसार-सागर से पार नहीं हुआ जा सकता। एक ओर तो धोती, टीका और माला का प्रयोग करते हो परन्तु दूसरी ओर मुसलमानों के हाथों से जिन्हें तुम मलेच्छ कहते हो धन-धान्य लेकर भी खाते हो। हे भाई, अपने घर के अन्दर बैठकर तो पूजा-पाठ करते हो परन्तु दिखावे के लिए इस्लामी पुस्तकों (कुरान शरीफ आदि) का भी पाठ करते हो तथा बाहरी व्यवहार भी मुसलमानों जैसा ही रखते हो। यह पाखण्ड छोड़ क्यों नहीं देते। प्रभु का नाम लेने से ही संसार-सागर से तैरा जा सकता है।। १ ।।

मः १ ॥ माणस खाणे करहि निवाज ॥ छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ॥ तिन घरि ब्रहमण पूरहि नाद ॥ उन्हा भि आवहि ओई साद ॥ कूड़ी रासि कूड़ा वापारु ॥ कूड़ु बोलि करहि आहारु ॥ सरम धरम का डेरा दूरि ॥ नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि ॥ मथै टिका तेड़ि धोती कखाई ॥ हथि छुरी जगत कासाई॥ नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु ॥ मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु ॥ अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा ॥ चउके उपरि किसै न जाणा ॥ दे कै चउका कढी कार ॥ उपरि आइ बैठे कूड़िआर ॥ मतु भिटै वे मतु भिटै ॥ इहु अंनु असाडा फिटै ॥ तनि फिटै फेड़ करेनि ॥ मनि जूठै चुली भरेनि॥ कहु नानक सचु धिआईऐ ॥ सुचि होवै ता सचु पाईऐ ॥२॥

इन्सान को खा जाने वाले तो नमाज़ पढ़ते हैं तथा दूसरी ओर अत्याचार की छुरी चलाने वाले गले में धागा (जनेऊ) पहने घूमते हैं। उनके घर पर ब्राह्मण शंखनाद भी करते हैं और उन्हें भी वैसा ही आनन्द मिलता है जैसे अन्य संसारी लोगों को खाना-पीना स्वादिष्ट लगता है। दरअसल सब के पास झूठ और दिखावे की ही रास पूँजी हैं और झूठा ही सबका कार्य-व्यापार है। लोग तो झूठ बोलकर ही खाना खाते हैं और अपना गुज़ारा चला रहे हैं। लज्जा और धर्म का ठिकाना तो अब बहुत दूर रह गया है क्योंकि हे नानक, सब ओर पूर्ण रूप से झूठ ही व्याप्त है। लोगों ने माथे पर टीका लगा रखा है और नीचे कमर के साथ लम्बी लांग वाली धोती पहन रखी है। ऐसे लोग हाथों में छुरी पकड़े हुए हैं और ये सारे संसार पर अत्याचार करने वाले लोग हैं। ये नीले वस्त्र पहनकर मुसलमान हाकिमों की दृष्टि में स्वीकृत होने का दिखावा करते हैं क्योंकि एक ओर तो पुराण आदि के माध्यम से पूजा-पाठ करते हैं तथा दूसरी ओर मलेच्छों से धन-धान्य लेकर खाते पीते हैं। एक ओर तो ये अरबी और उसमें लिखे हुए कलमें को न बोलने योग्य मानते हैं परन्तु उसी कलमें के उच्चारण के साथ हलाल किया हुआ बकरा यह खा जाते हैं। दूसरी ओर यही लोग यह ढोंग करते हुए आम व्यक्ति को अपने चौके में नही जाने देते ताकि वह चौका अपवित्र न हो जाए। पवित्रता को ध्यान में रखते हुए यह चौके के चारों ओर एक

लकीर भी खींच देते हैं और ये झूठे और अपवित्र लोग अपने को और चौके को पवित्र समझते हुए उस चौके में बैठते हैं। वहाँ बैठकर ये पवित्रता का ऐसा स्वांग भरते हैं और कहते हैं कि कोई भी किसी भी सूरत में हमारा स्पर्श न करे क्योंकि ऐसा करने से हमारा यह अन्न अपवित्र और खराब हो जाएगा। खराब शरीर से ये बुराई तो किए जाते हैं परन्तु इनका मन जूठन का चुल्लू भी हमेशा भरे रहता है। नानक का कथन है कि सत्य और यथार्थ का सुमिरन किया जाना चाहिए क्योंकि यह सत्य तब ही प्राप्त होता है यदि वास्तव में हृदय शुद्ध, साफ और स्पष्ट हो।। २ ।।

पउड़ी ॥

चिते अंदरि सभु को वेखि नदरी हेठि चलाइदा ॥
आपे दे वडिआईआ आपे ही करम कराइदा ॥
वडहु वडा वड मेदनी सिरे सिरि धंधै लाइदा ॥
नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ॥
दरि मंगनि भिख न पाइदा ॥१६॥

उस प्रभु के ध्यान में यह सब कुछ है। वह सबको देख रहा है और अपनी दृष्टि के अन्तर्गत ही वह सबको चलाता चल रहा है। वह स्वयं ही अच्छे कार्य करवाता है और स्वयं ही बड़प्पन प्रदान करता है। बड़े से भी बड़ा वह प्रभु अपनी इस विशाल सृष्टि के जीवों को अपने अपने काम धन्धे में लगाए रहता है। यदि वह अपनी नज़र को उल्टा कर ले तो बड़े बड़े सुल्तानों को भी घास के तिनके के समान हल्का कर देता है; वे ऐसे हो जाते हैं कि द्वार द्वार पर भीख माँगने पर भी उन्हें भीख प्राप्त नहीं होतीं।। १६ ।।

सलोकु मः १ ॥ जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ ॥ अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ ॥ वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ॥ नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ॥१॥

यदि कोई चोर किसी के घर में चोरी करे और घर के लूट के माल को वह अपने पित्रों को अर्पण करे अर्थात उनका श्राद्ध आदि करे तो परलोक में वह चोरी की चीज़ वास्तव में पहचानी जाएगी (क्योकि जिनके घर से माल चोरी गया है उनके घर के लोग भी तो परलोक में ही होंगें) और इस प्रकार चोरी करने वाले के पित्र भी वहाँ बैठे-बैठे चोर हो जाएंगें। न्याय करने वाला प्रभु न्याय यह करेगा कि यह माल जिस बिचौलिए ब्राह्मण ने अर्पण कराया है उस बिचौलिए के तो हाथ ही काट दिए जाएंगे। हे नानक, परलोक में तो वही मिलेगा जो व्यक्ति ने मेहनत मशक्कत से कमाया है अैर स्वयं लोगों को दिया और बाँटा हैं।। १ ।।

मः १ ॥ जिउ जोरू सिरनावणी आवै वारो वार ॥ जूठे जूठा मुखि वसै नित नित होइ खुआरु ॥ सूचे एहि न आखीअहि बहनि जि पिंडा धोइ ॥ सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ ॥२॥

जिस प्रकार स्त्री को मासिक धर्म बार बार आता ही रहता है इसी प्रकार जूठन बने हुए व्यक्ति के मुँह में सदैव लोगों का छोड़ा हुआ जूठा पदार्थ ही पड़ा रहता है और वह सदैव ख्वार होता रहता है। शुद्ध और पवित्र वे नहीं कहे जाते जो केवल अपना शरीर धोकर आ बैठते हैं; हे नानक, वास्तव में पवित्र वही हैं जिनके मन में प्रभु बसा हुआ है।। २ ।।

पउड़ी ॥

तुरे पलाणे पउण वेग हर रंगी हरम सवारिआ ॥
कोठे मंडप माड़ीआ लाइ बैठे करि पासारिआ ॥
चीज करनि मनि भावदे हरि बुझनि नाही हारिआ ॥
करि फुरमाइसि खाइआ वेखि महलति मरणु विसारिआ ॥
जरु आई जोबनि हारिआ ॥१७॥

शानदार काठियों से सजाए हुए घोड़े जो पवन के वेग से चलते हैं और जिनके पास हर रंग में सजाए हुए हरम (रनिवास) भी हैं; जिनके पास बड़े-बड़े महल मण्डप फैली हुई जगह पर विद्यमान हैं और जो हर मन भाती मौज-मस्ती करते रहते हैं; यदि वे प्रभु को नहीं बूझते समझते तो वे इन्हीं विषय-विकारों में थके और टूटे हुए पड़े रहते हैं। वे आज्ञाएं देकर खाते मौज करते रहते हैं और अपने बड़प्पन में ही मस्त बने हुए मौत को भी भुला देते हैं। लेकिन समय के साथ जवानी हार जाती है और बुढ़ापा आ पहुँचता है।। १७ ।।

सलोकु मः १ ॥ जे करि सूतकु मंनीऐ सभ तै सूतकु होइ ॥ गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ ॥ जेते दाणे अंन के जीआ बाझु न कोइ ॥ पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ ॥ सूतकु किउ करि रखीऐ सूतकु पवै रसोइ॥ नानक सूतकु एव न उतरै गिआनु उतारे धोइ ॥१॥

यदि सूतक रूपी अपवित्रता को माना जाए तब तो सबमें ही अपवित्रता है। गोबर और लकड़ी के अन्दर भी कीड़ा होता है जिसे काम में लाने पर वह मर जाता है। जितने अन्न के दाने हैं उनमें से कोई भी प्राण से विहीन नहीं है। दरअसल सब से पहले तो जल भी एक जीव है जो जीव होने के नाते दूसरों को भी जीवन-दान देकर हरा-भरा रखता है। मारने मरने की अपवित्रता से कैसे बचा जा सकता है क्योंकि यह अपवित्रता तो खाने पीने की सभी वस्तुओं के माध्यम से हमारी रसोई में भी बनी रहती हैं। हे नानक, यह

अपवित्रता इस प्रकार समाप्त नहीं होती और इसे ज्ञान के माध्यम से इसके बारे में सोच समझ कर ही इसे धोकर समाप्त किया जा सकता है।। १ ।।

मः १ ॥ मन का सूतकु लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु ॥ अखी सूतकु वेखणा पर त्रिअ पर धन रूपु ॥ कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि ॥ नानक हंसा आदमी बधे जम पुरि जाहि ॥२॥

लोभ मन की अपवित्रता है और झूठ जीभ की अपवित्रता है। आँखों की अपवित्रता परायी स्त्री को वासनापूर्ण होकर देखना, पराये धन और पराये रूप पर आँख गड़ाना है। कानों की अपवित्रता कानों से चुगली सुनना है। हे नानक, ऐसे व्यक्ति वास्तव में बँधे हुए यमपुरी को जाते हैं।। २ ।।

मः १ ॥ सभो सूतकु भरमु है दूजै लगै जाइ ॥ जंमणु मरणा हुकमु है भाणै आवै जाइ ॥ खाणा पीणा पवित्रु है दितोनु रिजकु संबाहि ॥ नानक जिन्ी गुरमुखि बुझिआ तिन्ा सूतकु नाहि ॥३॥

दरअसल सब प्रकार की अपवित्रता तो भ्रम है जो एक को होने से छूत की तरह दूसरे को भी जा लगता है। जन्म लेना और मरना यह तो परमात्मा का हुकम है और उसके अन्तर्गत ही जीव इस संसार में आता जाता है। खाने पीने के पदार्थ जो प्रभु ने रोज़ी के रूप में दिए है सभी पवित्र हैं। हे नानक, जिन गुरमुखों ने इस रहस्य को समझ लिया है उनको किसी प्रकार की भी अपवित्रता नही लगती।। ३ ।।

पउड़ी ॥

सतिगुरु वडा करि सालाहीऐ जिसु विचि वडीआ वडिआईआ ॥
सहि मेले ता नदरी आईआ ॥
जा तिसु भाणा ता मनि वसाईआ ॥
करि हुकमु मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढीआ बुरिआईआ ॥
सहि तुठै नउ निधि पाईआ ॥१८॥

सच्चे गुरु को बड़ा मानते हुए उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए क्योंकि उसमें बहुत ऊँचे और बड़े गुण हैं। परमात्मा यदि उससे मिला दे तभी उसके गुण नज़र आते हैं। जो प्रभु को अच्छा लग जाए उसी के मन में ये गुण बस जाते हैं। परमात्मा की आज्ञा में सच्चा गुरु सेवक के माथे पर अपना आशीर्वाद का हाथ रखता है और व्यक्ति के अन्दर से बुराईयों को मार कर निकाल दिया जाता है। परमात्मा प्रसन्न होता है तो नौ निधियां प्राप्त हो जाती हैं।। १८ ।।

सलोकु मः १ ॥ पहिला सुचा आपि होइ सुचै बैठा आइ ॥ सुचे अगै रखिओनु कोइ न भिटिओ जाइ ॥ सुचा होइ कै जेविआ लगा पड़णि सलोकु॥ कुहथी जाई सटिआ किसु एहु लगा दोखु ॥ अंनु देवता पाणी देवता बैसंतरु देवता लूणु पंजवा पाइआ घिरतु ॥ ता होआ पाकु पवितु ॥ पापी सिउ तनु गडिआ थुका पईआ तितु ॥ जितु मुखि नामु न ऊचरहि बिनु नावै रस खाहि ॥ नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि ॥१॥

व्यक्ति पहले स्वयं पवित्र होकर पवित्र चौके पर आ बैठता है। यजमान उसके सामने वह भोजन लाकर रख देता है जिसको किसी ने भी स्पर्श करके अपवित्र नहीं किया। खाने वाला पवित्र होकर उस पवित्र भोजन को खाता है और साथ ही साथ श्लोक पढ़ने लग जाता है। खाने वाला (ब्राह्मण) इस पवित्र भोजन को गन्दे स्थान अर्थात पेट में डाल लेता है। गन्दे स्थान पर डाल देने का दोष भला किस पर लगेगा? अन्न, पानी, अग्नि, नमक सभी उत्तम और पवित्र पदार्थ हैं; पाँचवां घी भी पवित्र है जिसे इनमें मिला कर बड़ा पवित्र भोजन तैयार होता है। परन्तु इस पवित्र भोजन की जब पापी व्यक्ति से संगति हो जाती है तो गन्दा हो जाने के कारण इस पर लोग थूकते हैं। हे नानक, इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि जिस मुख से जीव प्रभु-नाम का सुमिरन नहीं करते और उसी मुँह से स्वादिष्ट भोजन करते हैं उस मुँह पर भी इसी प्रकार थूका जाता है।। १ ।।

मः १ ॥ भंडि जंमीऐ भंडि निंमीऐ भंडि मंगणु वीआहु ॥ भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु ॥ भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु ॥ सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान ॥ भंडहु ही भंडु ऊपजै भंडै बाझु न कोइ ॥ नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ ॥ जितु मुखि सदा सालाहीऐ भागा रती चारि ॥ नानक ते मुख ऊजले तितु सचै दरबारि ॥२॥

स्त्री से व्यक्ति जन्म लेता है, स्त्री में ही जीव का गर्भाधान होता है और जीव के शरीर की रचना होती है। स्त्री के माध्यम से ही सभी सम्बन्ध बनते हैं और स्त्री से ही जगत्- उत्पत्ति का मार्ग चलता रहता है। स्त्री के मर जाने पर पुनः अन्य स्त्री की ही खोज की जाती है और स्त्री से ही अन्य सबके साथ सम्बन्ध स्थापित होते हैं। स्त्री को भला बुरा क्यों कहा जाए जिसने बड़े-बड़े राजाओं को भी जन्म दिया है। स्त्री से ही स्त्री उत्पन्न होती है और संसार में कोई भी जीव स्त्री के बिना पैदा नहीं हो सकता। केवल एक सच्चा प्रभु ही है जो स्त्री से उत्पन्न न होकर स्वयं अपने आप से उत्पन्न हुआ है। जो अपने मुख से सदैव प्रभु के गुण गाता है उसका भाग्य बहुत ही सुन्दर होता है। हे नानक, प्रभु के गुण गाने वाला मुख ही उस सच्चे प्रभु के दरबार में सुन्दर लगता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

सभु को आखै आपणा जिसु नाही सो चुणि कढीऐ ॥
कीता आपो आपणा आपे ही लेखा संढीऐ ॥
जा रहणा नाही ऐतु जगि ता काइतु गारबि हंढीऐ ॥
मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ॥
मूरखै नालि न लुझीऐ ॥१६॥

इस संसार में सभी मेरी-मेरी में लगे हुए हैं; जिसको यह ममत्व नहीं है उसे कोई छाँट कर अलग दिखाए अर्थात कोई बिरला ही है जिसे यह मैं मेरी का रोग नहीं लगा हुआ है। हर व्यक्ति अपने अपने कर्म करता है और किए हुए कर्मों का हिसाब उसे खुद ही देना पड़ता है। जब इस संसार में सदा के लिए बने ही नहीं रहना तो फिर भला क्यों अहंकार में पड़कर दुखी हुआ जाए। विद्यावान होकर यही समझ अपनानी चाहिए कि किसी को भी बुरा न कहा जाए। मूर्ख व्यक्ति के साथ कभी भी वाद-विवाद या झगड़ा नहीं करना चाहिए।। १६ ।।

सलोकु मः १ ॥ नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ॥ फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ॥ फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ ॥ फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ ॥१॥

हे नानक, जो व्यक्ति हल्की बातें करता है उसका तन मन दोनों रूखे और फीके हो जाते हैं अर्थात प्रेम विहीन हो जाते हैं। हल्का और फीका बोलने वाला व्यक्ति लोगों में बदज़बान के तौर पर ही प्रसिद्ध हो जाता है और उस घटिया व्यक्ति के लिए लोग घटिया शब्दों से ही उसकी महिमा बताते हैं। ऐसा रूखा व्यक्ति प्रभु दरबार से भी बाहर फेंक दिया जाता है और लोग उसके मुँह पर थूकते हैं अर्थात उसे धिक्कारते हैं। बोलचाल और व्यवहार में फीका या घटिया व्यक्ति मूर्ख कहा जाता है और ऐसे व्यक्ति को जूतों की मार ही पड़ती है।। १ ।।

मः १ ॥ अंदरहु झूठे पैज बाहरि दुनीआ अंदरि फैलु ॥ अठसठि तीर्थ जे नावहि उतरै नाही मैलु ॥ जिन् पटु अंदरि बाहरि गुदड़ु ते भले संसारि ॥ तिन् नेहु लगा रब सेती देखने वीचारि ॥ रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि ॥ परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह ॥ दरि वाट उपरि खरचु मंगा जबै देइ त खाहि ॥ दीबानु एको कलम एका हमा तुम्हा मेलु॥ दरि लए लेखा पीड़ि छुटै नानका जिउ तेलु ॥ २॥

जो लोग मन से तो झूठे हैं परन्तु बाहर झूठा सम्मान बनाए रखते हैं और संसार

में कोई न कोई ढोंग बनाए रहते हैं वे बेशक अड़सठ तीर्थों पर जाकर स्नान करें, उनके मन की कपट की मैल कभी भी नहीं उतरती। जिन व्यक्तियों का अन्तर्मन प्रेम और कोमलता से पूर्ण है परन्तु बाहर से वे कुछ कठोर भी दिखाई देते हैं वे वैसे ही हैं जैसे व्यक्ति ने नीचे तो रेशम पहन रखा हो परन्तु ऊपर से ऊबड़-खाबड़ दिखाई देने वाली गुदड़ी धारण कर रखी हो। ये व्यक्ति इस संसार में भले व्यक्ति हैं जो दिखावा नहीं करते। उनका प्रेम प्रभु के साथ लगा हुआ है और सदा उस प्रभु का दर्शन करने के विचार से वे ओत-प्रोत बने रहते हैं; प्रभु-प्रेम में ही वे चुप्पी भी धारण किए रहते हैं अर्थात प्रभु-प्रेम में ही मस्त रहते हैं। वे सच्चे मालिक प्रभु के बिना किसी के भी मोहताज नहीं होते। जीवन के मार्ग पर चलते हुए ऐसे व्यक्ति परमात्मा के द्वार से ही प्रभु-नाम का भोजन माँगते हैं और जब वह प्रभु देता है तभी उसको खाते हैं। वे यह जानते हैं कि प्रभु स्वयं ही निर्णय करने वाला और स्वयं ही अपनी कलम से सबका लेखा लिखने वाला है। अच्छे बुरे सब प्रकार के जीव उसके द्वार पर ही परस्पर मिलते जुलते हैं। वह प्रभु सबसे उनके किए हुए कर्मों का लेखा माँगता है और पापी व्यक्तियों को इस प्रकार पेर देता है जैसे तेल निकालने के लिए बीजों को पेरा जाता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

आपे ही करणा कीओ कल आपे ही तै धारीऐ ॥
देखहि कीता आपणा धरि कची पकी सारीऐ ॥
जो आइआ सो चलसी सभु कोई आई वारीऐ ॥
जिस के जीअ पराण हहि किउ साहिबु मनहु विसारीऐ ॥
आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ ॥२०॥

हे प्रभु तूने ही सृष्टि की रचना की है और स्वयं ही तूने अपनी शक्ति उसमें डाल दी है। कच्चे-पक्के अर्थात बुरे-भले सभी जीवों को पैदा करके तू ही सबकी संभाल कर रहा है। जो भी इस संसार में आया है उसे यहाँ से जाना ही है और सबकी बारी आती जा रही है। हे भाई, यह जीव और प्राण जिस साहिब प्रभु ने दिए हैं उसे भला मन से क्योंकर भुलाया जाए। व्यक्ति को यह चाहिए कि वह दूसरों पर निर्भर न होकर अपने हाथों से ही अपने काम को सँवार (कर) ले।। २० ।।

सलोकु महला २ ॥ एह किनेही आसकी दूजै लगै जाइ ॥ नानक आसकु काँढीऐ सद ही रहै समाइ ॥ चंगै चंगा करि मंने मंदै मंदा होइ ॥ आसकु एहु न आखीऐ जि लेखै वरतै सोइ ॥१॥

यह भला कैसा प्रेम है जो एक प्रभु के साथ भी दिखाया जा रहा है और साथ ही साथ अन्य पदार्थों और इष्टों में भी प्रदर्शित किया जा रहा है। हे नानक, वास्तविक प्रेमी

तो वही जाना जाता है जो सदैव अपने इष्ट प्रभु के ध्यान में ही लीन बना रहे। यदि व्यक्ति अपने लिए हो रहे अच्छे काम को देखकर अपने प्रभु को अच्छा-अच्छा कहे और बुरे व्यवहार और काम को देखकर अपने इष्ट मित्र प्रभु को बुरा-भला कहने लग जाए तो हे नानक, ऐसा व्यक्ति सच्चा मित्र, आशिक और प्रेमी नही कहा जा सकता क्योंकि उसका प्यार पूरा हिसाब-किताब के अन्दर ही किया हुआ प्यार होता है।। १ ।।

महला २ ॥ सलामु जबाबु दोवै करे मुंढहु घुथा जाइ ॥ नानक दोवै कूड़ीआ थाइ न काई पाइ ॥२॥

जो व्यक्ति अपने मालिक के सामने कभी तो सिर झुकाकर प्रणाम करता है और कभी उसकी जवाब-तलबी करने में भी नहीं हिचकिचाता, ऐसा व्यक्ति तो जीवन-मार्ग पर से मूल रूप से ही भटका हुआ है। हे नानक, सिर झुकाना और प्रभु के किए हुए कार्यो में दोष निकालना दोनों ही झूठे व्यवहार के प्रतीक हैं; इन दोनों में से कोई भी बात मालिक के दरबार में स्वीकृत नहीं होती।। २ ।।

पउड़ी ॥

जितु सेविऐ सुखु पाईऐ सो साहिबु सदा सम्हालीऐ ॥
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ ॥
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ ॥
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ ॥
किछु लाहे उपरि घालीऐ ॥२१॥

जिसका सुमिरन करने से सुख प्राप्त होता है उस प्रभु को सदा याद रखना चाहिए। जब किए हुए कार्य का फल स्वयं ही भुगतना है तो फिर किसी प्रकार का भी बुरा आचरण नहीं करना चाहिए। दूरदृष्टि से भी यदि देखा जाए तो बुरा काम भूल कर भी नहीं करना चाहिए। कुछ इस प्रकार का आचरण बनाना चाहिए जिससे उस साहिब प्रभु से प्रीति न टूटे। मानव जन्म में निश्चित रूप से कुछ लाभ वाली मेहनत मशक्कत की जानी चाहिए।। २१ ।।

सलोकु महला २ ॥ चाकरु लगै चाकरी नाले गारबु वादु ॥ गला करे घणेरीआ खसम न पाए सादु ॥ आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ॥ नानक जिस नो लगा तिसु मिलै लगा सो परवानु ॥१॥

यदि कोई सेवक नौकरी भी करे और साथ ही साथ अपने मालिक के सामने अभिमानपूर्ण आचरण भी करे तथा मालिक के सामने ज्यादा बक बक करे तो वह सेवक मालिक की खुशी प्राप्त नहीं कर सकता। व्यक्ति अपने अभिमान को मिटाकर यदि मालिक की सेवा करे तब ही उसे कुछ मान-सम्मान प्राप्त हो सकता है। हे नानक, तब वह सेवक

उस मालिक प्रभु से मिल जाता है जिसकी सेवा में वह लगा हुआ होता है। जो अभिमान को त्याग कर सेवा में लगा रहता है वही मालिक के द्वार पर स्वीकृत होता है।। १ ।।

महला २ ॥ जो जीइ होइ सु उगवै मुह का कहिआ वाउ ॥ बीजे बिखु मंगै अंम्रितु वेखहु एहु निआउ ॥२॥

व्यक्ति के मन में जो होता है वही प्रकट होकर मुँह से बाहर आता है अर्थात जो उसकी नीयत में होता है वैसा ही उसको फल मिलता है। यह कैसा न्याय है कि व्यक्ति बोता तो विष है परन्तु चाहता है कि उसे अमृत फल प्राप्त हो।। २ ।।

महला २ ॥ नालि इआणे दोसती कदे न आवै रासि ॥ जेहा जाणै तेहो वरतै वेखहु को निरजासि ॥ वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ॥ साहिब सेती हुकमु न चलै कही बणै अरदासि ॥ कूड़ि कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफति विगासि ॥३॥

जैसे छोटे बच्चे के साथ मित्रता पूरी नहीं निभती उसी प्रकार अनजान मन रूपी बच्चे के पीछे चल कर कोई भी काम पूरा नहीं होता। बच्चा तो जैसा चाहेगा वैसा ही वह कार्य-क्लाप करेगा इस बात को बेशक कोई परखना चाहे तो परख ले। किसी वस्तु में कोई वस्तु तभी जा सकती है यदि उसमें पड़ी हुई पहली वस्तु को बाहर निकाला जाए अर्थात प्रभु से प्रेम करने के लिए यह आवश्यक है कि मन के दुर्गुणों को पहले बाहर निकाला जाए। मालिक प्रभु के सामने व्यक्ति के हुकम नही चलते अपितु उसके सामने तो अरदास करना ही उचित होता है। हे नानक, धोखाधड़ी से कार्य-व्यापार करने से अपने साथ भी धोखा ही होता है; केवल प्रभु गुणानुवाद से ही व्यक्ति का हृदय खिला रहता है।। ३ ।।

महला २ ॥ नालि इआणे दोसती वडारू सिउ नेहु ॥ पाणी अंदरि लीक जिउ तिस दा थाउ न थेहु ॥४॥

अबोध बच्चे के साथ मित्रता और अपने से बड़े व्यक्ति के साथ स्नेह पानी में खींची हुई लकीर के समान है जिसका कोई भी निशान नहीं रहता।। ४ ।।

महला २ ॥ होइ इआणा करे कंमु आणि न सकै रासि ॥ जे इक अध चंगी करे दूजी भी वेरासि ॥५॥

अबोध बालक यदि कोई कार्य करे भी तो उस कार्य को पूरा नहीं कर पाता। एकाध बार हो सकता है वह अच्छा काम भी कर दे परन्तु दूसरे काम को वह बिगाड़ ही देगा।। ५ ।।

पउड़ी ॥

चाकरु लगै चाकरी जे चलै खसमै भाइ ॥
हुरमति तिस नो अगली ओहु वजहु भि दूणा खाइ ॥

खसमै करे बराबरी फिरि गैरति अंदरि पाइ ॥
वजहु गवाए अगला मुहे मुहि पाणा खाइ ॥
जिस दा दिता खावणा तिसु कहीऐ साबासि ॥
नानक हुकमु न चलई नालि खसम चलै अरदासि ॥२२॥

जो नौकर अपने मालिक की इच्छानुसार चले उसे ही समझा जा सकता है कि वह मालिक प्रभु का नौकर है। एक ओर तो वह बहुत सम्मान भी पाता है दूसरी ओर वह मालिक से वेतन भी दुगना ले लेता है। परन्तु यदि सेवक अपने मालिक की बराबरी का यत्न करता है तो उसे लज्जित तो होना ही पड़ता है साथ ही साथ वह अपनी तनख्वाह भी गँवा लेता है और मुँह पर जूते भी खाता है। हे नानक, जिस प्रभु का दिया हुआ खाया जाता है सदैव उसी का आभार मानना चाहिए। मालिक पर हुकम नहीं चलता। उसके सामने तो अरदास करना ही शोभा देता है।। २२ ।।

सलोकु महला २ ॥ एह किनेही दाति आपस ते जो पाईऐ ॥ नानक सा करमाति साहिब तुठै जो मिलै ॥१॥

यदि यह कहा जाए कि मैंने अपनी मेहनत से यह वस्तु प्राप्त कर ली है तो उसे मालिक की तरफ से की हुई अनुकंपा नही कहा जा सकता। हे नानक, उसकी ओर से कृपापूर्वक दिया हुआ पदार्थ तो वह है जो वह प्रसन्न होकर देता है अर्थात कर्म करते जाना चाहिए परन्तु फल को उस प्रभु की कृपा ही मानना चाहिए।। १ ।।

महला २ ॥ एह किनेही चाकरी जितु भउ खसम न जाइ ॥ नानक सेवकु काढीऐ जि सेती खसम समाइ ॥२॥

यह भला कैसी चाकरी है जिसमें सेवक के मन से मालिक का भय ही दूर नहीं होता और उससे वास्तविक प्रेम नहीं बनता। हे नानक, सच्चा सेवक तो उसी को कहा जाता है जो अपने मालिक के साथ ही एकाकार हो कर उसमें लीन हो जाता है।। २ ।।

पउड़ी ॥

नानक अंत न जापनी हरि ता के पारावार ॥
आपि कराए साखती फिरि आपि कराए मार ॥
इकन्हा गली जंजीरीआ इकि तुरी चड़हि बिसीआर ॥
आपि कराए करे आपि हउ कै सिउ करी पुकार ॥
नानक करणा जिनि कीआ फिरि तिस ही करणी सार ॥२३॥

हे नानक, उस प्रभु के ओर-छोर का पता नहीं लगाया जा सकता। वह स्वयं ही जीवों को उत्पन्न करता है और स्वयं ही उन्हें मार भी देता है। अनेकों ही जीवों के गले

में अनेकों प्रकार के बन्धन (जंजीर) पड़े हुए हैं और अनेकों ही घोड़ों पर सवारी करते हुए मौज ले रहे हैं। यह सब कुछ प्रभु स्वयं ही कर रहा है इसलिए मैं किसके आगे इस भेद-भाव के लिए पुकार (शिकायत) लगा सकता हूँ। हे नानक, जिस कर्ता-प्रभु ने सृष्टि की रचना की है वही उसका भरण-पोषण कर रहा है।। २३ ।।

सलोकु मः १ ॥ आपे भाँडे साजिअनु आपे पूरणु देइ ॥ इकनी दुधु समाईऐ इकि चुलै रहनि् चड़े ॥ इकि निहाली पै सवनि् इकि उपरि रहनि खड़े ॥ तिना सवारे नानका जिनु कउ नदरि करे ॥१॥

जीव रूपी सारे बर्तन उस प्रभु ने ही बनाए हैं और स्वयं ही दुख-सुख रूपी पदार्थों से वह इन बर्तनों को भरता है। कई बर्तनों में तो दूध पड़ा रहता है और कई चूल्हे पर चढ़े हुए ही तपते रहते हैं अर्थात कष्ट सहारते रहते हैं। कई तो सुन्दर बिस्तरों पर आराम से सोते हैं और कई उनके सेवक बनकर उनके पास ही खड़े रहते हैं। परन्तु हे नानक, जिन पर वह कृपा-दृष्टि करता है उन्हीं के जीवन को वह सँवार देता है।। १ ।।

महला २ ॥ आपे साजे करे आपि जाई भि रखै आपि ॥ तिसु विचि जंत उपाइ कै देखै थापि उथापि ॥ किस नो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥२॥

प्रभु स्वयं ही सृष्टि को उत्पन्न करता है और उसे सजाता सँवारता भी है। इस सृष्टि में जीवों को उत्पन्न करके उनकी देखभाल भी करता है, उन्हें स्थापित भी करता है और स्वयं ही उन्हें उखाड़ भी देता है। हे नानक, उस प्रभु के बिना किसी अन्य के सामने कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह स्वयं ही सब कुछ करने में समर्थ है।। २ ।।

पउड़ी ॥

वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ॥
सो करता कादर करीमु दे जीआ रिजकु संबाहि ॥
साई कार कमावणी धुरि छोडी तिंनै पाइ ॥
नानक एकी बाहरी होर दूजी नाही जाइ ॥
सो करे जि तिसै रजाइ ॥२४॥१॥ सुधु

उस महान प्रभु के गुणों और बड़प्पन के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह स्वयं ही कर्ता है, कुदरत को बनाने वाला है, जीवों पर कृपा करने वाला है और सब जीवों को (शारीरिक और आध्यात्मिक) रोज़ी-रोटी देने वाला है। सभी जीव वही कार्य करते हैं जो उस प्रभु ने शुरु से ही उनके हिस्से में करना लिखा होता है। हे नानक, उस एक प्रभु की शरण के बिना अन्य कोई भी स्थान (सुरक्षित) नहीं है। जैसा वह चाहता है वैसा ही वह कर लेता है।। २४ ।। १ ।। शुद्ध।।

।। लावां ।।

सूही महला ४ ।।

(गु. ग्रं. सा. पृ. ७७३-७४)

सिक्ख धर्म में विवाह को 'अनन्द कारज' कहा जाता है और विवाह को केवल एक सामाजिक सम्बन्ध न मानकर आध्यात्मिक मिलाप का साधन माना गया है। जीव को स्त्री और परमात्मा को पति मानकर जीवन में कर्मशील बने रहने का उपदेश गुरु रामदास जी के इन चार छन्दों में दिया गया है। विवाह के अवसर पर वर और कन्या इन चार छन्दों का पाठ सुनते हैं और हर एक छन्द के पाठ के अन्त में गुरु ग्रंथ साहिब के सामने माथा टेक कर गुरु ग्रंथ साहिब की परिक्रमा करके और फिर माथा टेक कर बैठ जाते हैं तथा अगले छन्द को सुनते हैं। परिक्रमा करना और माथा टेकने को सिक्ख शब्दावली में 'लावां फेरे' कहा जाता है। चार छन्दों के पाठ और गायन के बाद गुरु अमरदास जी की वाणी 'अनंद' का पाठ होता है और अरदास के बाद वर और कन्या पति पत्नी बन जाते हैं। इन चार छन्दों में सामाजिक बंधन में बंधने को आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से देखा गया है।

सूही महला ४ ।।

हरि पहिलड़ी लाव परविरती करम द्रिड़ाइआ बलि राम जीउ ॥ बाणी ब्रहमा वेदु धरमु द्रिड़हु पाप तजाइआ बलि राम जीउ ॥ धरमु द्रिड़हु हरि नामु धिआवहु सिम्रिति नामु द्रिड़ाइआ ॥ सतिगुरु गुरु पूरा आराधहु सभि किलविख पाप गवाइआ ॥ सहज अनंदु होआ वडभागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ ॥ जनु कहै नानकु लाव पहिली आरंभु काजु रचाइआ ॥१॥

हे प्रभु, तूने जीव स्त्री के साथ पहला फेरा प्रारम्भ किया है और उसे कर्मशील बने रहने का उपदेश पक्का किया है। गुरु की वाणी ही जीव स्त्री के लिये ब्रह्मा और वेद का ज्ञान है। हे भाई, अपने धर्म (कर्त्तव्य कर्म) पर पक्के बने रहो क्योंकि प्रभु-नाम सुमिरन से ही पापकर्म दूर हो जाते हैं। हे भाई, परमात्मा के नाम का सुमिरन करते रहो और कर्त्तव्य कर्म पर पक्के बने रहो। प्रभु-नाम सुमिरन ही गुरु के सिक्ख के लिये स्मृति आदि का उपदेश है। सच्चे पूर्ण गुरु की आराधना करो क्योंकि यही सब विषय विकारों और पापों को दूर करने वाली है। जिसके मन में प्रभु प्यारा और मीठा लगने लगा उस भाग्यशाली को स्थिरता की अवस्था का आनन्द प्राप्त हो जाता है। दास नानक कहता है कि प्रभु-नाम का सुमिरन ही प्रभु पति के साथ जीव स्त्री का प्रारम्भिक अथवा पहला फेरा है।। १ ।।

हरि दूजड़ी लाव सतिगुरु पुरखु मिलाइआ बलि राम जीउ ॥ निरभउ भै मनु होइ हउमै मैलु गवाइआ बलि राम जीउ ॥ निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै रामु हदूरे ॥ हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे ॥ अंतरि बाहरि हरि प्रभु एको मिलि हरि जन मंगल गाए ॥ जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सबद वजाए ॥२॥

हे प्रभु, मैं तुझ पर बलिहारी जाता हूँ। जिस जीव स्त्री को सच्चा गुरु मिला देता है उसका मन सभी डरों की ओर से निर्भय होकर अपने अन्दर उस प्रभु के अनुसाशन को बसा लेता है तथा अहंकार की मैल उससे दूर हो जाती है। प्रभु के गुण गाने से उसके अन्दर निर्मल संयम बन जाता है और वह प्रभु को अपने पास और सामने ही देखती है। उसकी आत्मा में वह प्रभु व्याप्त हो जाता है जो सर्वत्र ही भरपूर रूप से निवास कर रहा है। उसके अन्दर और बाहर उस एक ही प्रभु का एहसास बना रहता है और सबके साथ

मिलकर वह प्रभु के आनन्द के गीत गाती रहती है। दास नानक का कथन है कि दूसरा फेरा चलने के साथ अनहद शब्द बजने लगता है।। २ ।।

हरि तीजड़ी लाव मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलि राम जीउ ॥ संत जना हरि मेलु हरि पाइआ वडभागीआ बलि राम जीउ ॥ निरमलु हरि पाइआ हरि गुण गाइआ मुखि बोली हरि बाणी ॥ संत जना वडभागी पाइआ हरि कथीऐ अकथ कहाणी ॥ हिरदै हरि हरि हरि धुनि उपजी हरि जपीऐ मसतकि भागु जीउ ॥ जनु नानकु बोले तीजी लावै हरि उपजै मनि बैरागु जीउ ॥३॥

तीसरे फेरे में जीव स्त्री के मन में हे प्रभु, वैराग्यपूर्ण चाव पैदा हो जाता है अर्थात् यह चाव या प्रेम ओछा ना होकर वैराग्यपूर्ण गहरा और गम्भीर होता है। सन्तजनों के माध्यम से प्रभु मिलता और प्राप्त होता है और इस प्रकार जीव स्त्री बड़े भाग्य वाली बन जाती है। प्रभु के गुण गाए जाते हैं, उस निर्मल प्रभु को पाया जाता है और मुख से उस प्रभु की वाणी का उच्चारण किया जाता है। सन्तजनों ने बड़े भाग्य से उसे प्राप्त कर लिया होता है और अब प्रभु की अकथनीय कथा को कहा सुना जाता है। हृदय में प्रभु नाम की ही धुन उत्पन्न होती है और माथे के भाग्य लेखों के अनुसार प्रभु का सुमिरन किया जाता है। दास नानक का कथन है कि जीव आत्मा के परमात्मा के साथ विवाह के तीसरे फेरे के रूप से स्त्री के मन में वैराग्यपूर्ण प्रेम उत्पन्न होता है।। ३ ।।

हरि चउथड़ी लाव मनि सहजु भइआ हरि पाइआ बलि राम जीउ ॥ गुरमुखि मिलिआ सुभाइ हरि मनि तनि मीठा लाइआ बलि राम जीउ ॥ हरि मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिनु हरि लिव लाई ॥ मन चिंदिआ फलु पाइआ सुआमी हरि नामि वजी वाधाई ॥ हरि प्रभि ठाकुरि काजु रचाइआ धन हिरदै नामि विगासी ॥ जनु नानकु बोले चउथी लावै हरि पाइआ प्रभु अविनासी ॥४॥२॥

प्रभु के साथ चौथे फेरे में मन में सहज भाव उत्पन्न होता है और प्रभु की प्राप्ति हो जाती है। गुरमुख बनकर स्वाभाविक रूप से ही वह प्रभु मिल जाता है और अब वह प्रभु मन तन को मीठा लगने लगता है। प्रभु मीठा लगता है और प्रभु को भी सब कुछ अच्छा लगता है तथा हर दिन उस प्रभु में ही लौ लगाई जाती है। मनोवांछित फल के रूप में उस प्रभु को पा लिया जाता है तथा प्रभु-नाम की बधाई अन्तर्मन में बजने लगती हैं। प्रभु पति ने ही यह आनन्दपूर्ण कार्य की रचना की तथा जीव स्त्री हृदय में प्रभु-नाम के बस जाने के कारण खिल उठी है। दास नानक कहता है कि इस चौथे फेरे के बाद वह अविनाशी प्रभु प्राप्त हो जाता है।। ४ ।। २ ।।

।। अनंद साहिब ।।

(गु. ग्र. सा. पृ. ६१७-६२२)

तीसरे गुरु अमरदास जी की चालीस पदों की इस लम्बी वाणी में आनन्दपूर्ण आशावादी जीवन का मुख्य रूप से चिन्तन किया गया है। मन को समझाने के लिए पंक्तियों को दुहराने की युक्ति को काम में लाया गया है और साधन रूप में लोभ, अहंकार, व्यर्थ के वाद-विवाद से बचने की बात कही गई है। संशययुक्त मन सदा मलीन ही बना रहता है जिसे किसी प्रकार से भी स्वच्छ बनाना संभव नहीं होता। चतुराईयों और धूर्तताओं में लगा हुआ मन सोते हुए ही जीवन-रात्रि को बिता देता है और अन्त में पछताता है। गुरु अमरदास जी इस वाणी में स्पष्ट कहते हैं कि आनन्द के वास्तविक स्वरूप को गुरु से ही जाना जाता है और जो इस रहस्य को समझ जाता है उसकी चाल-ढाल ही बदल जाती है और उसके जीवन में पूर्णतया परिवर्तन आ जाता है। इस वाणी में भी यह बताया गया है कि सत्यशील जिज्ञासु को संसार में रहते हुए ही बिना किसी को भी घृणा किए हुए आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। सिक्ख जगत में यह वाणी इतनी प्रचलित और प्रसिद्ध है कि इसका गायन और पाठ खुशी गमी के हर अवसर पर तो किया ही जाता है साथ ही साथ यह नित्य नियम के रूप में सुबह शाम आवश्यक रूप से पढ़ी जाती है।

रामकली महला ३ अनंदु १ ओं सतिगुरु प्रसादि।।

अनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ ॥ सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वाधाईआ ॥ राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ ॥ सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाइआ ॥ कहै नानकु अनंदु होआ सतिगुरू मै पाइआ ॥१॥

हे मेरी माँ, सच्चे गुरु (प्रभु) को मैंने पा लिया है और मैं आनन्दित हो उठा हूँ। सच्चे गुरु को तो मैंने सहज भाव से ही प्राप्त कर लिया है और मेरे मन में बधाई के गीत बजने लगे हैं। ऐसा लगता है कि रत्नों के समान अमूल्य राग और रागिनियाँ और उन्हें गायन करने वाली परियाँ परिवारों समेत आनन्द के गीत गाने के लिये आ पहुँची हैं। जिन्होंने अपने मन में प्रभु को बसा लिया है वे सभी आयें और हमारे साथ मिलकर प्रभु के शब्द का गीत गायें। नानक कहता है कि सच्चे गुरु की प्राप्ति पर मैं आनन्दित हो उठा हूँ।। १ ।।

ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले ॥ हरि नालि रहु तू मन्न मेरे दूख सभि विसारणा ॥ अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा ॥ सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु विसारे ॥ कहै नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले ॥२॥

हे मेरे मन, तू सदा उस प्रभु के साथ ही बना रह। हे मन, तू प्रभु के साथ रह क्योंकि वह तेरे सभी दुखों को दूर करते हुए तुझे उनकी याद भुला देगा। वह तुझे अंगीकार करेगा और तेरे सभी काम सँवार देगा। जो प्रभु सभी बातों के लिये समर्थ है उसे भला मन से क्यों भुलाया जाए। नानक कहता है कि हे मेरे मन तू सदैव प्रभु के साथ ही बना रह।। २ ।।

साचे साहिबा किआ नाही घरि तेरै ॥ घरि त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए ॥ सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि वसावए ॥ नामु जिन कै मनि वसिआ वाजे सबद घनेरे ॥ कहै नानकु सचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ॥३॥

हे सच्चे प्रभु, तेरे घर में भला किस चीज की कमी है। तेरे घर में तो सब कुछ

है परन्तु प्राप्त वही करता है जिसे तू देता है। तेरे नाम को मन में बसाकर अनेकों सदैव तेरी प्रशंसा और गुणानुवाद करते रहते हैं। जिनके मन में तेरा नाम बस गया उनके हृदय में अनेकों प्रकार की खुशी के गीत बज उठे हैं। नानक कहता है कि हे मेरे सच्चे साहिब, तेरे घर में भला किस चीज की कमी है।। ३ ।।

साचा नामु मेरा आधारो ॥ साचु नामु अधारु मेरा जिनि भुखा सभि गवाईआ॥ करि साँति सुख मनि आइ वसिआ जिनि इछा सभि पुजाईआ ॥ सदा कुरबाणु कीता गुरू विटहु जिस दीआ एहि वडिआईआ ॥ कहै नानकु सुणहु संतहु सबदि धरहु पिआरो ॥ साचा नामु मेरा आधारो ॥४॥

मेरा आसरा तो प्रभु का सच्चा नाम ही है। वह सच्चा नाम ही मेरा मूलभूत आधार है जिसने मेरी सब प्रकार की भूख समाप्त कर दी। उसने मुझे शान्त और सुखी कर दिया है और अब वह मेरे मन में आ बसा है जिसने मेरी सभी इच्छाएं पूरी कर दी हैं। जिसमें ऐसी महानताएं हैं उस गुरु (प्रभु) पर मैंने सदैव अपने आपको कुर्बान किया है। नानक कहता है कि हे सन्तजनों, इस बात को ध्यान से सुन लो और शब्द के माध्यम से उस प्रभु के साथ प्रेम बनाए रखो। उस प्रभु का सच्चा नाम ही मेरा आसरा है ।। ४ ।।

वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै ॥ घरि सभागै सबद वाजे कला जितु घरि धारीआ ॥ पंच दूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारिआ ॥ धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरि कै लागे ॥ कहै नानकु तह सुखु होआ तितु घरि अनहद वाजे ॥५॥

इस प्रकार के भाग्यशाली घर रूपी हृदय में पाँचों प्रकार के शब्दों की धुन बजने लगती है। जिस हृदय में तूने अपनी शक्ति अर्थात कला को कार्यशील किया है ऐसे भाग्यशाली घर में तेरे नाम रूपी शब्द की धुन बजने लगती है। तूने ही पाँचों काम, क्रोध आदि दुष्टों को वश में किया है और काल रूपी कंटक का भी तूने ही नाश किया है। जिनके भाग्य में प्रारम्भ से ही तुमने प्रभु-नाम डाल दिया है वे ही प्रभु नाम में लीन बने रहते हैं। नानक कहता है कि उन्हीं को सुख प्राप्त होता है और उन्हीं के हृदय रूपी घर में स्वतः बजता रहने वाला नाद चलता रहता है।। ५ ।।

साची लिवै बिनु देह निमाणी ॥ देह निमाणी लिवै बाझहु किआ करे वेचारीआ ॥ तुधु बाझु समरथ कोइ नाही क्रिपा करि बनवारीआ ॥ एस नउ होरु थाउ नाही सबदि लागि सवारीआ ॥ कहै नानकु लिवै बाझहु किआ करे वेचारीआ ॥६॥

सच्ची सुरति अर्थात लौ के बिना यह शरीर बेचारा बहुत ही क्षीण होता है। लौ से विहीन यह निर्बल शरीर बेचारा क्या कर सकता है। हे प्रभु, कृपा करो। तेरे बिना कोई समर्थ नहीं है जो इसे बलवान बना सके। हे शब्द में लगाकर सब कुछ सँवार देने वाले प्रभु, इस कमजोर शरीर और लौ वाले जीव के लिये अन्य कोई ठिकाना नहीं है। नानक कहता है कि श्रेष्ठ लौ अर्थात प्रभु-नाम की सुरति के बिना यह बेचारा क्या करेगा।। ६ ।।

आनंदु आनंदु सभु को कहै आनंदु गुरू ते जाणिआ ॥ जाणिआ आनंदु सदा गुर ते क्रिपा करे पिआरिआ ॥ करि किरपा किलविख कटे गिआन अंजनु सारिआ ॥ अंदरहु जिन का मोहु तुटा तिन का सबदु सचै सवारिआ ॥ कहै नानकु एहु अनंदु है आनंदु गुर ते जाणिआ ॥७॥

आनन्द-आनन्द कहते तो सभी हैं परन्तु वास्तविक आनन्द गुरु से ही जाना जाता है। आनन्द गुरु से ही जाना जाता है और वह प्यारा प्रभु ही इस सारे कार्य के लिये कृपा करता है। कृपा करके वही पापों को काटता है और वही ज्ञान रूपी अंजन प्रदान करता है। अन्दर से जिनका मोह नष्ट हो गया उस सच्चे प्रभु ने उनके जीवन का ढंग ही सँवार दिया है। नानक का कथन है कि यही आनन्द है और इस आनन्द को गुरु से ही जाना जाता है।। ७ ।।

बाबा जिसु तू देहि सोई जनु पावै ॥ पावै त सो जनु देहि जिस नो होरि किआ करहि वेचारिआ ॥ इकि भरमि भूले फिरहि दह दिसि इकि नामि लागि सवारिआ ॥ गुर परसादी मनु भइआ निरमलु जिना भाणा भावए ॥ कहै नानकु जिसु देहि पिआरे सोई जनु पावए ॥८॥

हे बाबा, जिसे तू देता है वही सेवक प्राप्त करता है। वही सेवक पाता है जिसे तू देता है; अन्य बेचारे क्या कर सकते हैं। कई तो भ्रमों में भूले हुए दसों दिशाओं में भटक रहे है और कई ऐसे हैं जिन्होंने प्रभु नाम में लीन होकर खुद को सँवार लिया है। गुरु की कृपा से जिनको प्रभु की रज़ा भा जाती है उन्हीं का मन निर्मल हो जाता है। नानक कहता है कि हे प्यारे प्रभु, तू जिसे देता है केवल वही सेवक प्राप्त करता है।। ८ ।।

आवहु संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी ॥ करह कहाणी अकथ केरी कितु दुआरै पाईऐ ॥ तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मंनिऐ पाईऐ ॥ हुकमु मंनिहु गुरू केरा गावहु सची बाणी ॥ कहै नानकु सुणहु संतहु कथिहु अकथ कहाणी ॥९॥

हे प्यारे सन्तो, आओ और उस अकथनीय प्रभु की कथा वार्ता सुनाओ; उस

अकथनीय की कथा वार्ता करो और बताओ कि उसे किस द्वार के माध्यम से अर्थात् किस विधि से पाया जाता है। तन, मन और धन गुरु को सौंप कर और उसका हुकुम मानने से उस प्रभु को पाया जाता है। पूर्ण गुरु का हुकुम मानो और उसकी सच्ची वाणी का गायन करो। नानक कहता है कि हे सन्तजनों, उसकी अकथनीय कहानी को ध्यान पूर्वक सुनो।। ६ ।।

ए मन चंचला चतुराई किनै न पाइआ ॥ चतुराई न पाइआ किनै तू सुणि मंन मेरिआ ॥ एह माइआ मोहणी जिनि एतु भरमि भुलाइआ ॥ माइआ त मोहणी तिनै कीती जिनि ठगउली पाईआ ॥ कुरबाणु कीता तिसै विटहु जिनि मोहु मीठा लाइआ ॥ कहै नानकु मन चंचल चतुराई किनै न पाइआ ॥१०॥

हे चंचल मन, चतुराई के माध्यम से उस प्रभु को कोई भी नहीं पा सका। चतुराई से उसे किसी ने नहीं पाया है, हे मेरे मन, तू मेरी बात सुन ले। यह माया ऐसी मोहिनी है कि इसने यहाँ सबको भ्रम में भुला रखा है। यह मोहिनी माया भी उसी प्रभु ने बनाई है जिसने ठग बूटी के रूप में उसकी रचना की। जिसने इसके साथ मीठा मोह लगा लिया है उसको इसी माया पर से कुर्बान हो जाना पड़ता है। नानक कहता है कि हे चंचल मन, चतुराई से कोई भी उस प्रभु को नहीं पा सका।। १० ।।

ए मन पिआरिआ तू सदा सचु समाले ॥ एहु कुटंबु तू जि देखदा चलै नाही तेरै नाले ॥ साथि तेरै चलै नाही तिसु नालि किउ चितु लाईऐ ॥ ऐसा कंमु मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ ॥ सतिगुरू का उपदेसु सुणि तू होवै तेरै नाले ॥ कहै नानकु मन पिआरे तू सदा सचु समाले ॥११॥

हे प्यारे मन, तू सदैव सत्य को याद करता रह। यह परिवार जिसे तू देखता है तेरे साथ नहीं चलेगा। यह तेरे साथ नहीं चलने वाला है तो फिर इसके साथ अपने चित्त को क्यों लीन कर रखा है। ऐसा काम तो बिलकुल ही नहीं करना चाहिये जिसके लिये अंत में पछ्ताना पड़े। तू सच्चे गुरु का उपदेश सुन जो वास्तव में तेरे साथ बना रहेगा। नानक कहता है कि हे प्यारे मन, तू सदैव सत्य को ध्यान में बनाये रख।। ११ ।।

अगम अगोचरा तेरा अंतु न पाइआ ॥ अंतो न पाइआ किनै तेरा आपणा आपु तू जाणहे ॥ जीअ जंत सभि खेलु तेरा किआ को आखि वखाणए ॥ आखहि त वेखहि सभु तूहै जिनि जगतु उपाइआ ॥ कहै नानकु तू सदा अगंमु है तेरा अंतु न पाइआ ॥१२॥

हे अगम्य, अगोचर प्रभु, तेरे रहस्य को नहीं जाना जा सकता। किसी ने भी तेरे रहस्य को नहीं जाना है और केवल तू ही अपने आप को जानता है। कोई क्या कहकर

बखान करे, यह जीव जन्तु तो सब तेरा ही खेल हैं। तू ही सब कुछ कहता और देखता है और तूने ही सारा जगत उत्पन्न किया है। नानक कहता है कि हे प्रभु, तू सदैव अगम्य है, तेरा रहस्य नहीं जाना जा सकता।। १२ ।।

सुरि नर मुनि जन अंम्रितु खोजदे सु अंम्रितु गुर ते पाइआ ॥ पाइआ अंम्रितु गुरि क्रिपा कीनी सचा मनि वसाइआ ॥ जीअ जंत सभि तुधु उपाए इकि वेखि परसणि आइआ ॥ लबु लोभु अहंकारु चूका सतिगुरू भला भाइआ॥ कहै नानकु जिस नो आपि तुठा तिनि अंम्रितु गुर ते पाइआ ॥१३॥

देवता, मानव और मुनिजन जिस अमृत को खोजते हैं वह अमृत गुरु से प्राप्त होता है। गुरु की (प्रभु) कृपा से अमृत प्राप्त होता हे और सच्चा प्रभु मन में बस जाता है। जीव जन्तु सब तूने ही पैदा किये परन्तु उनमें से कोई बिरला ही गुरु को देखकर उसकी संगति करने के लिये आता है। जब लोभ और अंहकार समाप्त हो जाता है तो जीव सच्चे गुरु को भला लगता है। नानक का कथन है कि जिस पर वह प्रभु स्वयं प्रसन्न होता है उसने ही गुरु से अमृत प्राप्त किया है।। १३ ।।

भगता की चाल निराली ॥ चाला निराली भगताह केरी बिखम मारगि चलणा ॥ लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाही बोलणा ॥ खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा ॥ गुर परसादी जिनी आपु तजिआ हरि वासना समाणी ॥ कहै नानकु चाल भगता जुगहु जुगु निराली ॥१४॥

भक्तजनों की चाल अर्थात् जीवन जीने की कला संसार से निराली होती है। निराली चाल वाले भक्त कठिन मार्ग पर चलते हैं। वे ममता लोभ, अहंकार और तृष्णा को त्यागकर बहुत अधिक नहीं बोलते। भक्तों का मार्ग तलवार से भी अधिक तीखा और बाल से भी अधिक बारीक है अर्थात् इस कठिन मार्ग पर ही वे जाते हैं। गुरु की (प्रभु) कृपा से जिसने अहंकार भाव को त्याग दिया है उसकी सभी वासनाएं प्रभु में ही समा गई हैं। नानक का कथन है कि युगों युगों में भक्तों की चाल अर्थात् जीवन विधि निराली ही रही है।। १४ ।।

जिउ तू चलाइहि तिव चलह सुआमी होरु किआ जाणा गुण तेरे ॥ जिव तू चलाइहि तिवै चलह जिना मारगि पावहे ॥ करि किरपा जिन नामि लाइहि सि हरि हरि सदा धिआवहे ॥ जिस नो कथा सुणाइहि आपणी सि गुरदुआरै सुखु पावहे ॥ कहै नानकु सचे साहिब जिउ भावै तिवै चलावहे ॥१५॥

हे मालिक, तू जैसा चलाए हम वैसे ही चलते हैं और मैं भला तेरे गुणों के बारे में क्या जानता हूँ। जिनको तू अपने रास्ते पर ले आता है वे फिर वैसे ही चलते हैं जैसे

तू चलाता है। जिन पर कृपा करके तूने उन्हें अपने नाम में लगा लिया है वे सदैव प्रभु का ही सुमिरन करते रहते हैं। हे प्रभु, जिन्हें तू अपनी कथा सुनाता है वे गुरु के द्वार पर ही सुख प्राप्त करते हैं। नानक कहता है कि हे मेरे सच्चे साहिब तुझे जैसा अच्छा लगता है तू वैसे ही हम सबको चलाता है।। १५ ।।

एहु सोहिला सबदु सुहावा ॥ सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरू सुणाइआ॥ एहु तिन कै मंनि वसिआ जिन धुरहु लिखिआ आइआ ॥ इकि फिरहि घनेरे करहि गला गली किनै न पाइआ ॥ कहै नानकु सबदु सोहिला सतिगुरू सुणाइआ ॥१६॥

यह शब्द (वाणी) ही प्रभु का सुन्दर यश है; यह सुहावना शब्द ही ऐसा खुशी का गीत है जो हमें सच्चे गुरु ने सुनाया है। यह बजता भी उनके मन में है जिनके भाग्य लेखों में प्रारम्भ से ही लिखा हुआ आया है। अनेकों भटकते हुए बातें करते रहते हैं परन्तु बातों से कोई भी नहीं पा सका। नानक कहता है कि यह शब्द ब्रह्म ही आनन्द का गीत है जिसे हमें सच्चे गुरु ने सुनाया है।। १६ ।।

पवितु होए से जना जिनी हरि धिआइआ ॥ हरि धिआइआ पवितु होए गुरमुखि जिनी धिआइआ ॥ पवितु माता पिता कुटम्ब सहित सिउ पवितु संगति सबाईआ ॥ कहदे पवितु सुणदे पवितु से पवितु जिनी मंनि वसाइआ ॥ कहै नानकु से पवितु जिनी गुरमुखि हरि हरि धिआइआ ॥१७॥

वे लोग पवित्र हो गए हैं जिन्होंने प्रभु का सुमिरन किया है। प्रभु की आराधना करने वाले जिन गुरमुखों ने उसका सुमिरन किया वे पवित्र हो गए हैं। उनके माता, पिता, कुटुम्ब पवित्र हो गए हैं और उनकी सारी संगति उनके समेत पवित्र हो गई है। कहने वाले भी पवित्र, सुनने वाले भी पवित्र और वे भी पवित्र हो जाते हैं जिन्होंने प्रभु नाम को मन में बसा लिया है। नानक कहता है कि जिन गुरमुखों ने उस प्रभु की आराधना की है वे पवित्र हो गये हैं।। १७ ।।

करमी सहजु न ऊपजै विणु सहजै सहसा न जाइ ॥ नह जाइ सहसा कितै संजमि रहे करम कमाए ॥ सहसै जीउ मलीणु है कितु संजमि धोता जाए॥ मंनु धोवहु सबदि लागहु हरि सिउ रहहु चितु लाइ ॥ कहै नानकु गुर परसादी सहजु उपजै इहु सहसा इव जाइ ॥१८॥

कर्मकाण्डों के माध्यम से स्वाभाविक सहज ज्ञान उत्पन्न नहीं होता और ज्ञान के बिना संशय नहीं जाता। यह संशय तो किसी भी विधि से नहीं छूटता बेशक कोई कितने

कर्मकाण्ड करता रहे। भ्रम में पड़ा जीव मलीन है इसे किस विधि से स्वच्छ किया जाए। मन को धो कर शब्द में लगे रहो और प्रभु में चित्त को लीन बनाये रखो। नानक कहता है कि गुरु की कृपा से ही स्वाभाविक ज्ञान उत्पन्न होता है और इस प्रकार यह संशय समाप्त होता है।। १८ ।।

जीअहु मैले बाहरहु निरमल ॥ बाहरहु निरमल जीअहु त मैले तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥ एह तिसना वडा रोगु लगा मरणु मनहु विसारिआ ॥ वेदा महि नामु उतमु सो सुणहि नाही फिरहि जिउ बेतालिआ ॥ कहै नानकु जिन सचु तजिआ कूड़े लागे तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥१६॥

जिनकी अन्तरात्मा मैली है वे बाहर से निर्मल होने का ढोंग करते हैं। जो बाहर से पवित्र बने रहते हैं और जिनका मन मैला होता है उन्होंने इस जीवन को जुए में ही हार दिया है। उन्हें तृष्णा का यह बड़ा रोग लगा रहता है और मरने को तो वे मन से भुलाये ही रहते हैं। वेदों में अन्य बातों में से सबसे अच्छी बात प्रभु-नाम की महिमा है जिसे लोग सुनते नहीं और बाहरी आचरण में पड़े हुए वेतालों (भूतों) की तरह दौड़ते-भागते रहते हैं। नानक कहता है कि जिन्होंने सत्य को त्याग दिया है और झूठ में लीन हो गए हैं उन्होंने इस जीवन को जुए में हार दिया है।। १६ ।।

जीअहु निरमल बाहरहु निरमल ॥ बाहरहु त निरमल जीअहु निरमल सतिगुर ते करणी कमाणी ॥ कूड़ की सोइ पहुचै नाही मनसा सचि समाणी ॥ जनमु रतनु जिनी खटिआ भले से वणजारे ॥ कहै नानकु जिन मंनु निरमलु सदा रहहि गुर नाले ॥२०॥

जो मन से निर्मल हैं वे बाहर से भी निर्मल होते हैं। बाहर से और मन से निर्मल बने रहने वाले सच्चे गुरु के आदेश के अनुसार आचार-व्यवहार बनाते हैं। झूठ की वहाँ चर्चा ही नहीं पहुँचती और मन सत्य में ही लीन बना रहता है। वे व्यापारी ही भले हैं जिन्होंने यह मानव जीवन रूपी रत्न का लाभ प्राप्त कर लिया है। नानक कहता है कि जिनका मन निर्मल है वे सदा गुरु के साथ ही बने रहते हैं।। २० ।।

जे को सिखु गुरू सेती सनमुखु होवै ॥ होवै त सनमुखु सिखु कोई जीअहु रहै गुर नाले ॥ गुर के चरन हिरदै धिआए अंतर आतमै समाले ॥ आपु छडि सदा रहै परणै गुर बिनु अवरु न जाणै कोए ॥ कहै नानकु सुणहु संतहु सो सिखु सनमुखु होए ॥२१॥

यदि कोई वास्तव में सिक्ख है तो वह गुरु के सम्मुख बना रहता है। कोई भी सिक्ख

जो सम्मुख बना रहता है उसका मन गुरु में ही लगा रहता है। ऐसा सिक्ख गुरु के चरणों को हृदय में याद रखता है और अन्तरात्मा में उनकी सम्भाल बनाए रहता है। वह अपने अभिमान को छोड़कर सदैव प्रभु के आसरे में ही रहता है और गुरु के बिना अन्य किसी को भी नहीं जानता। नानक का कथन है कि हे सन्तजनों, इस बात को सुन लो कि ऐसे ही सिक्ख को सम्मुख बना रहने वाला सिक्ख कहा जाता है।। २१ ।।

जे को गुर ते वेमुखु होवै बिनु सतिगुर मुकति न पावै ॥ पावै मुकति न होर थै कोई पुछहु बिबेकीआ जाए ॥ अनेक जूनी भरमि आवै विणु सतिगुर मुकति न पाए ॥ फिरि मुकति पाए लागि चरणी सतिगुरू सबदु सुणाए ॥ कहै नानकु वीचारि देखहु विणु सतिगुर मुकति न पाए ॥२२॥

यदि कोई गुरु से विमुख हो जाता है तो उसे मुक्ति सच्चे गुरु के बिना नहीं प्राप्त होती। विवेकशील व्यक्तियों से भी जाकर पूछ लो कि विमुख व्यक्तियों को किसी अन्य स्थान पर मुक्ति नहीं मिल सकती। वे अनेक योनियों में भटक कर आते हैं परन्तु सच्चे गुरु के बिना मुक्ति नहीं पाते। सच्चा गुरु ही उन्हें शब्द सुनाता है और वे उसके चरणों में लगकर मुक्ति प्राप्त करते हैं। नानक कहता है कि इस तथ्य को विचार कर देख लो कि सच्चे गुरु के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती।। २२ ।।

आवहु सिख सतिगुरू के पिआरिहो गावहु सची बाणी ॥ बाणी त गावहु गुरू केरी बाणीआ सिरि बाणी ॥ जिन कउ नदरि करमु होवै हिरदै तिना समाणी ॥ पीवहु अंम्रितु सदा रहहु हरि रंगि जपिहु सारिगपाणी ॥ कहै नानकु सदा गावहु एह सची बाणी ॥२३॥

हे सच्चे गुरु के प्यारे सिक्खो, आओ और सच्ची वाणी का गायन करो। गुरु की वाणी का गायन करो क्योंकि वाणियों में से सबसे उत्तम वाणी यही है। जिन पर प्रभु की कृपा दृष्टि हो जाती है यह वाणी उनके हृदय में समा जाती है। इस वाणी रूपी अमृत का पान करते हुए सदैव प्रभु के रंग में रंगे रहो और उस प्रभु का सुमिरन करते रहो। नानक कहता है कि इस सच्ची वाणी का ही गायन सदैव करते रहो।। २३ ।।

सतिगुरू बिना होर कची है बाणी ॥ बाणी त कची सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी ॥ कहदे कचे सुणदे कचे कचीं आखि वखाणी ॥ हरि हरि नित करहि रसना कहिआ कछू न जाणी ॥ चितु जिन का हिरि लइआ माइआ बोलनि पए रवाणी ॥ कहै नानकु सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी ॥२४॥

सच्चे गुरु की वाणी के बिना अन्य सब कुछ कच्ची वाणी है। सच्चे गुरु के मुख

से ना निकली हुई वाणी कच्ची हैं और अन्य सारी वाणियाँ कच्ची ही हैं। उनको कहने वाले भी कच्चे हैं, सुनने वाले भी कच्चे है और जो उसका बखान करते हैं वे भी कच्चे हैं। उन कच्ची वाणियों को पढ़ने वाले जीभ से तो चाहे हरि-हरि कहते रहते हैं परन्तु जो वे कहते हैं उसका प्रभाव उनके हृदय और मन पर कुछ भी नहीं होता। धन-दौलत ने जिनके चित्त को चुरा लिया है वे उपर-उपर से वाणी को पढ़ते हैं हृदय से नहीं पढ़ते। नानक कहता है कि सच्चे गुरु के बिना दूसरी वाणी कच्ची वाणी है।। २४ ।।

गुर का सबदु रतंनु है हीरे जितु जड़ाउ ॥ सबदु रतनु जितु मंनु लागा एहु होआ समाउ ॥ सबद सेती मनु मिलिआ सचै लाइआ भाउ ॥ आपे हीरा रतनु आपे जिस नो देइ बुझाइ ॥ कहै नानकु सबदु रतनु है हीरा जितु जड़ाउ ॥२५॥

शब्द-गुरु वह रत्न है जिसमें हीरे भी जड़े हुए हैं। जिनका मन इस शब्द रत्न में लीन हो गया हैं वे इसी में ही समा गये हैं। जब मन शब्द में लीन हो गया तो उस सच्चे प्रभु ने इसी में ही प्रेम लगा दिया। वह प्रभु स्वयं ही हीरा है और स्वयं ही रत्न है परन्तु जानता वही है जिसे वह स्वयं समझा देता है। नानक कहता है कि शब्द वह रत्न है जिसमें हीरा जड़ा है।। २५ ।।

सिव सकति आपि उपाइ कै करता आपे हुकमु वरताए ॥ हुकमु वरताए आपि वेखै गुरमुखि किसै बुझाए ॥ तोड़े बंधन होवै मुकतु सबदु मंनि वसाए ॥ गुरमुखि जिस नो आपि करे सु होवै एकस सिउ लिव लाए ॥ कहै नानकु आपि करता आपे हुकमु बुझाए ॥२६॥

चैतन्य और माया रूपी शक्ति को वह कर्ता-प्रभु उत्पन्न करके अपना हुकुम उनमें कार्यशील करता है। हुकुम को कार्यशील करते हुए वह स्वयं ही देख भाल भी करता है परन्तु किसी बिरले गुरमुख को ही यह रहस्य समझ आता है। वही बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो जाता है और शब्द को हृदय में बसा लेता है। जिसे स्वयं करता है वही गुरमुख बनता है और वही एक प्रभु में लौ लगाये रखता है। नानक कहता है कि वह प्रभु स्वयं ही करता है और स्वयं ही अपने हुकुम के रहस्य को समझाने वाला है।। २६ ।।

सिम्रिति सासत्र पुंन पाप बीचारदे ततै सार न जाणी ॥ ततै सार न जाणी गुरू बाझहु ततै सार न जाणी ॥ तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी ॥ गुर किरपा ते से जन जागे जिना हरि मनि वसिआ बोलहि अंम्रित बाणी ॥ कहै नानकु सो ततु पाए जिस नो अनदिनु हरि लिव लागै जागत रैणि विहाणी ॥२७॥

स्मृतियाँ, शास्त्र पाप पुण्य का विचार तो करते हैं परन्तु वे सार तत्व नहीं जानते। गुरु के बिना तत्व का ज्ञान नहीं होता और सार तत्व को नहीं जाना जाता। तीनों गुणों में भ्रमित संसार सोया हुआ है और इसने जीवन रूपी रात्रि को सोते हुए ही बिता दिया है। गुरु की कृपा से वही सेवक सावधान बने रहते हैं जिनके मन में प्रभु का निवास हो जाता है और जो अमृतवाणी बोलते हैं। नानक कहता है कि तत्व ज्ञान वही प्राप्त करता है जिसकी लौ सदैव प्रभु में लगी रहती है और जो जीवन रूपी रात्रि को सावधान होकर व्यतीत करते हैं।। २७ ।।

माता के उदर महि प्रतिपाल करे सो किउ मनहु विसारीऐ॥ मनहु किउ विसारीऐ एवडु दाता जि अगनि महि आहारु पहुचावए ॥ ओस नो किहु पोहि न सकी जिस नउ आपणी लिव लावए ॥ आपणी लिव आपे लाए गुरमुखि सदा समालीऐ ॥ कहै नानकु एवडु दाता सो किउ मनहु विसारीऐ ॥२८॥

जो माँ के पेट में भी पालन पोषण करता है उसको मन से क्यों भुलाया जाए। ऐसे दाता को मन से क्यों विस्मृत किया जाए जो पेट की अग्नि में भी आहार पहुँचाता है। जिसकी लौ वह अपने में लगा लेता है उसको कुछ भी प्रभावित नहीं करता। वह अपनी लौ में स्वयं ही लगाता है और व्यक्ति गुरमुख बनकर उसे सदैव याद करता है। नानक का कथन है कि इस प्रकार के दाता को मन से क्यों भुलाया जाए।। २८ ।।

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ ॥ माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ ॥ जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ ॥ लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ ॥ एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ॥ कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ ॥२६॥

जैसी अग्नि माता के पेट में है वैसी ही माया रूपी अग्नि बाहर भी है। माया और पेट की अग्नि सब एक जैसी ही हैं और यह खेल भी उस प्रभु ने ही बनाया है। जब उस प्रभु का आदेश हुआ तब बच्चे ने जन्म लिया और परिवार में सबको भला और अच्छा लगा। पेट में जो प्रभु के साथ सुरति (लौ) लगी हुई थी वह जन्म लेते ही टूट गई और माया ने तृष्णाओं का आदेश चारों ओर प्रसारित कर दिया। यह माया वह है जिसके कारण प्रभु-नाम भूल जाता है, मोह उत्पन्न होता है और जीव द्वैतभाव में लीन बना रहता है। नानक कहता है कि गुरु की कृपा से जिनकी लौ उस प्रभु में लग गई है उन्होंने माया के प्रपंचों के होने के बावजूद उस प्रभु को पा लिया है।। २६ ।।

हरि आपि अमुलकु है मुलि न पाइआ जाइ ॥ मुलि न पाइआ जाइ किसै

विटहु रहे लोक विललाइ ॥ ऐसा सतिगुरु जे मिलै तिस नो सिरु सउपीऐ विचहु आपु जाइ ॥ जिस दा जीउ तिसु मिलि रहै हरि वसै मनि आइ ॥ हरि आपि अमुलकु है भाग तिना के नानका जिन हरि पलै पाइ ॥३०॥

प्रभु स्वयं अमूल्य है और उसे किसी कीमत पर नहीं पाया जा सकता है। लोग उसके लिये रोते धोते रहते हैं परन्तु उसे किसी से भी मोल देकर नहीं पाया जा सकता। यदि सच्चा गुरु मिल जाए तो उसे अपना सिर (अभिमान) अर्थात् सर्वस्व सौंप दिया जाना चाहिए जिससे अर्न्तमन से अहंकार नष्ट हो जाए। ऐसा होने पर यह जीव प्रभु का होकर उससे मिल जाता है और प्रभु मन में आ बसता है। हे नानक, प्रभु अमूल्य है और वे भाग्यशाली हैं जिनको प्रभु अपना नाम प्रदान करता है।। ३० ।।

हरि रासि मेरी मनु वणजारा ॥ हरि रासि मेरी मनु वणजारा सतिगुर ते रासि जाणी ॥ हरि हरि नित जपिहु जीअहु लाहा खटिहु दिहाड़ी ॥ एहु धनु तिना मिलिआ जिन हरि आपे भाणा ॥ कहै नानकु हरि रासि मेरी मनु होआ वणजारा ॥३१॥

मेरा मन व्यापारी है और प्रभु मेरी रासपूंजी है। प्रभु मेरी रासपूंजी है और मन व्यापारी है मैंने इस रासपूंजी का रहस्य सच्चे गुरु से जाना है। हे प्राणियों, प्रभु का सदैव सुमिरन करते रहो और रोज का रोज लाभ प्राप्त करते रहो। यह धन उन्हीं को मिला है जो स्वयं प्रभु को अच्छे लगे हैं। नानक कहता है कि प्रभु मेरी रासपूंजी है और मेरा मन उसका व्यापारी बन गया है।। ३१ ।।

ए रसना तू अन रसि राचि रही तेरी पिआस न जाइ ॥ पिआस न जाइ होरतु कितै जिचरु हरि रसु पलै न पाइ ॥ हरि रसु पाइ पलै पीऐ हरि रसु बहुड़ि न त्रिसना लागै आइ ॥ एहु हरि रसु करमी पाईऐ सतिगुरु मिलै जिसु आइ॥ कहै नानकु होरि अन रस सभि वीसरे जा हरि वसै मनि आइ ॥३२॥

हे मेरी जीभ, तू संसार के अन्य रसों में लीन बनी हुई है तेरी प्यास समाप्त नहीं होती। तेरी प्यास अन्य किसी वस्तु से नहीं जाएगी जब तक तू हरि रस को अपनी झोली में नहीं डाल लेगी। हरि रस को प्राप्त करके उसे अपने पल्लू से बाँधकर यदि तू पीएगी तो फिर तुझे कोई भी तृष्णा नहीं रहेगी। यह हरि रस भाग्य से ही उन्हें प्राप्त होता है जिन्हें सच्चा गुरु आकर मिल जाता है। नानक कहता है कि जब मन में प्रभु निवास बना लेता है तो अन्य सभी रस विस्मृत हो जाते हैं।। ३२ ।।

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइआ ॥ हरि

जोति रखी तुधु विचि ता तू जग महि आइआ ॥ हरि आपे माता आपे पिता जिनि जीउ उपाइ जगतु दिखाइआ ॥ गुर परसादी बुझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ॥ कहै नानकु स्रिसटि का मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जग महि आइआ ॥३३॥

हे मेरे शरीर, प्रभु ने तुममें अपनी ज्योति स्थित की तभी तू इस संसार में आया है। प्रभु ने ज्योति को जब तुझमें रखा तभी तू इस संसार में आ सका है। जिसने जीवों को उत्पन्न करके यह दिखाई देने वाला संसार पैदा किया है वह प्रभु स्वयं ही माता और स्वयं ही सबका पिता है। गुरु की कृपा से जब इस रहस्य को जाना तो ऐसा आश्चर्यजनक दृष्य बन गया कि यह सारा संसार ही अब एक खेल के रूप में नज़र आने लगा। नानक कहता है कि प्रभु ने सृष्टि का मूल कारण बनाया, उसमें अपनी ज्योति रखी और हे जीव, तभी तू इस संसार में आ सका है।। ३३ ।।

मनि चाउ भइआ प्रभ आगमु सुणिआ ॥ हरि मंगलु गाउ सखी ग्रिहु मंदरु बणिआ ॥ हरि गाउ मंगलु नित सखीए सोगु दूखु न विआपए ॥ गुर चरन लागे दिन सभागे आपणा पिरु जापए ॥ अनहत बाणी गुर सबदि जाणी हरि नामु हरि रसु भोगो ॥ कहै नानकु प्रभु आपि मिलिआ करण कारण जोगो ॥३४॥

मेरा मन उत्साहित हो उठा जब उसने अपने अंदर प्रभु के आगमन की बात सुनी। हे मेरी सत्संगी सखियो, प्रभु के मंगल गीत गाओ क्योंकि आज मेरा हृदय रूपी घर एक पवित्र स्थान बन गया है। हे सखी, सदैव प्रभु के मंगल गीत गाओ जिससे शोक तथा दुख प्रभावित नहीं कर सकेगा। वह दिन भाग्यशाली है जिस दिन गुरु चरणों में लगने से अपना प्रियतम प्रभु दिखाई दे रहा है। शब्द गुरु के माध्यम से अनहद वाणी को हमने जाना है और प्रभु के नाम रूपी रस का हमने उपभोग किया है। नानक कहता है कि ऐसा होने पर वह सब कुछ करने कराने योग्य प्रभु हमें स्वयं आन मिला है।। ३४ ।।

ए सरीरा मेरिआ इसु जग महि आइ कै किआ तुधु करम कमाइआ ॥ कि करम कमाइआ तुधु सरीरा जा तू जग महि आइआ ॥ जिनि हरि तेरा रचनु रचिआ सो हरि मनि न वसाइआ ॥ गुर परसादी हरि मंनि वसिआ पूरबि लिखिआ पाइआ ॥ कहै नानकु एहु सरीरु परवाणु होआ जिनि सतिगुर सिउ चितु लाइआ ॥३५॥

हे मेरे शरीर, तूने इस संसार में आकर कौन कौन सा कर्म किया है। जब से तू इस संसार में आया है तूने कैसा आचरण बना लिया है। जिस प्रभु ने तेरी रचना की उस प्रभु को ही तूने मन में नहीं बसाया। अब गुरु की कृपा से ही प्रभु मन में बस गया है

और वास्तव में पहले से ही लिखे भाग्य लेख के कारण तूने उसे प्राप्त किया है। नानक कहता है कि उनका यह शरीर सफल होता है जिन्होंने सच्चे गुरु में अपने चित्त को लीन किया है।। ३५ ।।

ए नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी हरि बिनु अवरु न देखहु कोई ॥ हरि बिनु अवरु न देखहु कोई नदरी हरि निहालिआ ॥ एहु विसु संसारु तुम देखदे एहु हरि का रूपु है हरि रूपु नदरी आइआ ॥ गुर परसादी बुझिआ जा वेखा हरि इकु है हरि बिनु अवरु न कोई ॥ कहै नानकु एहि नेत्र अंध से सतिगुरि मिलिऐ दिब द्रिसटि होई ॥३६॥

हे मेरी आँखों, प्रभु ने तुममें अपनी ज्योति रखी है इसलिये तुम प्रभु के बिना अन्य किसी को मत देखो। प्रभु ने कृपा दृष्टि करके तुम्हें आनन्दित बनाया है इसलिये तुम प्रभु के बिना अन्य किसी को मत देखो। यह परिवर्तनशील विश्व जो तुम देख रहे हो यह प्रभु का ही एक रूप है और यह प्रभु रूप में ही दिखाई दे रहा है। गुरु की कृपा से जब मैंने देखा और समझा तो यह जाना कि प्रभु एक ही है और प्रभु के बिना अन्य कोई नहीं। नानक कहता है कि मेरे यह नेत्र अज्ञान के कारण अन्धे थे और सच्चे गुरु के मिलने से ही इनमें दिव्य दृष्टि पैदा हुई है।। ३६ ।।

ए स्रवणहु मेरिहो साचै सुनणै नो पठाए ॥ साचै सुनणै नो पठाए सरीरि लाए सुणहु सति बाणी ॥ जितु सुणी मनु तनु हरिआ होआ रसना रसि समाणी ॥ सचु अलख विडाणी ता की गति कही न जाए ॥ कहै नानकु अंम्रित नामु सुणहु पवित्र होवहु साचै सुनणै नो पठाए ॥३७॥

हे मेरे कानों, तुम्हें प्रभु ने सत्य सुनने के लिये ही यहाँ भेजा है। तुम्हें सत्य सुनने को भेजा, शरीर के साथ लगाया ताकि तुम सच्ची वाणी को सुनो। यह वाणी वह है जिसे सुनकर तन मन हरा-भरा हो उठता है और जीभ इसके रस में लीन बनी रहती है। वह सत्य रूप प्रभु अदृष्ट और आश्चर्य रूप है तथा उसकी अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। नानक कहता है कि हे कानों, तुम अमृत नाम को सुनो, पवित्र हो जाओ क्योंकि तुम्हें सच सुनने के लिये ही भेजा गया है।। ३७ ।।

हरि जीउ गुफा अंदरि रखि कै वाजा पवणु वजाइआ ॥ वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगटु कीए दसवा गुपतु रखाइआ ॥ गुरदुआरै लाइ भावनी इकना दसवा दुआरु दिखाइआ ॥ तह अनेक रूप नाउ नव निधि तिस दा अंतु न जाई पाइआ ॥ कहै नानकु हरि पिआरै जीउ गुफा अंदरि रखि कै वाजा पवणु वजाइआ ॥३८॥

प्रभु ने जीव को शरीर रूपी गुफा में रखकर श्वास रूपी पवन का बाजा बजा दिया है अर्थात उसके श्वास चलने लगे हैं। श्वासों का बाजा बजा कर उस प्रभु ने उसमें नौ द्वारों को प्रकट किया और दसवां द्वार गुप्त ही रहने दिया है। गुरु के द्वार के साथ जिनका प्रेम लग गया है उन्हें वह गुप्त दसवाँ द्वार भी दिखाई देने लग जाता है। वहाँ विभिन्न प्रकार के रूपों वाला और नवनिधियों वाला प्रभु नाम निवास करता है जिसका रहस्य नहीं जाना जा सकता। नानक कहता है कि उस प्यारे प्रभु ने शरीर रूपी गुफा में श्वास रूपी पवन का वाद्‌य बजा दिया अर्थात् जीव को उत्पन्न कर दिया।। ३८ ।।

एहु साचा सोहिला साचै घरि गावहु ॥ गावहु त सोहिला घरि साचै जिथै सदा सचु धिआवहे ॥ सचो धिआवहि जा तुधु भावहि गुरमुखि जिना बुझावहे ॥ इहु सचु सभना का खसमु है जिसु बखसे सो जनु पावहे ॥ कहै नानकु सचु सोहिला सचै घरि गावहे ॥३६॥

यह प्रभु का सच्चा गीत सच्चे हृदय रूपी घर में गाओ। उस सच्चे घर में यह खुशी का गीत गाओ जहाँ सदैव सत्य की आराधना की जाती है। गुरमुख बने हुए व्यक्ति जिन्हें इस रहस्य का पता लग जाता है वे भी यदि तुझे अच्छा लगे तभी सत्य की आराधना करते हैं। यह सत्य तो सबका मालिक हैं ; प्रभु जिसे कृपा पूर्वक देता है वहीं सेवक इसे प्राप्त करता है। नानक कहता है कि वही इस सच्चे गीत को सच्चे हृदय रूपी घर में गाता रहता है।। ३६ ।।

अनदु सुणहु वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे ॥ पारब्रह्मु प्रभु पाइआ उतरे सगल विसूरे ॥ दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी ॥ संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी ॥ सुणते पुनीत कहते पवितु सतिगुरु रहिआ भरपूरे॥ बिनवंति नानकु गुर चरण लागे वाजे अनहद तूरे ॥४०॥१॥

हे बड़े भाग्यवालो, इस अनहद वाणी को ध्यान से सुनो; तुम्हारी सभी मनोकामनाएं पूरी हो जाएँगी। परब्रह्म प्रभु प्राप्त हो जाएगा और सभी दुख चिन्ताएं समाप्त हो जाएँगी। सच्ची वाणी सुनने से दुख रोग और संताप विनष्ट हो जाते हैं। इसे सुनकर शान्त और सज्जन पुरुष खिल उठते हैं और इस वाणी को पूर्ण गुरु से ही जाना जाता है। इसे सुनने वाले भी पवित्र हो जाते हैं; सुनाने वाले भी पवित्र हो जाते हैं और उन्हें वह सच्चा गुरु प्रभु सर्वत्र व्याप्त दिखाई देने लगता है। नानक विनती करता है कि गुरु चरणों में लगने से अनहद नाद वाले वाद्‌य हृदय में बजने लगते हैं।। ४० ।। १ ।।

रामकली सदु (बुलावा)

(गु. ग्रं. सा. पृ. ६२३-२४)

रामकली राग में उच्चारित 'सदु' नामक वाणी में तीसरे गुरु अमरदास जी के पंच तत्त्व में विलीन होने के समय का वर्णन है। यह ६ पदों की वाणी बाबा सुन्दर जी की है जो उस समय वहां मौजूद थे। गुरु अमरदास जी का अंतिम उपदेश बाबा सुन्दर जी के मुख से सिक्ख संगत के प्रति उच्चारित किया गया है। बाबा सुन्दर जी गुरु अमरदास जी के प्रपौत्र थे। इस वाणी में 'सिक्ख संगत' को कहा गया है कि प्रभु की आज्ञा को प्रसन्नतापूर्वक मानना चाहिए और व्यक्ति के मरणोपरान्त पिण्ड दान, क्रिया आदि के कर्मकाण्ड न करके केवल 'गुरुवाणी' का ही गायन-पाठ करना चाहिए। गुरु के सिक्खों ने उनके इस आदेश को माना और आज तक इसका श्रद्धापूर्वक निर्वाह करते चले आ रहे हैं।

रामकली सदु १ ओं सतिगुर प्रसादि।।

जगि दाता सोइ भगति वछलु तिहु लोइ जीउ ॥ गुर सबदि समावए अवरु न जाणै कोइ जीउ ॥ अवरो न जाणहि सबदि गुर कै एकु नामु धिआवहे ॥ परसादि नानक गुरू अंगद परम पदवी पावहे ॥ आइआ हकारा चलणवारा हरि राम नामि समाइआ ॥ जगि अमरु अटलु अतोलु ठाकुरु भगति ते हरि पाइआ ॥१॥

संसार का दाता केवल वह प्रभु है जो तीनों लोकों में भक्ति भाव को प्यार करने वाला है। वह शब्द गुरु में ही समाया रहता है और शब्द के अतिरिक्त उसे कोई नहीं जान पाता। जो एक प्रभु-नाम का ही सुमिरन करते हैं केवल वे ही शब्द गुरु के रूप में उसे जानते हैं और अन्य किसी को नहीं पहचानते। इस अनन्य भक्ति का परम पद गुरु नानक और गुरु अंगद की कृपा से (गुरु अमरदास ने) प्राप्त किया है। जब यहाँ से ले चलने की खबर देने वाला आ पहुँचा तो गुरु जी प्रभु-नाम में लीन हो गए। गुरु अमरदास जी ने अपनी भक्ति के द्वारा उस अटल अमर प्रभु को प्राप्त किया है।। १ ।।

हरि भाणा गुर भाइआ गुरु जावै हरि प्रभ पासि जीउ ॥ सतिगुरु करे हरि पहि बेनती मेरी पैज रखहु अरदासि जीउ ॥ पैज राखहु हरि जनह केरी हरि देहु नामु निरंजनो ॥ अंति चलदिआ होइ बेली जमदूत कालु निखंजनो ॥ सतिगुरू की बेनती पाई हरि प्रभि सुणी अरदासि जीउ ॥ हरि धारि किरपा सतिगुरु मिलाइआ धनु धनु कहै साबासि जीउ ॥२॥

गुरु को प्रभु की आज्ञा अच्छी लगी है और गुरु जी उस प्रभु के पास जाने के लिये तैयार हो गए हैं। वह सच्चा गुरु प्रभु के पास अरदास विनती कर रहा है कि हे प्रभु, मेरी लाज बचा लो। अपने सेवक की लाज की रक्षा करो और हे प्रभु, मुझे पवित्र प्रभु नाम प्रदान करो क्योंकि यह प्रभु-नाम ही अन्त में साथी बनता है और यमदूत तथा काल को व्यर्थ बना देने वाला होता है। सच्चे गुरु की की हुई विनती और अरदास को हरि प्रभु ने सुना। प्रभु ने कृपा धारण करके सच्चे गुरु को अपने साथ मिला लिया और सभी लोग धन्य-धन्य तथा शाबाश कहने लगे।। २ ।।

मेरे सिख सुणहु पुत भाईहो मेरै हरि भाणा आउ मै पासि जीउ ॥ हरि भाणा गुर भाइआ मेरा हरि प्रभु करे साबासि जीउ ॥ भगतु सतिगुरु पुरखु सोई जिसु हरि प्रभ भाणा भावए ॥ आनंद अनहद वजहि वाजे हरि आपि गलि मेलावए ॥ तुसी पुत भाई परवारु मेरा मनि वेखहु करि निरजासि जीउ ॥ धुरि लिखिआ परवाणा फिरै नाही गुरु जाइ हरि प्रभ पासि जीउ ॥३॥

हे मेरे सिक्ख पुत्रो, भाइयो, मेरी इस बात को सुन लो कि मेरे प्रभु का यह आदेश आया है कि मेरे पास आ जाओ। प्रभु का यह आदेश गुरु जी को अच्छा लगा और मेरा प्रभु आदेश मानने के कारण उन्हें शाबाशी देता है। भक्त और सच्चा गुरु तथा सर्वव्यापक वही है जिसे प्रभु का आदेश अच्छा लगता है। उसी के हृदय में आनन्द के अनहद वाद्य बजते हैं और प्रभु स्वयं उसे गले लगा लेता है। गुरु जी कहते हैं कि तुम सब लोग मेरे पुत्र, भाई और परिवार हो ; तुम अपने मन में यह विचार कर देख लो कि प्रभु के दरबार से लिखा हुआ आदेश कभी भी टलता नहीं और अब गुरु, हरि प्रभु के पास जा रहा है।। ३ ।।

सतिगुरि भाणै आपणै बहि परवारु सदाइआ ॥ मत मै पिछै कोई रोवसी सो मै मूलि न भाइआ ॥ मितु पैझै मितु बिगसै जिसु मित की पैज भावए॥ तुसी वीचारि देखहु पुत भाई हरि सतिगुरू पैनावए ॥ सतिगुरू परतखि होदै बहि राजु आपि टिकाइआ ॥ सभि सिख बंधप पुत भाई रामदास पैरी पाइआ ॥४॥

जैसा सच्चे गुरु को अच्छा लगा उसने अपने परिवार को अपने पास बुलाया और कहा कि मेरे पीछे कोई भी रोएगा नहीं और जो रोएगा वह मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगेगा। जिसे मित्र का सम्मान अच्छा लगता है वह अपने मित्र के सम्मान प्राप्त करने से प्रसन्न होता है अर्थात गुरु अमरदास जी के प्रेमियों को रोने के बजाए प्रसन्न होना चाहिए कि उन्हें प्रभु के दरबार में सम्मान दिया जा रहा है। हे मेरे पुत्रो और भाइयो, तुम सोच विचार कर देख लो कि प्रभु तुम्हारे सच्चे गुरु को सम्मान का वस्त्र धारण करवा रहा है। सच्चे गुरु अमरदास जी ने अपने सामने ही गुरु रामदास जी को अपनी राजगद्दी अर्थात् गुरुगद्दी पर स्थित कर दिया। अब सभी सिक्ख, बन्धुजन, पुत्र और भाईयों ने गुरु रामदास जी के चरणों को स्पर्श किया।। ४ ।।

अंते सतिगुरु बोलिआ मै पिछै कीरतनु करिअहु निरबाणु जीउ ॥ केसो गोपाल पंडित सदिअहु हरि हरि कथा पड़हि पुराणु जीउ ॥ हरि कथा पड़ीऐ हरि नामु सुणीऐ बेबाणु हरि रंगु गुर भावए ॥ पिंडु पतलि किरिआ दीवा फुल हरि सरि पावए ॥ हरि भाइआ सतिगुरु बोलिआ हरि मिलिआ पुरखु

सुजाणु जीउ ॥ रामदास सोढी तिलकु दीआ गुर सबदु सचु नीसाणु जीउ ॥५॥

अन्त में सच्चे गुरु अमरदास जी ने कहा कि मेरे पीछे शुद्ध प्रभु के गुणानुवाद का कीर्तन ही किया जाए। उस प्रभु के पंडितों अर्थात् शान्त पुरुष सन्तजनों को बुला लेना जो प्रभु की कथा रूपी पुराणों का पठन करे। प्रभु की कथा को बाँचना, प्रभु-नाम को सुनना और प्रभु की प्रेम रूपी अर्थी ही गुरु को अच्छी लगती है। पिण्ड, पत्तल, दीप दान आदि कर्मकाण्ड की बजाए मेरी अस्थियों का जल प्रवाह प्रभु रूपी सरोवर अर्थात् सत्संग में लीन होना ही माना जाए। जो प्रभु को अच्छा लगा वह सच्चे गुरु ने बताया और उन्हें वह सुजान सर्वव्यापक प्रभु प्राप्त हो गया। गुरु रामदास जी को शब्द-गुरु के सत्य चिन्ह से अंकित करते हुए गुरुगद्दी का टीका भेंट किया गया।। ५ ।।

सतिगुरु पुरखु जि बोलिआ गुरसिखा मंनि लई रजाइ जीउ ॥ मोहरी पुतु सनमुखु होइआ रामदासै पैरी पाइ जीउ ॥ सभ पवै पैरी सतिगुरू केरी जिथै गुरू आपु रखिआ ॥ कोई करि बखीली निवै नाही फिरि सतिगुरू आणि निवाइआ ॥ हरि गुरहि भाणा दीई वडिआई धुरि लिखिआ लेखु रजाइ जीउ ॥ कहै सुंदरु सुणहु संतहु सभु जगतु पैरी पाइ जीउ ॥६॥१॥

सच्चे गुरु ने जो कुछ कहा गुरु के सिक्खों ने उसे प्रभु की रज़ा समझ कर स्वीकार कर लिया। गुरु अमरदास जी का पुत्र मोहरी भी सामने उपस्थित हुआ और गुरु रामदास जी के चरणों को उसने स्पर्श किया। जहाँ गुरु अमरदास जी ने गुरु रामदास में अपने आप को स्थित किया वहाँ अब सभी सच्चे गुरु रामदास जी के चरणों को स्पर्श करने लगे। जो कोई ईर्ष्या और शत्रुता के कारण नहीं झुका उसे सच्चे गुरु ने अपने प्यार से विनम्र बना दिया। प्रभु गुरु को जैसा अच्छा लगा उसने प्रारम्भ से ही लिखे हुए लेखों की रज़ा को मानते हुए यह बड़प्पन गुरु रामदास जी को प्रदान किया। सुन्दर का यह कथन है कि सन्तजनों ध्यान से सुन लो कि सारा संसार गुरु के चरणों में आ लगा है।। ६ ।। १ ।।

।। ओअंकार ।।

(गु. ग्रं. सा. पृ. ६२६-३८)

५४ पदों की यह लम्बी रचना गुरु नानक देव जी की है और इस वाणी में यह बताया गया है कि ओअंकार ही सारे विश्व का मूल है। ब्रह्मा, चित्त, युग, पर्वत वेद आदि सब ओअंकार प्रसूत हैं; अपितु ओअंकार ही सारे विश्व का सार तत्त्व है। सम्प्रदायों, जातियों उपजातियों में बंटे और वैष्णव-शाक्त-शैव के विवादों में फंसे भारतीय समाज को देखकर गुरु नानक देव इन सबके प्रतिनिधि पंडित को सम्बोधन करते हुए इस वाणी में कहते हैं कि हे पण्डित, तुम झंझट पैदा करने वाली विद्या के पठन-पाठन और कर्मकाण्डों में उलझाने वाले अभ्यासों की बजाय सर्वत्र रमने वाले राम नाम में ही सुरति लीन करने का अभ्यास कराओ और अपने शब्द-जाल में फंसा कर एक ओर तो अपने अहम् को मत बढ़ाओ और दूसरी तरफ भोले भाले लोगों को ठगने का कार्य छोड़ दो। ओअंकार वाणी बुद्धिजीवी समाज के मानसिक तनाव के कारणों का विश्लेषण करती हुई बताती है कि कैसे व्यक्ति स्वार्थ केन्द्रित होकर मालिक से मज़दूर बनकर रह गया है।

रामकली महला १ दखणी ओअंकारु ओं सतिगुर प्रसादि।।

ओअंकारि ब्रहमा उतपति ॥ ओअंकारु कीआ जिनि चिति ॥ ओअंकारि सैल जुग भए ॥ ओअंकारि बेद निरमए ॥ ओअंकारि सबदि उधरे ॥ ओअंकारि गुरमुखि तरे ॥ ओनम अखर सुणहु बीचारु ॥ ओनम अखरु त्रिभवण सारु ॥१॥

ओअंकार से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और उस ब्रह्मा ने भी ओअंकार का ही चित्त में सुमिरन किया। उस प्रभु ओअंकार से ही पर्वतों और युगों की उत्पत्ति हुई और उस ओअंकार से ही वेदों का निर्माण हुआ। ओअंकार शब्द के माध्यम से ही लोगों का उद्धार हुआ और ओअंकार के माध्यम से ही गुरमुख बनकर लोग पार उतर गए हैं। ओअंकार के सामने नमन करने के तात्पर्य को सुनो ; यह ओअंकार अक्षर ही तीनों लोकों का सार तत्व है।। १ ।।

सुणि पाडे किआ लिखहु जंजाला ॥ लिखु राम नाम गुरमुखि गोपाला ॥१॥ रहाउ ॥

हे पंडित, यह तुम क्या जंजाल की बातें लिखते जा रहे हो। गुरमुख बनकर तुम केवल धरती का पालन करने वाले प्रभु का नाम ही लिखो।। १ ।। रहाउ ।।

ससै सभु जगु सहजि उपाइआ तीनि भवन इक जोती ॥ गुरमुखि वसतु परापति होवै चुणि लै माणक मोती ॥ समझै सूझै पड़ि पड़ि बूझै अंति निरंतरि साचा ॥ गुरमुखि देखै साचु समाले बिनु साचे जगु काचा ॥२॥

स-सारा संसार सहज स्वाभाविक रूप से ही उस प्रभु ने उत्पन्न किया और तीनों लोकों में उसकी एक ज्योति ही कार्यशील है। गुरमुख बनकर ही नाम ज्योति रूपी पदार्थ प्राप्त होता है इसलिये हे जीव, तू माणिक और मोतियों को चुन ले। तू समझता है, तुझे मालूम है और पढ़-पढ़कर तू जानता है कि प्रत्येक वस्तु के अन्दर निरन्तर रूप से वह सच्चा प्रभु बस रहा है। गुरमुख बनकर ही जो उसे देखता है वह सत्य का सुमिरन करता रहता है और इस तथ्य को जानता है कि सच्चाई के बिना सारा संसार कच्चा ही है।। २ ।।

धधै धरमु धरे धरमा पुरि गुणकारी मनु धीरा ॥ धधै धूलि पड़ै मुखि मसतकि कंचन भए मनूरा ॥ धनु धरणीधरु आपि अजोनी तोलि बोलि सचु पूरा ॥ करते की मिति करता जाणै कै जाणै गुरु सूरा ॥३॥

ध-धर्मपुरी रूपी सत्‌संगति में जीव कर्त्तव्यनिष्ठा रूपी धर्म को धारण करता है जो गुणकारी भी है और मन को धैर्य देने वाला भी है। सत्‌संगति की धूल जब माथे पर मुँह पर पड़ती है तो राख भी सोना बन जाती है। धरती को धारण करने वाला वह प्रभु अयोनि है और धन्य है ; वही तौल में और बोल में सच्चा और पूर्ण है। उस कर्ता प्रभु के ओर-छोर को या तो वह कर्ता स्वयं ही जानता है और या फिर शूरवीर गुरु जानता है।। ३ ।।

ङिआनु गवाइआ दूजा भाइआ गरबि गले बिखु खाइआ ॥ गुर रसु गीत बाद नही भावै सुणीऐ गहिर गम्भीरु गवाइआ ॥ गुरि सचु कहिआ अंम्रितु लहिआ मनि तनि साचु सुखाइआ ॥ आपे गुरमुखि आपे देवै आपे अंम्रितु पीआइआ ॥४॥

ङ-जब ज्ञान को गँवा दिया जाता है तो द्वैतभाव अच्छा लगने लगता है और अभिमानी बनकर व्यक्ति माया रूपी विष को खाता रहता है। गुरु का नाम रस से भरा उपदेश अच्छा नहीं लगता और इस प्रकार वह अनन्त गुणों के मालिक परमात्मा से बिछुड़ जाता है। गुरु के माध्यम से जिसने उस सत्य प्रभु का गुणानुवाद किया है उसने प्रभु नाम रूपी अमृत प्राप्त कर लिया है और फिर वह सत्य प्रभु उसके तन मन को सुख देने वाला अनुभव होता है। वह स्वयं ही गुरमुख बनाकर जीव को सुमिरन का दान देता है और स्वयं ही नाम रूपी अमृत पिलाता है।। ४ ।।

एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरबु विआपै ॥ अंतरि बाहरि एकु पछाणै इउ घरु महलु सिञापै ॥ प्रभु नेड़ै हरि दूरि न जाणहु एको स्रिसटि सबाई॥ एकंकारु अवरु नही दूजा नानक एकु समाई ॥५॥

उस परमात्मा को तो सभी एक ही मानते हैं परन्तु सब पर उनका अपना अहंकार व्याप्त बना रहता है। यदि व्यक्ति अपने हृदय में और बाहर सारी सृष्टि में उस प्रभु को पहचान ले तो उसे परमात्मा के घर और ठिकाने की समझ आ जाती है। प्रभु अत्यन्त निकट है उसे दूर मत समझो और सारी सृष्टि में वह एक प्रभु ही व्याप्त है। हे नानक, वह सर्वव्यापक परमात्मा ही हर स्थान में बना हुआ है उसके बिना अन्य कोई नहीं है।। ५ ।।

इसु करते कउ किउ गहि राखउ अफरिओ तुलिओ न जाई ॥ माइआ के देवाने प्राणी झूठि ठगउरी पाई ॥ लबि लोभि मुहताजि विगूते इब तब फिरि पछुताई ॥ एकु सरेवै ता गति मिति पावै आवणु जाणु रहाई ॥६॥

हे पंडित, बेशक प्रभु मेरे अन्दर भी बस रहा है परन्तु अभिमान को अपने अन्दर बसाते हुए मैं उसे मन में भी नहीं बसा सकता और उसके बड़प्पन का मूल्य भी नहीं जान सकता। माया में मस्त जीव को जब तक झूठी ठग बूटी मिली हुई है वह स्वादों और लोभ

तथा दूसरों का मोहताज बने रहने के चक्कर में पड़कर भटक रहा है और इधर उधर पछताता हुआ फिर रहा है। यदि यह एक प्रभु का ही सुमिरन करे तभी इसकी जान पहचान प्रभु से हो पाती है और इसका आवागमन समाप्त हो जाता है।। ६ ।।

एकु अचारु रंगु इकु रूपु ॥ पउण पाणी अगनी असरूपु ॥ एको भवरु भवै तिहु लोइ ॥ एको बूझै सूझै पति होइ ॥ गिआनु धिआनु ले समसरि रहै ॥ गुरमुखि एकु विरला को लहै ॥ जिस नो देइ किरपा ते सुखु पाए ॥ गुरू दुआरै आखि सुणाए ॥७॥

वह एक ही प्रभु आचरण, रंग और रूप के माध्यम से सारी सृष्टि में कार्यशील है। पवन, पानी, अग्नि उसका अपना ही स्वरूप है। जो उस एक परमात्मा को ही तीनों लोकों में कार्यशील मानता है उसको एक परमात्मा की समझ-बूझ आ जाती है और उसका सम्मान सब जगह होता है। वह ज्ञान-ध्यान को प्राप्त करके समदर्शी बना रहता है परन्तु गुरमुख बनकर कोई बिरला ही उस एक प्रभु को जान पाता है। जिस व्यक्ति को प्रभु अपनी कृपा द्वारा यह दान देता है वही सुख प्राप्त करता है और गुरु के द्वार के माध्यम से उसके गुणों को कहता और सुनाता रहता है।। ७ ।।

ऊरम धूरम जोति उजाला ॥ तीनि भवण महि गुर गोपाला ॥ ऊगविआ असरूपु दिखावै ॥ करि किरपा अपुनै घरि आवै ॥ ऊनवि बरसै नीझर धारा॥ ऊतम सबदि सवारणहारा ॥ इसु एके का जाणै भेउ ॥ आपे करता आपे देउ ॥८॥

हे पंडित, धरती की पालना करने वाले उस गोपाल प्रभु का नाम अपने मन की पट्टी पर लिख क्योंकि वह प्रभु ही तीनों लोकों में व्याप्त है और धरती तथा आकाश उसी की ज्योति का प्रकाश हैं। वह गुरु के माध्यम से प्रकट होकर जिसे अपना सर्वव्यापक होने का ज्ञान देता है वह जीव अपने आप में स्थिर हो जाता है। वह झुके हुए बादल की तरह लगातार बरसता है और शब्द के माध्यम से संसार को सँवार देने वाला वह उत्तम प्रभु ही है जो इस रहस्य को जानता है; वह स्वयं ही कर्ता है और स्वयं ही देव है।। ८ ।।

उगवै सूरु असुर संघारै ॥ ऊचउ देखि सबदि बीचारै ॥ ऊपरि आदि अंति तिहु लोइ ॥ आपे करै कथै सुणै सोइ ॥ ओहु बिधाता मनु तनु देइ ॥ ओहु बिधाता मनि मुखि सोइ ॥ प्रभु जगजीवनु अवरु न कोइ ॥ नानक नामि रते पति होइ ॥ ६॥

जब नाम रूपी सूर्य उगता है तो जीव काम, क्रोध आदि दैत्यों को मार देता है। जब वह अपनी दृष्टि ऊँची करके शब्द के माध्यम से चिंतन करता है तो उसको तीनों लोकों

के आदि और अंत में वह प्रभु स्वयं करता, कहता और सुनता हुआ दिखाई देता है। वह रचना करने वाला प्रभु मन और तन प्रदान करता है और मन और मुख में भी वही स्थित बना रहता है। प्रभु ही संसार का जीवन है अन्य कोई नहीं तथा हे नानक, प्रभु नाम में लीन होने से ही सम्मान प्राप्त होता है।। ६ ।।

राजन राम रवै हितकारि ॥ रण महि लूझै मनूआ मारि ॥ राति दिनंति रहै रंगि राता ॥ तीनि भवन जुग चारे जाता ॥ जिनि जाता सो तिस ही जेहा ॥ अति निरमाइलु सीझसि देहा ॥ रहसी रामु रिदै इक भाइ ॥ अंतरि सबदु साचि लिव लाइ ॥१०॥

जो प्रभु का हितकारी बनकर उसका सुमिरन करता है वह इस संसार के युद्ध में डटता है और मन रूपी दैत्य को मार लेता है। वह दिन रात प्रभु के रंग में लीन बना रहता है और उसे तीनों लोकों और चारों युगों में जाना जाता है। उस प्रभु को जानने वाला उसके जैसा ही हो जाता है ; वह अत्यन्त निर्मल हो जाता है और उसका शरीर सफल हो जाता है। उस एक के प्यार में बने रहने से वह प्रभु हृदय में बसकर खिला रहता है। ऐसे व्यक्ति के अन्तर्मन में शब्द बज उठता है और उसकी लौ सत्य में लगी रहती है।। १० ।।

रोसु न कीजै अंम्रितु पीजै रहणु नही संसारे ॥ राजे राइ रंक नही रहणा आइ जाइ जुग चारे ॥ रहण कहण ते रहै न कोई किसु पहि करउ बिनंती ॥ एकु सबदु राम नाम निरोधरु गुरु देवै पति मती ॥११॥

(प्रभु से) रूठो मत और उसका नाम रूपी अमृत पीते रहो क्योंकि इस संसार में सदैव नहीं बने रहना है। राजा, सम्राट, गरीब किसी को भी यहां नहीं रहना है और चारों युगों में ही ये आते-जाते ही रहते हैं। यहाँ बना रहना है इस बात को कहने से भी कोई रुकता नहीं क्योंकि सभी इस संसार को अपना बनाए बैठे हैं, इसलिये किसके सामने मैं विनती करूं। यहाँ तो केवल प्रभु नाम का एक शब्द ही कभी भी प्रभावहीन ना होने वाला मन्त्र है और गुरु ही इसे हमारे सम्मान और बुद्धि को स्थिर बना कर प्रदान करता है।। ११ ।।

लाज मरंती मरि गई घूघटु खोलि चली ॥ सासु दिवानी बावरी सिर ते संक टली ॥ प्रेमि बुलाई रली सिउ मन महि सबदु अनंदु ॥ लालि रती लाली भई गुरमुखि भई निचिंदु ॥१२॥

लोक लाज जिसमें मैं मरी रहती थी अब मर गई है और अब उस घूँघट को हटाकर मैं पर्दे में रहकर प्रकट रूप से सत्य का जीवन व्यतीत करती हूँ। अविद्या रूपी मेरी सास पागल हो गई है और मेरे मन से उसका भय समाप्त हो गया है। मेरे मन में प्रभु नाम का आनन्द स्थापित हो गया है और प्रेम स्वरूप प्रभु ने मौज में आकर मुझे अपने पास

बुला लिया है। उस लाल प्रभु में लीन होकर मैं भी लाल हो गई हूँ और गुरमुख बनकर निश्चिंत हो गई हूँ।। १२ ।।

लाहा नामु रतनु जपि सारु ॥ लबु लोभु बुरा अहंकारु ॥ लाड़ी चाड़ी लाइतबारु ॥ मनमुखु अंधा मुगधु गवारु ॥ लाहे कारणि आइआ जगि ॥ होइ मजूरु गइआ ठगाइ ठगि ॥ लाहा नामु पूंजी वेसाहु ॥ नानक सची पति सचा पातिसाहु ॥१३॥

वास्तविक लाभ नाम रूपी रत्न का सुमिरन करना है। लोभ, लालच और अहंकार अत्यन्त बुरे हैं किसी को लगाकर बातें करना, चुगली करना मनमुख व्यक्ति का कार्य है जो अज्ञानी मूर्ख एवं गँवार होता है। जीव इस संसार में आया तो लाभ कमाने के लिये था परन्तु यहाँ के प्रपंचों से अपने आप को ठगाकर एक बेगार करने वाले मजदूर की तरह भटकता फिर रहा है। प्रभु का नाम ही लाभ है और यह भरोसे की रासपूंजी से प्राप्त होता है। हे नानक, इसी के माध्यम से सच्चा सम्राट प्रभु तथा सच्चा सम्मान प्राप्त होता है।। १३ ।।

आइ विगूता जगु जम पंथु ॥ आई न मेटण को समरथु ॥ आथि सैल नीच घरि होइ ॥ आथि देखि निवै जिसु दोइ ॥ आथि होइ ता मुगधु सिआना ॥ भगति बिहूना जगु बउराना ॥ सभ महि वरतै एको सोइ ॥ जिस नो किरपा करे तिसु परगटु होइ ॥१४॥

यम के रास्ते पर चलने वाला यह संसार भटका हुआ है। इस माया की शक्ति को मिटाने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। यदि यह माया मूर्ख व्यक्ति के पास भी हो तो उसे सभी सयाना कहते हैं; भक्ति से विहीन यह संसार बावला बना हुआ है। सबमें वह एक प्रभु ही कार्यशील है और जिस पर वह प्रभु कृपा करता है वही उसे जान पाता है।। १४ ।।

जुगि जुगि थापि सदा निरवैरु ॥ जनमि मरणि नही धंधा धैरु ॥ जो दीसै सो आपे आपि ॥ आपि उपाइ आपे घट थापि ॥ आपि अगोचरु धंधै लोई॥ जोग जुगति जगजीवनु सोई ॥ करि आचारु सचु सुखु होई ॥ नाम विहूणा मुकति किव होई ॥१५॥

वह शत्रु भाव से रहित प्रभु युगों-युगों में बिराजमान बना हुआ है; उसे ना तो आवागमन का काम है और ना ही धन्धों में पड़कर उसे इधर-उधर भटकना पड़ता है। जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वह स्वयं प्रभु ही है, वह स्वयं ही उत्पन्न करता है और स्वयं ही हृदय में स्थापित होता है। वह स्वयं तो अगोचर है परन्तु यह संसार धन्धों में लगा हुआ है। प्रभु से मिलाप की युक्ति तो स्वयं वह प्रभु ही है। हे जीव, तू उत्तम कर्म कर, तुझे सत्य और सुख प्राप्त होगा परन्तु यदि तू प्रभु-नाम से विहीन बना रहेगा तो तेरी मुक्ति भला कैसे होगी।। १५ ।।

विणु नावै वेरोधु सरीर ॥ किउ न मिलहि काटहि मन पीर ॥ वाट वटाऊ आवै जाइ ॥ किआ ले आइआ किआ पलै पाइ ॥ विणु नावै तोटा सभ थाइ॥ लाहा मिलै जा देइ बुझाइ ॥ वणजु वापारु वणजै वापारी ॥ विणु नावै कैसी पति सारी ॥१६॥

प्रभु-नाम के बिना यह शरीर किसी भी बुरी ओर जाने से रुकता नहीं। पता नहीं यह क्यों प्रभु नाम से मिलाप नहीं करता और अपने मन की पीड़ा को क्यों नहीं दूर करता। यह जीव एक मुसाफिर की तरह आता-जाता रहता है ; वह यहाँ क्या लेकर आया था और यहाँ से क्या लेकर जाएगा। प्रभु-नाम के बिना सभी स्थानों पर इसे कमी ही बनी रहेगी और इसे लाभ तभी प्राप्त होगा जब प्रभु जीव को समझ प्रदान कर देगा। वास्तविक व्यापारी ही प्रभु-नाम का पदार्थ खरीदकर उसका व्यापार करता है ; प्रभु-नाम के बिना भला श्रेष्ठ सम्मान कैसे प्राप्त हो सकता है।। १६ ।।

गुण वीचारे गिआनी सोइ ॥ गुण महि गिआनु परापति होइ ॥ गुणदाता विरला संसारि ॥ साची करणी गुर वीचारि ॥ अगम अगोचरु कीमति नही पाइ ॥ ता मिलीऐ जा लए मिलाइ ॥ गुणवंती गुण सारे नीत ॥ नानक गुरमति मिलीऐ मीत ॥१७॥

गुणों का चिंतन करने वाला ही वास्तविक ज्ञानी पुरुष है और उसके गुणानुवाद में से ही ज्ञान प्राप्त होता है। आगे गुणों को बाँटने वाला इस संसार में कोई बिरला ही है और गुरु का चिंतन करते रहना ही वास्तव में सच्चा आचरण है। वह अगम्य एवं अगोचर है उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता; वह उसे ही मिलता है जिसे वह अपने से मिला लेता है। गुणवान जीव स्त्री सदैव उसके गुणों का सुमिरन करती रहती है और हे नानक, गुरु की मति के माध्यम से ही उस मित्र प्रभु को मिला जाता है।। १७ ।।

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै ॥ जिउ कंचन सोहागा ढालै ॥ कसि कसवटी सहै सु ताउ ॥ नदरि सराफ वंनी सचड़ाउ ॥ जगतु पसू अहं कालु कसाई॥ करि करतै करणी करि पाई ॥ जिनि कीती तिनि कीमति पाई ॥ होर किआ कहीऐ किछु कहणु न जाई ॥१८॥

जिस प्रकार सोने को गलाने वाला सुहागा सोने को गला देता है उसी प्रकार काम, क्रोध इस शरीर तो गला देते हैं। सच्चे सोने को प्रभु की कसौटी और ताप को सहना पड़ता है और तभी यह उस प्रभु रूपी सुनार की दृष्टि में सच्चा और शुद्ध बनता है। यह संसार पशु है और अहंकार रूपी काल कसाई है। प्रभु ने सृष्टि उत्पन्न करके जीवों का आचरण उन्हीं के हाथों में सौंप दिया है। जिस प्रभु ने सृष्टि को पैदा किया है वही इसके रहस्य

को जानता है ; अन्य कोई क्या कह सकता है क्योंकि किसी से कुछ भी नहीं कहा जाता।। १८ ।।

खोजत खोजत अंम्रितु पीआ ॥ खिमा गही मनु सतगुरि दीआ ॥ खरा खरा आखै सभु कोइ ॥ खरा रतनु जुग चारे होइ ॥ खात पीअंत मूए नही जानिआ॥ खिन महि मूए जा सबदु पछानिआ ॥ असथिरु चीतु मरनि मनु मानिआ ॥ गुर किरपा ते नामु पछानिआ ॥१६॥

खोजते-खोजते मैंने प्रभु नाम का अमृत पी लिया है और जब इस मन में क्षमाभाव को पकड़ा तभी सच्चे गुरु ने यह अमृत प्रदान किया। अपने आप को तो सभी शुद्ध-शुद्ध कहते रहते हैं परन्तु खरा रत्न वही है जो चारों युगों में खरा बना रहता है। अनेक जीव तो उसे जाने बिना खाते-पीते ही मर गए हैं परन्तु जिन्होंने शब्द को पहचान लिया है वे क्षण भर में ही अपने अहंकार भाव के प्रति मर गए हैं। उन्हें ऐसा मरना अच्छा लगता है क्योंकि इस प्रकार उनका चित्त स्थिर बना रहता है। गुरु की कृपा से ही उन्होंने प्रभु नाम को पहचाना होता है।। १६ ।।

गगन गंभीरु गगनंतरि वासु ॥ गुण गावै सुख सहजि निवासु ॥ गइआ न आवै आइ न जाइ ॥ गुर परसादि रहै लिव लाइ ॥ गगनु अगंमु अनाथु अजोनी ॥ असथिरु चीतु समाधि सगोनी ॥ हरि नामु चेति फिरि पवहि न जूनी ॥ गुरमति सारु होर नाम बिहूनी ॥२०॥

आकाश की तरह सबमें व्याप्त वह प्रभु जब हृदय रूपी आकाश में आकर बस गया तो जीव अब उसी का गुणानुवाद करता है और स्वाभाविक सुख में उसका निवास हो जाता है। वह जन्मता-मरता नहीं और ना ही आवागमन में पड़ा रहता है। गुरु की कृपा से ही जीव उसमें लौ लगाये रहता है। वह अयोनि, अगम्य और ऐसा नाथ रूपी आकाश है जिसके ऊपर कोई भी नाथ नहीं। वह स्थिर चित्त वाला और सभी गुणों का स्वामी सदैव समाधि में लीन बना रहने वाला है। हे जीव, तू उस प्रभु के नाम का सुमिरन कर ताकि तू फिर योनियों में ना भटके। गुरु का मत ही श्रेष्ठ मत है तथा अन्य सब कुछ प्रभु नाम से विहीन है।। २० ।।

घर दर फिरि थाकी बहुतेरे ॥ जाति असंख अंत नही मेरे ॥ केते मात पिता सुत धीआ ॥ केते गुर चेले फुनि हूआ ॥ काचे गुर ते मुकति न हूआ ॥ केती नारि वरु एकु समालि ॥ गुरमुखि मरणु जीवणु प्रभ नालि ॥ दह दिस ढूढि घरै महि पाइआ ॥ मेलु भइआ सतिगुरू मिलाइआ ॥२१॥

मैं बहुत से घरों और द्वारों पर भटक-भटक कर थक गया हूँ और मैं अनेकों जातियों (जीवनों) में से पार हुआ हूँ। उन जन्मों की गिनती नहीं की जा सकती। कितनी बार मैं माता, पिता, पुत्र और पुत्री बना हूँ। कितनी बार गुरु चेला मैं बार-बार बना हूँ

परन्तु कच्चे गुरु के माध्यम से कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। तू यह मान ले कि अनेकों जीव उसकी स्त्रियां हैं और उस एक प्रभु पति को ही हृदय में याद करता रह। गुरमुख व्यक्ति का तो जीना मरना प्रभु के साथ ही होता है। उसे दसों दिशाओं में ढूंढने पर उसे हृदय रूपी घर में ही पाया जाता है और उससे मेल तभी होता है जब सच्चा गुरु वह मेल मिला देता है।। २१ ।।

गुरमुखि गावै गुरमुखि बोलै ॥ गुरमुखि तोलि तुोलावै तोलै ॥ गुरमुखि आवै जाइ निसंगु ॥ परहरि मैलु जलाइ कलंकु ॥ गुरमुखि नाद बेद बीचारु॥ गुरमुखि मजनु चजु अचारु ॥ गुरमुखि सबदु अंम्रितु है सारु ॥ नानक गुरमुखि पावै पारु ॥२२॥

गुरमुख व्यक्ति ही उस प्रभु का गायन करता है और गुरमुख व्यक्ति ही उसकी कथावार्ता कहता है। गुरमुख की जाँच परख वह प्रभु ही करता कराता है। गुरमुख व्यक्ति ही बिना किसी भय के आता जाता है और अपने हृदय की मैल त्याग कर अपने कलंकों को जला कर राख कर देता है। गुरमुख बनना ही नाद वेद का चिंतन है और गुरमुख होना ही तीर्थ स्नान विधि-विधान और वास्तविक आचरण है। गुरमुख का उपदेश ही अमृत रूपी सार तत्व है और हे नानक, गुरमुख ही इस संसार सागर से पार उतर जाता है।। २२ ।।

चंचलु चीतु न रहई ठाइ ॥ चोरी मिरगु अंगूरी खाइ ॥ चरन कमल उर धारे चीत ॥ चिरु जीवनु चेतनु नित नीत ॥ चिंतत ही दीसै सभु कोइ ॥ चेतहि एकु तही सुखु होइ ॥ चिति वसै राचै हरि नाइ ॥ मुकति भइआ पति सिउ घरि जाइ ॥२३॥

यह चंचल चित्त एक स्थान पर नहीं टिकता और जीव रूपी हिरण पाप रूपी फूटे हुए अंकुरों को खाता रहता है। यदि यह प्रभु के चरण कमलों को चित्त में धारण कर ले तो यह चिरंजीवी और सदैव चेतन बना रहने वाला हो जाता है। सब लोग यहाँ चिंता में पड़े हुए दिखाई देते हैं परन्तु यदि ये केवल उस एक प्रभु का सुमिरन करें तभी इन्हें सुख प्राप्त हो सकेगा। जब वह प्रभु इनके चित्त में बसेगा और यह प्रभु के नाम में लीन हो जाएँगे तभी इन्हें मुक्ति प्राप्त होगी और ये सम्मान पूर्वक अपने मूल ठिकाने पर अर्थात् प्रभु में स्थित हो जाएंगे।। २३ ।।

छीजै देह खुलै इक गंढि ॥ छेआ नित देखहु जगि हंढि ॥ धूप छाव जे सम करि जाणै ॥ बंधन काटि मुकति घरि आणै ॥ छाइआ छूछी जगतु भुलाना॥ लिखिआ किरतु धुरे परवाना ॥ छीजै जोबनु जरूआ सिरि कालु ॥ काइआ छीजै भई सिबालु ॥२४॥

जब शरीर टूटता है तो इसकी बँधी हुई गठरी खुल जाती है। सारे संसार में घूम फिरकर देख लो तुम्हें सर्वत्र क्षय अर्थात् नाश ही दिखाई देगा। जो दुख और सुख, धूप-छाँव को समान रूप से जानता है वहीं बन्धनों को काटकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस माया की छाया घटिया है और सारा संसार इसी में भटका हुआ है। जीव का भाग्य लेख और संस्कार तो प्रारम्भ से ही लिखा हुआ है। इसका यौवन नष्ट होता रहता है और बुढ़ापा मौत की तरह इसके सिर पर खड़ा रहता है। अब इसकी काया टूट जाती है और पानी पर शैवाल की तरह ढीली पड़ जाती है।। २४ ।।

आपै आपि प्रभू तिहु लोइ ॥ जुगि जुगि दाता अवरु न कोइ ॥ जिउ भावै तिउ राखहि राखु ॥ जसु जाचउ देवै पति साखु ॥ जागतु जागि रहा तुधु भावा ॥ जा तू मेलहि ता तुझै समावा ॥ जै जै कारु जपउ जगदीस ॥ गुरमति मिलीऐ बीस इकीस ॥२५॥

तीनों लोकों में स्वयं वह प्रभु ही अनुभव होता है ; युगों-युगों का दाता उसके बिना अन्य कोई नहीं। उसे जैसे अच्छा लगता है वह उसी प्रकार हमें रखे रहता है। जब मैं उसके गुणानुवाद को माँगता हूँ तो वह मुझे सम्मान और भरोसा प्रदान करता है। जब मैं सावधान बना रहता हूँ तो तभी तुझे अच्छा लगता हूँ और यदि तू मुझे अपने से मिला ले तो तभी मैं तुझमें लीन होता हूँ। उस प्रभु की जय-जयकार करते हुए उसका सुमिरन करते रहना चाहिये और गुरमति के माध्यम से निश्चित तौर पर उस ईश्वर से मिलाप होता है।। २५ ।।

झखि बोलणु किआ जग सिउवादु ॥ झूरि मरै देखै परमादु ॥ जनमि मूए न ही जीवण आसा ॥ आइ चले भए आस निरासा ॥ झूरि झूरि झखि माटी रलि जाइ ॥ कालु न चाँपै हरि गुण गाइ ॥ पाई नव निधि हरि कै नाइ ॥ आपे देवै सहजि सुभाइ ॥२६॥

जीव झख मारता रहता है और संसार से वाद-विवाद बनाये रहता है परन्तु जब अपने पागलपन को देखता है तो पछताता हुआ मरता रहता है। जन्मता है, मरता है परन्तु वास्तविक जीवन की आशा नहीं बनाए रखता। वह आता है और आशाएं पूरी ना होने पर निराश होकर यहाँ से चला जाता है। झख मारता हुआ तथा पछताता हुआ वह मिट्टी में मिल जाता है परन्तु यदि वही प्रभु के गुणों का गायन करे तो काल उसे चबा नहीं सकता। प्रभु के नाम के माध्यम से ही नवनिधियाँ प्राप्त की जानी हैं और वह प्रभु स्वयं ही सहज स्वभाव रूप में हमें प्रदान करता है।। २६ ।।

ञिआनो बोलै आपे बूझै ॥ आपे समझै आपे सूझै ॥ गुर का कहिआ अंकि समावै ॥ निरमल सूचे साचो भावै ॥ गुरु सागरु रतनी नही तोट ॥ लाल

पदारथ साचु अखोट ॥ गुरि कहिआ सा कार कमावहु ॥ गुर की करणी काहे धावहु ॥ नानक गुरमति साचि समावहु ॥२७॥

ज्ञानवान होकर बोलने से जीव स्वयं ही अपने आप को बूझ लेता है। वह जब अपने आपको समझ लेता है तो उसे स्वयं ही सब कुछ सुझाई पड़ने लग जाता है। गुरु के उपदेश को यदि वह अपनी झोली में लेकर स्वीकार कर लेता है तो वह निर्मल और पवित्र हो जाता है तथा उस सच्चे प्रभु को भा जाता है। गुरु ऐसा सागर है जिसमें रत्नों की कोई कमी नहीं। उसमे हीरे, लाल और शुद्ध सत्य स्वरूप पदार्थ स्थित बने रहते हैं। गुरु जो कहता है वैसा आचरण करो और गुरु जो करता है तुम वैसा करने से लिये क्यों दौड़ते हो अर्थात् उसका किया हुआ तो उसकी मौज का कोई अलौकिक रंग हो सकता है। हे नानक, इस प्रकार गुरमति के माध्यम से उस सत्य में लीन हो जाओ।। २७ ।।

टूटै नेहु कि बोलहि सही ॥ टूटै बाह दुहू दिस गही ॥ टूटि परीति गई बुर बोलि ॥ दुरमति परहरि छाडी ढोलि ॥ टूटै गंठि पड़ै वीचारि ॥ गुर सबदी घरि कारजु सारि ॥ लाहा साचु न आवै तोटा ॥ त्रिभवण ठाकुरु प्रीतमु मोटा ॥२८॥

जब सही बात को सामने बोल दिया जाता है तो दूसरे व्यक्ति का स्नेह उसी क्षण टूट जाता है। बाँह को दोनों ओर से खींचने पर वह निशिचत रूप से टूट जाती है। बुरा बोलने के कारण भी प्रीति टूट जाती है और दुर्मति वाली स्त्री को उसका पति छोड़ ही देता है। यदि अपने किये हुए को विचार लिया जाए तो टूटा हुआ सम्बन्ध फिर जुड़ जाता है और उसमें गाँठ लग जाती है। शब्द गुरु के माध्यम से अपने हृदय में ही सभी कार्य कर लिये जाते हैं। ऐसा करने से सत्य रूपी लाभ होगा और फिर कोई भी कमी नहीं रहेगी। अब वह सूक्ष्म और तीनों लोकों में व्याप्त प्रभु स्थूल रूप से प्रत्यक्ष दिखने लगेगा।। २८ ।।

ठाकहु मनूआ राखहु ठाइ ॥ ठहकि मुई अवगुणि पछुताइ ॥ ठाकुरु एकु सबाई नारि ॥ बहुते वेस करे कूड़िआरि ॥ पर घरि जाती ठाकि रहाई ॥ महलि बुलाई ठाक न पाई ॥ सबदि सवारी साचि पिआरी ॥ साई सोहागणि ठाकुरि धारी ॥२९॥

अपने मन को रोककर सही ठिकाने पर बनाए रखो क्योंकि दुनिया तो आपस में ही टकरा-टकरा कर मर गई है और अवगुणों में पड़ी हुई पछताती रहती है। वह मालिक पति तो एक प्रभु ही है और अन्य सभी जीव तो उसकी स्त्रियाँ ही हैं परन्तु ये झूठी जीव स्त्रियाँ अनेकों प्रकार के पाखण्ड उसको रिझाने के लिये करती रहती हैं। पराए घर में इसे जाँती हुई को रोका जाता है परन्तु जब वह प्रभु के स्थान पर बुलाई जाती है तो इसे कोई भी रुकावट नही पड़ती। सत्य को प्यार करने वाली शब्द के माध्यम से अपने को सँवारे

बनाए रखती है और उसी सुहागिन को प्रभु ने आसरा प्रदान किया है।। २६ ।।

डोलत डोलत हे सखी फाटे चीर सीगार ॥ डाहपणि तनि सुखु नही बिनु डर बिणठी डार ॥ डरपि मुई घरि आपणै डीठी कंति सुजाणि ॥ डरु राखिआ गुरि आपणै निरभउ नामु वखाणि ॥ डूगरि वासु तिखा घणी जब देखा नही दूरि ॥ तिखा निवारी सबदु मंनि अंम्रितु पीआ भरपूरि ॥ देहि देहि आखै सभु कोई जै भावै तै देइ ॥ गुरू दुआरै देवसी तिखा निवारै सोइ ॥३०॥

इधर-उधर भटकते हुए हे सखी, मेरे सारे शृंगार और वस्त्र फट गए हैं। ईर्ष्या और द्वेष में तन को सुख नहीं मिलता तथा प्रभु के भय के बिना सभी नष्ट होते जाते हैं। जीव स्त्री अपने घर में ही दुनिया के डर से मरी बैठी है और इसे उस सुजान प्रियतम ने अपनी करुणा की दृष्टि से देखा है। अपने गुरु ने इसके डर को प्रभु का निर्भय नाम बखान करके दूर कर दिया है। जब अहंकार रूपी पर्वत पर बस रही थी तो तृष्णा बहुत अधिक थी परन्तु जब ध्यान से देखा तो वह पास ही में अर्थात् हृदय में ही था। शब्द को जब मान लिया गया तो तृष्णा बुझ गई और भरपूर रूप से मैंने अमृतपान कर लिया है। सब कोई दे-दे की पुकार लगाए रहते हैं परन्तु उसे जो भाता है वह उसी को देता है। गुरु के द्वार पर आने से ही वह देता है और वह ही प्यास को दूर करता है।। ३० ।।

ढंढोलत ढूढत हउ फिरी ढहि ढहि पवनि करारि ॥ भारे ढहते ढहि पए हउले निकसे पारि ॥ अमर अजाची हरि मिले तिन कै हउ बलि जाउ ॥ तिन की धूड़ि अघुलीऐ संगति मेलि मिलाउ ॥ मनु दीआ गुरि आपणै पाइआ निरमल नाउ ॥ जिनि नामु दीआ तिसु सेवसा तिसु बलिहारै जाउ ॥ जो उसारे सो ढाहसी तिसु बिनु अवरु न कोइ ॥ गुर परसादी तिसु संम्ला ता तनि दूखु न होइ ॥३१॥

खोजती-खोजती मैं भटक रही हूँ क्योंकि यह संसार एक ऐसी नदी है जिसमें जीव आम तौर पर उसके किनारे पर ही गिर पड़ते हैं। जो पापों से भरे हुए भारी होते हैं वे तो गिर ही जाते हैं परन्तु जिन पर पापों का बोझ नहीं रहता और हल्के होते हैं वे इससे पार उतर जाते हैं। वह अमर प्रभु बिना माँगे ही जिन्हें मिल जाता है मैं उन पर बलिहारी जाती हूँ। उनकी चरणधूलि से ही छुटकारा मिलता है और उनकी संगत में ही प्रभु से मेल मिलाप होता है। जब हमने अपना मन गुरु को दे दिया तो हमें निर्मल प्रभु का नाम प्राप्त हो गया है। जिसने प्रभु नाम दिया है मैं उसी की सेवा करूंगी और उसी पर बलिहारी जाऊँगी। जिसने बनाया है वही गिराएगा भी और उसके बिना अन्य कोई नहीं है। गुरु की कृपा से मैं उस प्रभु को याद रखूं तो मेरे तन में कभी भी दुख नहीं लगेगा।। ३१ ।।

णा को मेरा किसु गही णा को होआ न होगु ॥ आवणि जाणि विगुचीऐ दुबिधा विआपै रोगु ॥ णाम विहूणे आदमी कलर कंध गिरंति ॥ विणु नावै किउ छूटीऐ जाइ रसातलि अंति ॥ गणत गणावै अखरी अगणतु साचा सोइ॥ अगिआनी मतिहीणु है गुर बिनु गिआनु न होइ ॥ तूटी तंतु रबाब की वाजै नही विजोगि ॥ विछुड़िआ मेलै प्रभू नानक करि संजोग ॥३२॥

इस संसार में ना तो कोई मेरा है इसलिये मैं किसको पकड़ूं ; यहाँ कोई ना किसी का हुआ है ना होगा। आवागमन में ही यहाँ व्यक्ति भटकता रहता है और उसे द्वैतभाव का रोग प्रभावित करता रहता है। प्रभु-नाम से विहीन व्यक्ति यहां रेत की दीवार की तरह गिरते रहते हैं। प्रभु नाम के बिना वे भला कैसे छूटेंगे और अन्ततः उन्हें रसातल में ही जाना होता है। ऐसा व्यक्ति उस अगणित सच्चे प्रभु को गिनतियों के माध्यम से गिनने की कोशिश करता है। ऐसा व्यक्ति अज्ञानी और गतिहीन होता है और गुरु बिना इसे ज्ञान नहीं हो सकता। प्रभु से बिछुड़े जीव रबाब वाद्य की टूटी तार की तरह हैं जिनमें अब टूट जाने के कारण स्वर नहीं निकलता। हे नानक, प्रभु ही अवसर बनाकर बिछुड़े हुओं को अपने से मिला लेता है।। ३२ ।।

तरवरु काइआ पंखि मनु तरवरि पंखी पंच ॥ ततु चुगहि मिलि एकसे तिन कउ फास न रंच ॥ उडहि त बेगुल बेगुले ताकहि चोग घणी ॥ पंख तुटे फाही पड़ी अवगुणि भीड़ बणी ॥ बिनु साचे किउ छूटीऐ हरि गुण करमि मणी ॥ आपि छडाए छूटीऐ वडा आपि धणी ॥ गुर परसादी छूटीऐ किरपा आपि करेइ ॥ अपणै हाथि वडाईआ जे भावै तै देइ ॥३३॥

यह शरीर वृक्ष है, मन पक्षी है और पाँचों ज्ञान-इन्द्रियाँ इस पर अन्य पक्षी हैं। ये पाँचों जब तक एक प्रभु में लीन होकर तत्व ज्ञान का दाना चुगते रहते हैं तो उन्हें जाल जरा भी नहीं छू पाता परन्तु अधिक दानों को देखकर जल्दी-जल्दी जब ये उड़ पड़ते हैं तब वे फन्दे में पड़ जाते हैं ; उनके पंख टूट जाते हैं और लालच के अवगुण के कारण उन पर मुसीबत आ पड़ती है। बिना सत्य भाव अपनाए कैसे छूटा जा सकता है और प्रभु की नाम रूपी मणि तो उस प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होती है। वह जब स्वयं मुक्त करता है तभी छुटकारा मिलता है और वह मालिक आप ही सबसे बड़ा है। जब वह स्वयं कृपा करता है तो गुरु की कृपा से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। उस प्रभु के अपने हाथ में सभी प्रकार का बड़प्पन है और वह जिसे चाहता है उसे ही प्रदान करता है।। ३३ ।।

थर थर कंपै जीअड़ा थान विहूणा होइ ॥ थानि मानि सचु एकु है काजु न फीटै कोइ ॥ थिरु नाराइणु थिरु गुरू थिरु साचा बीचारु ॥ सुरि नर नाथह नाथु तू निधारा आधारु ॥ सरबे थान थनंतरी तू दाता दातारु ॥ जह देखा तह एकु तू अंतु न पारावारु ॥ थान थनंतरि रवि रहिआ गुर सबदी वीचारि॥

अणमंगिआ दानु देवसी वडा अगम अपारु ॥३४॥

जब व्यक्ति स्थान से च्युत हो जाता है तो वह थर-थर काँपने लगता है। स्थान वाला और सम्मान वाला एक सच्चा प्रभु ही है। उस प्रभु के साथ बने रहने से कभी भी काम नहीं बिगड़ता। वह प्रभु स्थिर है, गुरु स्थिर है और सच्चा विचार स्थिर है। हे प्रभु, तू देवताओं का, मनुष्यों का, नाथों का भी नाथ है और तू ही बेआसरा लोगों का आसरा है। तू ही सभी स्थानों में बना रहने वाला है और तू ही दाता दान देने वाला है। मैं जिधर देखता हूँ एक तू ही दिखाई देता है और तेरे ओर-छोर के रहस्य को नहीं जा सकता है। शब्द-गुरु के चिंतन के फलस्वरूप वह सभी स्थानों में रमण करता हुआ प्रतीत होता है ; वही महान, अगम्य और अपार है जो बिना माँगे ही दान देता चला जाता है।। ३४ ।।

दइआ दानु दइआलु तू करि करि देखणहारु ॥ दइआ करहि प्रभ मेलि लैहि खिन महि ढाहि उसारि ॥ दाना तू बीना तुही दाना कै सिरि दानु ॥ दालद भंजन दुख दलण गुरमुखि गिआनु धिआनु ॥३५॥

हे दया करने वाले दयालु प्रभु, तू ही सब कुछ करके उसकी देखभाल भी करने वाला है। तू दया करता है तो हे प्रभु, तू मिला लेता है और तू ही क्षण भर में गिराता और मिलाता रहता है। तू ही सब कुछ जानने वाला और देखने वाला है और तू ही सभी दाताओं का दाता है। तू ही दरिद्रता का नाश करने वाला, दुखों को नष्ट करने वाला, तू ही गुरमुख का ज्ञान और ध्यान है।। ३५ ।।

धनि गइऐ बहि झूरीऐ धन महि चीतु गवार ॥ धनु विरली सचु संचिआ निरमलु नामु पिआरि ॥ धनु गइआ ता जाण देहि जे राचहि रंगि एक ॥ मनु दीजै सिरु सउपीऐ भी करते की टेक ॥ धंधा धावत रहि गए मन महि सबदु अनंदु ॥ दुरजन ते साजन भए भेटे गुर गोविंद ॥ बनु बनु फिरती ढूढती बसतु रही घरि बारि ॥ सतिगुरि मेली मिलि रही जनम मरण दुखु निवारि ॥३६॥

धन के चले जाने से बहुत दुख होता है क्योंकि गँवार व्यक्ति का चित्त तो सदैव धन में ही लगा रहता है। बिरले लोगों ने ही प्रेम के माध्यम से पवित्र नाम रूपी सच्चा धन इकट्ठा किया है। यदि एक प्रभु के रंग में जीव रंगा रहता है तो वह चले गये धन को चला ही जाने देता है अर्थात् उसे कोई दुख नहीं होता। मन को अर्पण करके सिर को सौंप कर उस प्रभु का ही आसरा बनाए रखना चाहिए। जब मन में शब्द का आनन्द आ बसा तो अनेकों धन्धे करते रहने से मन रुक गया। दुर्जन व्यक्ति भी अब सज्जन बन गए हैं क्योंकि अब प्रभु गुरु से मिलाप हो गया है। जिस दुर्लभ वस्तु को मैं वनों मैं ढूँढती फिरती थी वह वस्तु घर में ही पड़ी हुई मिल गयी। सच्चे गुरु के मिलाने से मैं अब उस प्रियतम प्रभु से मिल गई हूँ और मेरे जन्म-मरण का दुख समाप्त हो गया है।। ३६ ।।

नाना करत न छूटीऐ विणु गुण जम पुरि जाहि ॥ ना तिसु एहु न ओहु है अवगुणि फिरि पछुताहि ॥ ना तिसु गिआनु न धिआनु है ना तिसु धरमु धिआनु ॥ विणु नावै निरभउ कहा किआ जाणा अभिमानु ॥ थाकि रही किव अपड़ा हाथ नही ना पारु ॥ ना साजन से रंगुले किसु पहि करी पुकार ॥ नानक प्रिउ प्रिउ जे करी मेले मेलणहारु ॥ जिनि विछोड़ी सो मेलसी गुर कै हेति अपारि ॥३७॥

कई प्रकार के कर्मकाण्ड करते रहने से मुक्ति नहीं प्राप्त होती और गुणों से विहीन बने रहने पर यमपुरी में जाना पड़ता है। ऐसे व्यक्ति का ना तो यह लोक और ना ही परलोक सँवरता है और अवगुणों में भटकता वह पछताता रहता है। उस व्यक्ति के पास ना तो ज्ञान ध्यान होता है और ना ही उसे धर्म का पता होता है। बिना प्रभु के नाम के व्यक्ति निर्भय कैसे हो सकता है और अभिमान के दुख को मैं भला क्या समझ सकती हूँ। मैं कैसे उस तक पहुँच सकती हूँ क्योंकि ना तो मेरा हाथ वहाँ तक पहुँच सकता है और ना ही मैं पार हो सकती हूँ। ना ही मुझे प्यार करने वाले मेरे साजन हैं तो मैं भला किसके सामने पुकार लगाऊँ। हे नानक, यदि मैं प्रिय को पुकार लगाती रहूँ तो वह मिलाने वाला प्रभु मुझे मिला लेगा। जिसने वियोग पैदा किया है वही गुरु के अपार प्रेम के माध्यम से मुझे मिला देगा।। ३७ ।।

पापु बुरा पापी कउ पिआरा ॥ पापि लदे पापे पासारा ॥ परहरि पापु पछाणै आपु ॥ ना तिसु सोगु विजोगु संतापु ॥ नरकि पड़ंतउ किउ रहै किउ बंचै जमकालु ॥ किउ आवण जाणा वीसरै झूठु बुरा खै कालु ॥ मनु जंजाली वेड़िआ भी जंजाला माहि ॥ विणु नावै किउ छूटीऐ पापे पचहि पचाहि ॥३८॥

पाप बुरा होता है परन्तु पापी को बहुत प्यारा होता है। पापी व्यक्ति पाप का बोझ ही लादे रहता है और पाप के माध्यम से ही व्यवहार का आडम्बर बनाए रहता है। जब वह पाप को त्यागकर अपने आप को पहचान लेता है तब उसे कोई भी शोक वियोग और संताप नहीं सताता। जीव नरक में पड़ने से कैसे दूर रहे और कैसे यमकाल से बचा रह सकता है; इसका आना जाना कैसे समाप्त हो सकता है क्योंकि झूठ इसके लिये अत्यन्त बुरा है और यही इसे मार डालने वाला काल है। मन जंजालों में घिरा हुआ स्वयं भी जंजालों में पड़ा रहता है। प्रभु नाम के बिना कैसे छुटकारा होगा और जीव पापों में पड़े हुए मरते खपते रहते हैं।। ३८ ।।

फिरि फिरि फाही फासै कऊआ ॥ फिरि पछुताना अब किआ हूआ ॥ फाथा चोग चुगै नही बूझै ॥ सतगुरु मिलै त आखी सूझै ॥ जिउ मछुली फाथी

जम जालि ॥ विणु गुर दाते मुकति न भालि ॥ फिरि फिरि आवै फिरि फिरि जाइ ॥ इक रंगि रचै रहै लिव लाइ ॥ इव छूटै फिरि फास न पाइ ॥३९॥

कौए की चित्त वृत्ति वाला जीव बार-बार फन्दे में फँसता रहता है और फिर पछताता रहता है कि अब यह क्या हो गया। दाना चुगने के लोभ में वह फँस गया है इस तथ्य को वह नही बूझता परन्तु यदि उसे सच्चा गुरु मिल जाए तो उसे अपनी आँखों से सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने लग जाता है। जिस प्रकार मछली मौत के जाल में फँस जाती है उसी प्रकार फँसा हुआ जीव दाता गुरु के बिना मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यह बार-बार आता और जाता रहता है परन्तु जो उस प्रभु में लौ लगाते है वे उसके एक ही रंग में लीन बने रहते हैं। इस प्रकार वे मुक्त बने रहते हैं और फिर उन्हें फन्दे में नहीं पड़ना पड़ता।। ३९ ।।

बीरा बीरा करि रही बीर भए बैराइ ॥ बीर चले घरि आपणै बहिण बिरहि जलि जाइ ॥ बाबुल कै घरि बेटड़ी बाली बालै नेहि ॥ जे लोड़हि वरु कामणी सतिगुरु सेवहि तेहि ॥ बिरलो गिआनी बूझणउ सतिगुरु साचि मिलेइ ॥ ठाकुर हाथि वडाईआ जै भावै तै देइ ॥ बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ ॥ इह बाणी महा पुरख की निज घरि वासा होइ ॥४०॥

शरीर से बिछुड़ी हुई रूह को यह शरीर भाई-भाई करके आवाजें देता है पर वह रूह अब इसे पहचानती भी नहीं। वह भाई रूपी आत्मा तो अपने घर की तरफ चल देती है और यह देही रूपी बहन उसके दुख में जल मरती है। पिता के घर में जीव रूपी लड़की विवाह के योग्य है। वह जीव रूपी लड़की प्रभु रूपी लड़के के प्यार में लीन बनी हुई है परन्तु उसे प्राप्त नहीं कर पाती। हे सुन्दर कामिनी, यदि तू वास्तव में अपने उस वर को प्राप्त करना चाहती है तो सच्चे गुरु का सुमिरन करती रह। कोई बिरला ज्ञानी ही इस बात को बूझ पाता है कि सच्चा गुरु ही उस सच्चे प्रभु से मिलाता है। सभी बड़प्पन प्रभु के हाथ में हैं, वह जिन्हें चाहता है उन्हें ही देता है। यदि कोई गुरमुख बन जाए तो ऐसा ही कोई बिरला गुरमुख गुरु की वाणी का चिंतन करता है। यह वाणी उस महान सर्वव्यापक प्रभु की है जो अपने वास्तविक घर में निवास प्रदान करती है।। ४० ।।

भनि भनि घड़ीऐ घड़ि घड़ि भजै ढाहि उसारै उसरे ढाहै ॥ सर भरि सोखै भी भरि पोखै समरथ वेपरवाहै ॥ भरमि भुलाने भए दिवाने विणु भागा किआ पाईऐ ॥ गुरमुखि गिआनु डोरी प्रभि पकड़ी जिन खिंचै तिन जाईऐ ॥ हरि गुण गाइ सदा रंगि राते बहुड़ि न पछोताईऐ ॥ भभै भालहि गुरमुखि बूझहिता निज घरि वासा पाईऐ ॥ भभै भउजलु मारगु विखड़ा आस निरासा तरीऐ ॥ गुर परसादी आपो चीनै जीवतिआ इव मरीऐ ॥४१॥

वह तोड़ता है बनाता है, बनाता है फिर तोड़ता है। वह गिराता है फिर निर्माण करता है और रचना करता है तथा फिर नष्ट कर देता है। संसार सागर को भरकर यह उसे सुखा भी देता है और फिर भरकर अर्थात् जीवों को पैदा करके वह समर्थ बेपरवाह प्रभु उनका पालन-पोषण भी करता है। भ्रमों में भूले जीव यहाँ पागल बने हैं ; बिना भाग्य के भला क्या प्राप्त किया जा सकता है। गुरमुख बनकर जब प्रभु के ज्ञान की डोरी को पकड़ लिया तो वह जिधर खींचता है उसी तरफ जाना होता है। जो प्रभु के गुण गाते हुए सदा उसके रंग में रंगे रहते है उन्हें फिर पछताना नहीं पड़ता। भ-जीव उसको खोजते हैं और जब गुरमुख बनकर उसको बूझ लेते हैं तो अपने वास्तविक ठिकाने पर निवास पा जाते हैं। यह भवजल का मार्ग बहुत विषम है और आशाओं में निराश बने रहकर इससे पार जाया जाता है। गुरु की कृपा से जब व्यक्ति स्वयं को पहचान जाता है तब यह जीवित रहते हुए ही अधिकारों के संदर्भ में मर जाता है।। ४१ ।।

माइआ माइआ करि मुए माइआ किसै न साथि ॥ हंसु चलै उठि डुमणो माइआ भूली आथि ॥ मनु झूठा जमि जोहिआ अवगुण चलहि नालि ॥ मन महि मनु उलटो मरै जे गुण होवहि नालि ॥ मेरी मेरी करि मुए विणु नावै दुखु भालि ॥ गड़ मंदर महला कहा जिउ बाजी दीबाणु ॥ नानक सचे नाम विणु झूठा आवण जाणु ॥ आपे चतुरु सरूपु है आपे जाणु सुजाणु ॥४२॥

माया-माया की चीख पुकार लगाते हुए लोग मर जाते हैं परन्तु यह माया किसी के साथ नहीं जाती। जीव रूपी हंस उदास होकर चल पड़ता है और माया यहीं पर रहकर उसे भुला देती है। झूठे मन को यम ने दुखी किया है और मन के अवगुण मन के साथ ही चलते रहते हैं। इस मन के साथ यदि गुण हों तो यह संसार की ओर से उलट कर विषय-विकारों के प्रति मर जाता है। प्रभु नाम के बिना दुखों को ढूँढते हुए मेरी-मेरी करते लोग मर खप जाते हैं। किले, मंदिर, महल, इत्यादि जो एक खेल की तरह नष्ट हो जाने वाले हैं वे भला अब कहाँ हैं। हे नानक, प्रभु के सच्चे नाम के बिना यह आना जाना तो झूठा ही है। वह प्रभु स्वयं ही चतुर, सुन्दर स्वरूप वाला है और वह सयाना सब कुछ स्वयं ही जानने वाला है।। ४२ ।।

जो आवहि से जाहि फुनि आइ गए पछुताहि ॥ लख चउरासीह मेदनी घटै न वधै उताहि ॥ से जन उबरे जिन हरि भाइआ ॥ धंधा मुआ विगूती माइआ ॥ जो दीसै सो चालसी किस कउ मीतु करेउ ॥ जीउ समपउ आपणा तनु मनु आगै देउ ॥ असथिरु करता तू धणी तिस ही की मै ओट ॥ गुण की मारी हउ मुई सबदि रती मनि चोट ॥४३॥

जो इस संसार में आते हैं उन्हें वापस मुड़कर जाना ही होता है और इस आवागमन

में ही वे पछताते रहते हैं। उनके लिए तो ये चौरासी लाख योनियों वाली धरती है जहाँ ना तो उनकी योनियाँ घटती हैं ना बढ़ती हैं अर्थात् उन्हें इन योनियों से पार जाना ही होता है। जिनको प्रभु अच्छा लगा है उन्हीं सेवकों का उद्धार हुआ है और जब माया मोह नष्ट हो जाते हैं तो दुनिया के धन्धे समाप्त हो जाते हैं। यहाँ किसको मित्र बनाया जाए क्योंकि जो भी दिखाई देने वाला है वह चलायमान है। यहाँ तो यही ठीक है कि अपने प्राण उस प्रभु को सौंप दूं और तन मन उसके आगे रख दूं। हे मेरे मालिक कर्ता प्रभु, तू ही यहाँ पर स्थिर है और मुझे तेरा ही आसरा है। प्रभु के गुणों द्वारा मारा हुआ अहंकार मन पर शब्द की चोट लगने से शब्द में ही लीन हो जाता है।। ४३ ।।

राणा राउ न को रहै रंगु न तुंगु फकीरु ॥ वारी आपो आपणी कोइ न बंधै धीर ॥ राहु बुरा भीहावला सर डूगर असगाह ॥ मै तनि अवगण झुरि मुई विणु गुण किउ घरि जाह ॥ गुणीआ गुण ले प्रभ मिले किउ तिन मिलउ पिआरि ॥ तिन ही जैसी थी रहाँ जपि जपि रिदै मुरारि ॥ अवगुणी भरपूर है गुण भी वसहि नालि ॥ विणु सतगुर गुण न जापनी जिचरु सबदि न करे बीचारु ॥४४॥

इस संसार में कोई राजा, राव, कंगाल, अमीर और फकीर बाकी नहीं बचता; सबको अपनी बारी से जाना होता है और कोई भी यहाँ ठहर नहीं सकता। यहाँ के बाद आगे जाने का मार्ग बहुत भयानक है जिसमें पर्वत और अथाह सागर रास्ते में पड़ते हैं। मेरा तन तो अवगुणों के कारण चिन्ताओं में पड़ा है क्योंकि मैं जानती हूँ कि गुण विहीन होकर मैं भला कैसे अपने मूल घर में पहुँच सकूँगी। गुणवान लोग तो गुणों को अपने साथ लेकर प्रभु से मिलते हैं और मैं कैसे प्रेम धारण करके उस प्रभु को मिलूं। बार-बार हृदय में उस प्रभु का सुमिरन करते हुए मुझे उन गुणवानों जैसा ही बने रहना चाहिये। अवगुणों से तो मैं भरी हुई हूँ परन्तु कुछ गुण भी मेरे साथ ही बसते हैं। सच्चे गुरु के बिना और शब्द का चिंतन किये बिना उन गुणों को नहीं जाना जा सकता।। ४४ ।।

लसकरीआ घर संमले आए वजहु लिखाइ ॥ कार कमावहि सिरि धणी लाहा पलै पाइ ॥ लबु लोभु बुरिआईआ छोडे मनहु विसारि ॥ गड़ि दोही पातिसाह की कदे न आवै हारि ॥ चाकरु कहीऐ खसम का सउहे उतर देइ ॥ वजहु गवाए आपणा तखति न बैसहि सेइ ॥ प्रीतम हथि वडिआईआ जै भावै तै देइ ॥ आपि करे किसु आखीऐ अवरु न कोइ करेइ ॥४५॥

इस जीवन का खेल खेलने वाले लोगों ने अपने-अपने पैंतरे सम्भाल लिए हैं और वे जो माथे पर ही देनदारी का लेख लिखाकर आए हैं वे अपने बल से उस प्रभु के कार्य

में लीन बने रहते हैं और अंततः उन्हें लाभ प्राप्त होता है। उन्होंने ममता लोभ आदि बुराइयों को मन से भुला दिया है और वे शरीर रूपी किले में उस सच्चे प्रभु को पुकार लगाते हैं तथा कभी भी हारकर वापस नहीं आते। मालिक का नौकर भी कहलाए और मालिक को सामने से जवाब भी देता रहे तो वह अपनी मेहनत की कमाई भी गँवा लेता है और ऊँची पदवी भी प्राप्त नहीं कर पाता। सभी बड़प्पन उस प्रियतम प्रभु के हाथ में हैं ; उसे जो अच्छा लगता है वह उसी को देता है। वह स्वयं सब कुछ करता है अन्य कोई कुछ नहीं कर सकता इसलिए उसके बारे में किसके आगे पुकार लगाई जाए।। ४५ ।।

बीजउ सूझै को नही बहै दुलीचा पाइ ॥ नरक निवारणु नरह नरु साचउ साचै नाइ ॥ वणु त्रिणु ढूढत फिरि रही मन महि करउ बीचारु ॥ लाल रतन बहु माणकी सतिगुर हाथि भंडारु ॥ ऊतमु होवा प्रभु मिलै इक मनि एकै भाइ ॥ नानक प्रीतम रसि मिले लाहा लै परथाइ ॥ रचना राचि जिनि रची जिनि सिरिआ आकारु ॥ गुरमुखि बेअंतु धिआईऐ अंतु न पारावारु ॥४६॥

मुझे अन्य कोई ऐसा सुझाई नहीं पड़ता जो प्रभु की तरह आसन बिछा कर यहाँ अटल होकर बैठ सके। जीवों के नरक को नष्ट करने वाला जीवों का मालिक और सदैव बना रहने वाला एक प्रभु ही है जो सच्चे नाम का सुमिरन करने से प्राप्त होता है। उसको मैं जंगलों और वनों में भी ढूँढती हुई थक गई हूँ और मन में सोचती हूँ कि वास्तव में प्रभु नाम रूपी लाल रहने वाले मोतियों का खजाना तो सच्चे गुरु के हाथ में है। यदि मैं एक मन होकर एक ही भाव में लीन होकर शुद्ध आत्मा बन जाऊँ तो मुझे प्रभु मिल जाएगा। हे नानक, जो जीव प्रियतम प्रभु के प्यार में लीन हैं वे उस लोक का लाभ भी कमा लेते हैं। जिस प्रभु ने यह रचना बनाई है और इस संसार के ढाँचे का निर्माण किया है गुरमुख बनकर ही उस अनन्त प्रभु का सुमिरन किया जाता है और उस प्रभु का कोई ओर-छोर नहीं है।। ४६ ।।

ड़ाड़ै रूड़ा हरि जीउ सोई ॥ तिसु बिनु राजा अवरु न कोई ॥ ड़ाड़ै गारुड़ु तुम सुणहु हरि वसै मन माहि ॥ गुर परसादी हरि पाईऐ मतु को भरमि भुलाहि ॥ सो साहु साचा जिसु हरि धनु रासि ॥ गुरमुखि पूरा तिसु साबासि ॥ रूड़ी बाणी हरि पाइआ गुर सबदी बीचारि ॥ आपु गइआ दुखु कटिआ हरि वरु पाइआ नारि ॥४७॥

हे पंडित, वह प्रभु सुन्दर हैं और उसके बिना अन्य कोई भी राजा नहीं। तू मन को वश में करने के लिये शब्द गुरु रूपी मंत्र सुन जिससे प्रभु मन में आ बसेगा। गुरु की कृपा से ही प्रभु प्राप्त होता है और जीव को अन्य भ्रमों में नहीं भटकते रहना चाहिये।

वही सच्चा साहूकार है जिसके पास प्रभु नाम की रासपूंजी है। गुरमुख ही पूर्ण पुरुष है और उसी को ही धन्य कहा जाता है। सुन्दर वाणी के माध्यम से और शब्द गुरु के चिंतन के द्वारा ही उस प्रभु को प्राप्त किया जाता है। जब अहंकार भाव चला जाता है तो सभी दुख कट जाते हैं तथा जीव स्त्री प्रभु रूपी वर को प्राप्त कर लेती है।। ४७ ।।

सुइना रुपा संचीऐ धनु काचा बिखु छारु ॥ साहु सदाए संचि धनु दुबिधा होइ खुआरु ॥ सचिआरी सचु संचिआ साचउ नामु अमोलु ॥ हरि निरमाइलु ऊजलो पति साची सचु बोलु ॥ साजनु मीतु सुजाणु तू तू सरवरु तू हंसु ॥ साचउ ठाकुरु मनि वसै हउ बलिहारी तिसु ॥ माइआ ममता मोहणी जिनि कीती सो जाणु ॥ बिखिआ अंम्रितु एकु है बूझै पुरखु सुजाणु ॥४८॥

सोना चाँदी इकट्ठा किया जाता है परन्तु यह धन-सम्पदा कच्ची और विष की राख के समान है। इस प्रकार के धन को इकट्ठा करके जो साहूकार कहलाता है वह दुविधा में पड़ा भटकता रहता है। सच्चे लोगों ने तो सत्य का संचय किया है और प्रभु का सच्चा नाम ही वास्तव में अमूल्य पदार्थ है। वह प्रभु ही निर्मल और उज्जवल है और उसी का सम्मान और उसी के बोल सच्चे हैं। हे प्रभु, तू ही हमारा सज्जन मित्र और सुजान पुरुष है और तू ही सरोवर है तथा तू ही उसमें तैरने वाला हंस है। जिनके मन में सच्चा प्रियतम बस गया है मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ। यह मोहिनी ममता और माया जिसने बनाई है वही इसके बारे में जानता है। जो सुजान पुरुष होते हैं वे ही इस रहस्य को समझते हैं कि विष और अमृत अर्थात् सुख और दुख एक समान ही हैं।। ४८ ।।

खिमा विहूणे खपि गए खूहणि लख असंख ॥ गणत न आवै किउ गणी खपि खपि मुए बिसंख ॥ खसमु पछाणै आपणा खूलै बंधु न पाइ ॥ सबदि महली खरा तू खिमा सचु सुख भाइ ॥ खरचु खरा धनु धिआनु तू आपे वसहि सरीरि ॥ मनि तनि मुखि जापै सदा गुण अंतरि मनि धीर ॥ हउमै खपै खपाइसी बीजउ वथु विकारु ॥ जंत उपाइ विचि पाइअनु करता अलगु अपारु ॥४६॥

क्षमा भाव से विहीन बने हुए अभिमानी लाखों करोड़ों की गिनती में इस धरती पर मर-खप गए। उनकी तो गिनती ही नहीं हो सकती इसलिये उन्हें क्या गिना जाए ; अनन्त लोग मर खप गए हैं। जिन्होंने अपने मालिक को पहचान लिया है उनके बन्धन खुल जाते हैं। हे पंडित, शब्द के माध्यम से तू पवित्र और खरा होकर प्रभु के स्थान में प्रवेश पा सकेगा और क्षमा और सत्य का सुख तेरा स्वभाव बन जाएगा। तू ध्यान रूपी सच्चे धन को खर्च; और फिर तू स्वयं ही स्थिर होकर इस शरीर में बसा रहेगा। तेरा मन, तन और मुख सदा प्रभु के गुणों का सुमिरन करते रहेंगे और तेरे मन में सदा धैर्य बना रहेगा। अहंकार

में पड़ा जीव संतप्त बना रहता है और विकारों की फसल ही बोता है। प्रभु ने जीवों को उत्पन्न करके स्वयं को उनमें स्थित किया है और वह प्रभु अलिप्त और अपरम्पार है।। ४६ ।।

स्रिसटे भेउ न जाणै कोइ ॥ स्रिसटा करै सु निहचउ होइ ॥ संपै कउ ईसरु धिआईऐ ॥ संपै पुरबि लिखे की पाईऐ ॥ संपै कारणि चाकर चोर ॥ संपै साथि न चालै होर ॥ बिनु साचे नही दरगह मानु ॥ हरि रसु पीवै छुटै निदानि ॥५०॥

सृष्टि की रचना करने वाले सृष्टा प्रभु का रहस्य कोई नहीं जानता और वह रचनाकार जो कुछ करता है वह निश्चित रूप से होता ही है। सम्पत्ति के लिये उस प्रभु की आराधना की जाती है परन्तु यह सम्पत्ति तो उतनी ही मिलती है जितनी प्रभु ने पहले से ही भाग्य में लिखी होती है। सम्पत्ति के लिये व्यक्ति नौकरी और चोरी करता है परन्तु सम्पत्ति अंत में आगे साथ नहीं चलती। सच्चे हुए बिना प्रभु के दरबार में सम्मान नहीं मिलता और अंत में प्रभु के नाम रस को प्राप्त करके ही जीव मुक्ति प्राप्त करता है।। ५० ।।

हेरत हेरत हे सखी होइ रही हैरानु ॥ हउ हउ करती मै मुई सबदि रवै मनि गिआनु ॥ हार डोर कंकन घणे करि थाकी सीगारु ॥ मिलि प्रीतम सुखु पाइआ सगल गुणा गलि हारु ॥ नानक गुरमुखि पाईऐ हरि सिउ प्रीति पिआरु ॥ हरि बिनु किनि सुखु पाइआ देखहु मनि बीचारि ॥ हरि पड़णा हरि बुझणा हरि सिउ रखहु पिआरु ॥ हरि जपीऐ हरि धिआईऐ हरि का नामु अधारु ॥५१॥

उसको और उसके ज्ञान को खोजती हुई हे सखी मैं भटक रही हूँ। अहंकार करती हुई ही मैं मर गई हूँ परन्तु वास्तव में शब्द के माध्यम से सुमिरन करते हुए ही मन में ज्ञान उत्पन्न हुआ है। कई कंगन हार और डोरियाँ आदि का शृंगार करते हुए मैं थक गयी हूँ। अंत में अपने प्रियतम से मिलकर ही मैंने सुख प्राप्त किया है और सभी गुणों को गले में हार की भाँति धारण किया है। हे नानक, गुरमुख बनकर ही प्रभु से प्रीति और प्यार बना रहता है। मन में इस बात को विचार कर देख लो कि प्रभु के बिना भला किसने सुख प्राप्त किया है। प्रभु को पढ़ो, प्रभु को ही समझो और प्रभु से ही प्रेम बनाए रखो। प्रभु का ही सुमिरन करो, प्रभु की ही आराधना करो तथा प्रभु नाम को ही जीवन का आसरा बनाए रखो।। ५१ ।।

लेखु न मिटई हे सखी जो लिखिआ करतारि ॥ आपे कारणु जिनि कीआ करि किरपा पगु धारि ॥ करते हथि वडिआईआ बूझहु गुर बीचारि ॥ लिखिआ फेरि न सकीऐ जिउ भावी तिउ सारि ॥ नदरि तेरी सुखु पाइआ

नानक सबदु वीचारि ॥ मनमुख भूले पचि मुए उबरे गुर बीचारि ॥ जि पुरखु नदरि न आवई तिस का किआ करि कहिआ जाइ ॥ बलिहारी गुर आपणे जिनि हिरदै दिता दिखाइ ॥५२॥

हे सखी, जो भाग्यलेख कर्ता प्रभु ने लिखा है वह मिट नहीं सकता। उस प्रभु रूपी मूल कारण ने यह सब कुछ बनाया है और वह कृपा करके ही हृदय में अपने पाँव धरता है। गुरु के इस विचार को समझ लो कि उस कर्ता प्रभु के हाथ ही महिमा है। उसका लिखा मिटाया नहीं जा सकता इसलिए हे प्रभु, जैसा तुझे अच्छा लगता है तू वैसे ही जीवों की सम्भाल कर। तेरी कृपा दृष्टि से ही सुख प्राप्त हुआ है और हे नानक, तू शब्द का ही चिंतन करता रह। भूले भटके और मर खप गए मनमुख शब्द गुरु के चिंतन से ही पार उतर गये हैं। जो सर्वव्यापक प्रभु नजर नहीं आता उसका क्या कह कर बखान किया जाए। मैं उस सच्चे गुरु पर बलिहारी जाता हूँ जिसने मुझे हृदय में ही वह प्रभु दिखा दिया है।। ५२ ।।

पाधा पड़िआ आखीऐ बिदिआ बिचरै सहजि सुभाइ ॥ बिदिआ सोधै ततु लहै राम नाम लिव लाइ ॥ मनमुखु बिदिआ बिक्रदा बिखु खटे बिखु खाइ ॥ मूरखु सबदु न चीनई सूझ बूझ नह काइ ॥५३॥

पढ़ा लिखा पंडित उसे कहते हैं तो जो अपने ज्ञान और विद्या में सहज स्वाभाविक रूप से ही शान्तिपूर्वक विचरण करता रहे। अपनी विद्या को सोचता समझता हुआ और उसमें शोधन करता हुआ वास्तविकता को खोजे तथा प्रभु नाम में अपनी लौ लगाए रखे। मनमुख व्यक्ति तो विद्या बेचता है और इस प्रकार विष कमाता है और विष ही खाता रहता है। मूर्ख व्यक्तियों को शब्द की शक्ति की पहचान नहीं होती और उन्हें किसी प्रकार की भी सूझ बूझ नहीं होती।। ५३ ।।

पाधा गुरमुखि आखीऐ चाटड़िआ मति देइ ॥ नामु समालहु नामु संगरहु लाहा जग महि लेइ ॥ सची पटी सचु मनि पड़ीऐ सबदु सु सारु ॥ नानक सो पड़िआ सो पंडितु बीना जिसु राम नामु गलि हारु ॥५४॥१॥

उसी पंडित को गुरमुख कहा जाता है जो अपने शिष्यों को सुमति प्रदान करे। वह ही उन्हें बताता है कि संसार में लाभ प्राप्त करने के लिये प्रभु नाम का ही सुमिरन करो और प्रभु नाम रूपी धन ही इकट्ठा करो। मन में सच्चा होना ही वास्तव में लिखने वाली सच्ची पट्टी है। उसी पर शब्द रूपी सार तत्व लिखना चाहिये। हे नानक, वही पढ़ा लिखा पंडित और दूर दृष्टि वाला सयाना व्यक्ति होता है जिसने प्रभु नाम को गले का हार बना लिया है अर्थात् जिसका प्रेम प्रभु में लगा है।। ५४ ।। १ ।।

।। सिध गोसटि ।।

(गु. ग्रं. सा. पृ. ६३८-४६)

राग रामकली में उच्चारित की गई यह वाणी (पन्ना ६३८-६४६) गुरु नानक देव जी की रचना है जिसमें गुरु नानक देव जी ने सिद्धों और नाथों के साथ सुमेर पर्वत पर हुई चर्चा का सार सारांश दिया है। इस दार्शनिक कृति में चरपटी नाथ और लोहारीपा (लुईपाद) नामक सिद्ध गुरु जी से सृष्टि रचना, अहंकार, गुरु आदि के बारे में प्रश्न करते हैं और गुरु नानक उन्हें उत्तर देते हुए आदर्श मानव गुरमुख के लक्षण बताते हुए इन दार्शनिक प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं। यह कृति एक सार्थक संवाद का सुन्दर नमूना है जिसमें बिना किसी की अवज्ञा किए हुए अपनी अपनी बात कही गई है। इसी वाणी में गुरु नानक ने प्रभावशाली ढंग से 'शब्द' को ही गुरु माना है और शब्द की शरीर में स्थिति और शब्द ब्रह्म के साथ उसकी एकरूपता के बारे में समझा कर बताया है तथा जीवन के व्यवहार में उसकी सार्थकता को उजागर किया है।

रामकली महला १ सिध गोसटि ੴ सतिगुर प्रसादि।।

सिध सभा करि आसणि बैठे संत सभा जैकारो ॥ तिसु आगै रहरासि हमारी साचा अपर अपारो ॥ मसतकु काटि धरी तिसु आगै तनु मनु आगै देउ ॥ नानक संतु मिलै सचु पाईऐ सहज भाइ जसु लेउ ॥१॥

सिद्ध जन आसन लगाकर सभा में बैठे हैं और इस सभा में प्रभु की जय-जयकार चल रही है। हमारी तो उस प्रभु के आगे विनती है जो सच्चा एवं अपरम्पार है। मैं तो उस प्रभु के आगे ही अपना मस्तक काटकर अर्पण कर दूं और उसे ही तन मन भेंट कर दूं। हे नानक, प्रभु रूपी सन्त के मिलने से ही सत्य प्राप्त होता है और सहज भाव से ही यश मिल जाता है।। १ ।।

किआ भवीऐ सचि सूचा होइ ॥ साच सबद बिनु मुकति न कोइ ॥१॥ रहाउ ॥

(हे सिद्ध पुरुषो) क्या इधर-उधर भ्रमण करते रहने से सच्चे और पवित्र हुआ जा सकता है। वास्तव में सच्चे शब्द को अंगीकार किये बिना किसी प्रकार की भी मुक्ति नहीं मिलती।। १ ।। रहाउ ।।

कवन तुमे किआ नाउ तुमारा कउनु मारगु कउनु सुआओ ॥ साचु कहउ अरदासि हमारी हउ संत जना बलि जाओ ॥ कह बैसहु कह रहीऐ बाले कह आवहु कह जाहो ॥ नानकु बोलै सुणि बैरागी किआ तुमारा राहो ॥२॥

सिद्ध पूछते हैं कि तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है ; तुम्हारा जीवन मार्ग क्या है और आपका यहाँ आने का प्रयोजन क्या है। मैं सच्च कहता हूँ और मेरी आप लोगों के सामने वितनी है कि मैं तो शान्त पुरुषों पर ही बलिहारी जाता हूँ। योगी पूछते हैं कि हे बालक, तू कहाँ रहता हैं, कहाँ से आया है और कहाँ जा रहा है। नानक का कथन है कि योगी पूछता है, हे वैराग्यवान, तुम्हारा मत क्या हैं।। २ ।।

घटि घटि बैसि निरंतरि रहीऐ चालहि सतिगुर भाए ॥ सहजे आए हुकमि सिधाए नानक सदा रजाए ॥ आसणि बैसणि थिरु नाराइणु ऐसी गुरमति पाए ॥ गुरमुखि बूझै आपु पछाणै सचे सचि समाए ॥३॥

सच्चे गुरु की आज्ञा में चलते हुए हम घट-घट में विराजमान प्रभु की याद में लीन होकर निरन्तर शान्त बने रहते हैं। सहज स्वाभाविक रूप से ही इधर आ गये हैं और प्रभु के हुकुम के अन्तर्गत ही यहाँ से चले जाएंगे ; हे नानक, हम तो सदा ही उस प्रभु की रज़ा में रहते हैं। हमने तो ऐसी गुरु मति पायी है कि आसन पर बैठा रहने वाला वह प्रभु ही स्थिर है। गुरमुख बना व्यक्ति इस रहस्य को बूझता है, अपने आपको पहचानता है और सत्य में लीन बना रहता है।। ३ ।।

दुनीआ सागरु दुतरु कहीऐ किउ करि पाईऐ पारो ॥ चरपटु बोलै अउधू नानक देहु सचा बीचारो ॥ आपे आखै आपे समझै तिसु किआ उतरु दीजै॥ साचु कहहु तुम पारगरामी तुझु किआ बैसणु दीजै ॥४॥

(सिद्ध प्रश्न करते हैं) इस संसार को बहुत भयानक और ना तैरा जा सकने वाला सागर कहा गया हैं ; इसे कैसे पार किया जा सकता है। सिद्ध चरपट कहता है कि हे अवधूत नानक, तुम हमें इस विषय पर अपना विचार बताओ। गुरु नानक उत्तर देते हैं – जो तू कह रहा है मुझे पता है कि तू स्वयं उसे समझ भी रहा है ; ऐसे प्रश्नकर्त्ता को भला क्या उत्तर दिया जाए। मैं सच कहता हूँ कि तुम भी अपने ढंग से इसको पार कर चुके हो; तेरे मार्ग में भला मैं दोष क्यों निकालूं।। ४ ।।

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे ॥ सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे ॥ रहहि इकाँति एको मनि वसिआ आसा माहि निरासो ॥ अगमु अगोचरु देखि दिखाए नानकु ता का दासो ॥५॥

(परन्तु मेरा जीवन मार्ग यह है कि) जिस प्रकार कमल जल में बना रहकर उससे अलिप्त बना रहता है और मुर्गाबी जल में रहती हुई अपने आपको भीगने नहीं देती उसी प्रकार सुरति को शब्द में लीन करके, प्रभु नाम का बखान करते हुए अर्थात संसार में रहते हुए परन्तु संसारी ना बनकर संसार सागर को पार किया जाता है। जो व्यक्ति एकाग्र बना रहता है, जिसके मन में एक प्रभु ही बसा रहता है तथा जो आशाओं के बीच तटस्थ बना रहता है तथा जो उस अगम्य अगोचर प्रभु को स्वयं भी देखता है और दूसरों को भी अनुभव करवा देता है नानक तो उसी का दास है।। ५ ।।

सुणि सुआमी अरदासि हमारी पूछउ साचु बीचारो ॥ रोसु न कीजै उतरु दीजै किउ पाईऐ गुर दुआरो ॥ इहु मनु चलतउ सच घरि बैसै नानक नामु अधारो ॥ आपे मेलि मिलाए करता लागै साचि पिआरो ॥६॥

(सिद्धों का प्रश्न) हे स्वामी नानक, हमारी विनती सुनो क्योंकि हम तुमसे सत्य विचार और जानना चाहते हैं। आप बुरा ना मनाएं और धैर्यपूर्वक हमें उत्तर दें कि गुरु

का अर्थात् प्रभु का द्वार कैसे प्राप्त किया जाता है। नानक का उत्तर है – यह चंचल मन सत्य के घर में स्थिर हो जाता है यदि हे नानक, यह प्रभु नाम का ही आसरा ले ले। यह कर्ता प्रभु स्वयं ही मेल करवा देता है और सत्य से प्रेम बन जाता है।। ६ ।।

हाटी बाटी नीद न आवै पर घरि चितु न डुोलाई ॥ बिनु नावै मनु टेक न टिकई नानक भूख न जाई ॥ हाटु पटणु घरु गुरू दिखाइआ सहजे सचु वापारो ॥ खंडित निद्रा अलप अहारं नानक ततु बीचारो ॥८॥

हम तो शहर बाजार के रास्तों से दूर ही निराले रूप में वृक्षों और जंगलों में बसते हैं। कन्द मूल का आहार खाते हैं और पहुँचे हुए अवधूत योगी हमें ज्ञान प्रदान करते हैं। हम लोग तीर्थों पर स्नान करते हैं ; सुख रूपी फल प्राप्त करते हैं तथा हमें विषय विकारों की मैल तनिक भी नहीं छू पाती। धरती को धारण करने वाले प्रभु का पुत्र लोहारीपा (लुईपाद, लुईपा और मत्स्येन्द्र नाथ आदि इसी के नाम हैं) कहता है कि यही हमारे योग की युक्ति और जीवन का ढंग है।। ७ ।।

हाटी बाटी नीद न आवै पर घरि चितु न डुोलाई ॥ बिनु नावै मनु टेक न टिकई नानक भूख न जाई ॥ हाटु पटणु घरु गुरू दिखाइआ सहजे सचु वापारो ॥ खंडित निद्रा अलप अहारं नानक ततु बीचारो ॥८॥

हे योगी, हाट बाजार में रहते हुए भी अविद्या की नींद नहीं आनी चाहिये और पराये घरों पर अपने चित्त को नहीं ललचाना चाहिये। प्रभु-नाम के बिना मन को स्थिरता नहीं मिलेगी और हे नानक, भूख नहीं जा सकेगी। हे योगियो, मुझे तो गुरु ने मेरे हृदय में ही ये तीर्थ वाले सभी नगर दिखा दिये हैं और सहज भाव में ही बनें रहकर मुझे सत्य का व्यापार सिखा दिया है। अब मैं खण्डित निद्रा और थोड़े से आहार का सेवन करता हूँ तथा हे नानक, यही मेरा तत्व चिंतन है।। ८ ।।

दरसनु भेख करहु जोगिंद्रा मुंद्रा झोली खिंथा ॥ बारह अंतरि एकु सरेवहु खटु दरसन इक पंथा ॥ इन बिधि मनु समझाईऐ पुरखा बाहुड़ि चोट न खाईऐ ॥ नानकु बोलै गुरमुखि बूझै जोग जुगति इव पाईऐ ॥९॥

योगियों का सुझाव – हे योगी, तुम हमारे दर्शन का वेश अर्थात् मुद्रा झोली और गुदड़ी को धारण कर लो। हमारे बारह सम्प्रदायों में से और षटदर्शनों में एक योग दर्शन को तुम अंगीकार कर लो। हे भले पुरुष, इस विधि से ही मन को समझाया जाता है और फिर जन्म मरण की चोटें नहीं खानी पड़ती। (परन्तु नानक का कथन है कि) हे योगी पुरुषो, योग की वास्तविक युक्ति तो कोई गुरमुख बनकर ही बूझ सकता है।। ९ ।।

अंतरि सबदु निरंतरि मुद्रा हउमै ममता दूरि करी ॥ कामु क्रोधु अहंकारु

निवारै गुर कै सबदि सु समझ परी ॥ खिंथा झोली भरिपुरि रहिआ नानक तारै एकु हरी ॥ साचा साहिबु साची नाई परखै गुर की बात खरी ॥१०॥

मेरे अन्तर्मन में निरन्तर बसने वाला शब्द मेरी मुद्रा है जो मेरे अहंकार और ममता को दूर कर देने वाला है। यही मेरे काम, क्रोध और अहंकार का निवारक है तथा शब्द गुरु के माध्यम से ही इसकी समझ पड़ती है। प्रभु को सर्वत्र व्याप्त देखना ही मेरी गुदड़ी और झोली है और हे नानक, वह एक प्रभु ही मुझे पार उतारने वाला है। अपने सच्चे नाम तथा न्याय के कारण वह प्रभु सच्चा है और परख कर कही हुई उस परम गुरु की बात खरी ही निकलती है।। १० ।।

ऊंधउ खपरु पंच भू टोपी ॥ काँइआ कड़ासणु मनु जागोटी ॥ सतु संतोखु संजमु है नालि ॥ नानक गुरमुखि नामु समालि ॥११॥

सांसारिक विषय विकारों की तरफ से उल्टा मेरा मन मेरा खप्पर है और पाँचों तत्वों के दैवी गुण ग्रहण करना मेरी टोपी है। शरीर का जागरूक बने रहना ही मेरी कुशा का आसन है और यम को वश में रखना मेरी लंगोटी है। इनके अतिरिक्त सत्य सन्तोष और संयम मेरे साथी हैं और हे नानक, गुरमुख बनकर मैं प्रभु नाम को मन में सम्भाले रहता हूँ।। ११ ।।

कवनु सु गुपता कवनु सु मुकता ॥ कवनु सु अंतरि बाहरि जुगता ॥ कवनु सु आवै कवनु सु जाइ ॥ कवनु सु त्रिभवणि रहिआ समाइ ॥१२॥

(प्रश्न) गुप्त कौन है और मुक्त कौन बना है तथा ऐसा कौन है जो अन्दर बाहर से सदैव उस प्रभु से जुड़ा रहता है। कौन यहाँ आता है और यहाँ से जाता है तथा कौन है जो तीनों लोकों में समाया रहता है।। १२ ।।

घटि घटि गुपता गुरमुखि मुकता ॥ अंतरि बाहरि सबदि सु जुगता ॥ मनमुखि बिनसै आवै जाइ ॥ नानक गुरमुखि साचि समाइ ॥१३॥

जो घट-घट में है वही प्रभु गुप्त हैं और गुरमुख व्यक्ति ही मुक्त व्यक्ति है जो अन्दर बाहर से शब्द के माध्यम से उस प्रभु से जुड़ा हुआ है। मनमुख तो आता जाता और विनष्ट होता रहता है परन्तु हे नानक, गुरमुख बना व्यक्ति ही सत्य में समाया रहता है।। १३ ।।

किउ करि बाधा सरपनि खाधा ॥ किउ करि खोइआ किउ करि लाधा ॥ किउ करि निरमलु किउ करि अंधिआरा ॥ इहु ततु बीचारै सु गुरू हमारा ॥१४॥

यह जीव क्यों कर बन्धनों में है और कैसे इसे माया रूपी सर्पिणी ने खा रखा है।

इसने अपने आप को क्यों गँवा रखा है और इसने कैसे उस प्रभु को खोजा है। यह जीव कैसे निर्मल होता है और कैसे अंधकार का रूप बन जाता है। इस तत्व का जो चिंतन कर सके वही हमारा गुरु है।। १४ ।।

दुरमति बाधा सरपनि खाधा ॥ मनमुखि खोइआ गुरमुखि लाधा ॥ सतिगुरु मिलै अंधेरा जाइ ॥ नानक हउमै मेटि समाइ ॥१५॥

(उत्तर) दुर्मति ने ही इसे बाँध रखा है और माया के झमेलों ने इसे खा डाला है। मनमुख व्यक्ति सदैव प्रभु को गँवाता ही रहता है और गुरमुख व्यक्ति उसे पा लेता है। जब सच्चा गुरु मिल जाता है तो अंधकार समाप्त हो जाता है और हे नानक, अहंकार मिटाकर यह जीव उस प्रभु में लीन हो जाता है।। १५ ।।

सुंन निरंतरि दीजै बंधु ॥ उडै न हंसा पड़ै न कंधु ॥ सहज गुफा घरु जाणै साचा ॥ नानक साचे भावै साचा ॥१६॥

स्थिरता की अवस्था का यदि निरंतर बंध लगाया जाए तो ना तो यह मन इधर-उधर उड़ता है और ना ही शरीर क्षीण होता है। अपने हृदय की सहज गुफा में ही उस सच्चे प्रभु को जाना जाए और हे नानक, उस सच्चे प्रभु को सत्य ही अच्छा लगता है।। १६ ।।

किसु कारणि ग्रिहु तजिओ उदासी ॥ किसु कारणि इहु भेखु निवासी ॥ किसु वखर के तुम वणजारे ॥ किउ करि साथु लंघावहु पारे ॥१७॥

(प्रश्न) तुमने किस कारण घर त्याग दिया है और उदासीन हो गये हो। किस कारण से तुम इस वेश को धारण करने वाले बने हो। तुम किस पदार्थ के व्यापारी हो और अपने साथियों को तुम कैसे पार उतारोगे।। १७ ।।

गुरमुखि खोजत भए उदासी ॥ दरसन कै ताई भेख निवासी ॥ साच वखर के हम वणजारे ॥ नानक गुरमुखि उतरसि पारे ॥१८॥

गुरमुखों को खोजने के लिए ही मैं उदासीन होकर उन्हें खोज रहा हूँ और उनका दर्शन करने के लिये ही मैंने यह वेश धारण किया हैं। हम तो सत्य रूपी पदार्थ के व्यापारी हैं ; और हे नानक, गुरमुख बने व्यक्ति ही अपने आप संसार सागर से पार उतर जाते हैं।। १८ ।।

कितु बिधि पुरखा जनमु वटाइआ ॥ काहे कउ तुझु इहु मनु लाइआ ॥ कितु बिधि आसा मनसा खाई ॥ कितु बिधि जोति निरंतरि पाई ॥ बिनु दंता किउ खाईऐ सारु ॥ नानक साचा करहु बीचारु ॥१९॥

हे नर श्रेष्ठ, तूने किस प्रकार अपने जीवन को इस प्रकार बदल दिया है और किस प्रकार तूने किसमें अपने मन के ध्यान को लगा रखा है। किस विधि से तुमने आशाओं

और मानसिक तृष्णाओं को खा लिया है और निरन्तर बनी रहने वाली परमात्मा की ज्योति को तुमने किस विधि से प्राप्त कर लिया है। दाँतों के बिना लोहे जैसे संसार को खाकर उसका आनन्द कैसे लिया जा सकता है। हे नानक, तुम इस तथ्य पर सच्चा विचार कहो।। १६ ।।

सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ ॥ अनहति राते इहु मनु लाइआ ॥ मनसा आसा सबदि जलाई ॥ गुरमुखि जोति निरंतरि पाई ॥ त्रै गुण मेटे खाईऐ सारु ॥ नानक तारे तारणहारु ॥२०॥

सच्चे गुरु के यहाँ जन्म लेने से अर्थात् उसके पास पहुँच जाने से मैंने आवागमन मिटा दिया है और आत्मा के अनहद संगीत में लीन होकर मैंने ये अपना मन उसी ओर लगा दिया है। शब्द के माध्यम से ही मैंने अपनी आशाएँ और तृष्णाएँ जला दी हैं तथा गुरमुख बनकर मैंने उस निरंतर बनी रहने वाली परम जोति को प्राप्त कर लिया है। तीनों गुणों को मिटा कर लोहे जैसे संसार को जीतकर खाया जा सकता है और हे नानक, वह पार उतारने वाला प्रभु ही पार उतार देता है।। २० ।।

आदि कउ कवनु बीचारु कथीअले सुंन कहा घर वासो ॥ गिआन की मुद्रा कवन कथीअले घटि घटि कवन निवासो ॥ काल का ठीगा किउ जलाईअले किउ निरभउ घरि जाईऐ ॥ सहज संतोख का आसणु जाणै किउ छेदे बैराईऐ ॥ गुर कै सबदि हउमै बिखु मारै ता निज घरि होवै वासो ॥ जिनि रचि रचिआ तिसु सबदि पछाणै नानकु ता का दासो ॥२१॥

रचना के प्रारम्भ के बारे में विचार कहो और यह बताओ कि शून्य रूप में उस प्रभु का निवास कहाँ था। ज्ञान की कौन सी मुद्रा कही जाती है और घट-घट में किसका निवास बताया जाता है। काल की ठोकर को कैसे नष्ट किया जा सकता है और किस प्रकार निर्भय प्रभु के स्थान पर पहुँचा जा सकता है। सहज और सन्तोष का ठिकाना जानकर भी जीव के अन्य शत्रुओं को कैसे मिटाया जाए। (उत्तर) शब्द-गुरु के माध्यम से अहंकार रूपी विष को मार दिया जाए तो अपने मूल स्वरूप में निवास प्राप्त हो जाता है। जिसने यह रचना रची है उसे जो शब्द के माध्यम से पहचान जाता है नानक तो उसी का दास है।। २१ ।।

कहा ते आवै कहा इहु जावै कहा इहु रहै समाई ॥ एसु सबद कउ जो अरथावै तिसु गुर तिलु न तमाई ॥ किउ ततै अविगतै पावै गुरमुखि लगै पिआरो॥ आपे सुरता आपे करता कहु नानक बीचारो ॥ हुकमे आवै हुकमे जावै हुकमे रहै समाई ॥ पूरे गुर ते साचु कमावै गति मिति सबदे पाई ॥२२॥

यह जीव कहाँ से आता है और कहाँ जाता है और आने जाने के दौरान ये कहाँ

पर समाया रहता है। इस विचार का जो अर्थ बता दे वही पूर्ण गुरु है और उसे ही तिल मात्र लोभ नहीं है। कैसे उस अव्यक्त प्रभु के तत्व को जाना जा सकता है और कैसे प्यार के माध्यम से गुरमुख बना जाता है। वह प्रभु स्वयं ही सुरति है और स्वयं ही कर्ता प्रभु है। हे नानक, उसके इस रूप का विचार करके बताओ। (उत्तर) जीव प्रभु के हुकुम में ही आता है हुकुम में ही जाता है और हुकुम में ही लीन बना रहता है। पूर्ण गुरु के माध्यम से वह सत्य का आचरण बनाता है और शब्द के माध्यम से ही उस प्रभु की अवस्था और सीमा का अनुमान प्राप्त होता है।। २२ ।।

आदि कउ बिसमादु बीचारु कथीअले सुंन निरंतरि वासु लीआ ॥ अकलपत मुद्रा गुर गिआनु बीचारीअले घटि घटि साचा सरब जीआ ॥ गुर बचनी अविगति समाईऐ ततु निरंजनु सहजि लहै ॥ नानक दूजी कार न करणी सेवै सिखु सु खोजि लहै ॥ हुकमु बिसमादु हुकमि पछाणै जीअ जुगति सचु जाणै सोई ॥ आपु मेटि निरालमु होवै अंतरि साचु जोगी कहीऐ सोई ॥२३॥

रचना के प्रारम्भ से पहले का विचार तो आश्चर्य ही आश्चर्य कहा जा सकता है जब शून्य स्वरूप अर्थात इच्छा रहित प्रभु ने अपने आप में अपना निवास बनाया हुआ था। उसकी मुद्रा किसी की कल्पना से रहित थी और वह घट-घट में सत्य स्वरूप में बसने वाला प्रभु गुरु रूपी ज्ञान के रूप में जाना जाता था। गुरु के उपदेश से ही उस अव्यक्त प्रभु में लीन हुआ जाता है और वह तत्व निरंजन स्वाभाविक ही प्राप्त होता है। हे नानक, उसे जानने के लिये कोई अन्य कर्मकाण्ड नहीं करना पड़ता और उसका सिक्ख सेवक बनकर जो उसका सुमिरन करता है वही उसे ख़ोज लेता है। वह हुकुम रूप में ही विस्माद अर्थात् आश्चर्य स्वरूप है और जो व्यक्ति हुकुम को पहचान लेता है वह जीवन के ढंग और सत्य को जान जाता है। जो अपने अहं भाव को मिटा कर अलिप्त हो जाता है तथा जिसके हृदय में सत्य होता है उसी को योगी कहा जाता है।। २३ ।।

अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुणु थीआ ॥ सतिगुर परचै परम पदु पाईऐ साचै सबदि समाइ लीआ ॥ एके कउ सचु एका जाणै हउमै दूजा दूरि कीआ ॥ सो जोगी गुर सबदु पछाणै अंतरि कमलु प्रगासु थीआ॥ जीवतु मरै ता सभु किछु सूझै अंतरि जाणै सरब दइआ ॥ नानक ता कउ मिलै वडाई आपु पछाणै सरब जीआ ॥२४॥

उस अव्यक्त प्रभु से ही निर्मलता उत्पन्न हुई और गुणों से परे रहने वाला वह प्रभु गुणों से युक्त बन गया। सच्चे गुरु से सन्तुष्टि हो जाने के बाद परमपद पाया जाता है और जीव सत्य शब्द में लीन हो जाता है। ऐसा व्यक्ति अपने अहंकार और द्वैतभाव को दूर करके केवल उस एक सत्य को ही जानता मानता है। ऐसा योगी शब्द गुरु को पहचान

पाता है और उसका हृदय कमल प्रकाशित हो उठता है। जब जीवित बने रहकर ही व्यक्ति विकारों के संदर्भ में मर जाता है तो उसे सब कुछ सुझाई देने लग जाता है तथा उसके हृदय में सभी के लिये दयाभाव जाग जाता है। हे नानक, उसी को ही बड़प्पन प्राप्त होता है जो अपने आप को सभी जीवों के रूप में पहचानता है।। २४ ।।

साचौ उपजै साचि समावै साचे सूचे एक मइआ ॥ झूठे आवहि ठवर न पावहि दूजै आवा गउणु भइआ ॥ आवा गउणु मिटै गुर सबदी आपे परखै बखसि लइआ ॥ एका बेदन दूजै बिआपी नामु रसाइणु वीसरिआ ॥ सो बूझै जिसु आपि बुझाए गुर कै सबदि सु मुकतु भइआ ॥ नानक तारे तारणहारा हउमै दूजा परहरिआ ॥२५॥

ऐसा गुरमुख व्यक्ति सत्य से ही उत्पन्न होता है सत्य में ही लीन हो जाता है तथा सत्य और पवित्रता का ही रूप हो जाता है ; अन्य झूठे व्यक्ति तो इस संसार में आते हैं परन्तु उन्हें कोई ठिकाना नहीं मिलता और द्वैतभाव में डूबे हुए वे आवागमन में ही पड़े रहते हैं। शब्द-गुरु के माध्यम से आवागमन मिटता है और वह प्रभु स्वयं ही परख कर जीवों को क्षमा करता रहता है। जब प्रभु-नाम रूपी रसायन भूल जाती है तो द्वैतभाव के प्रभाव के कारण व्यक्ति को दुख और पीड़ा प्रभावित करती है। इस रहस्य को वही बूझता है जिसे वह प्रभु स्वयं समझाता है और ऐसा व्यक्ति ही शब्द-गुरु के माध्यम से बन्धन मुक्त होता है। हे नानक, वह पार उतारने वाला प्रभु ही पार उतारता है और हमारे अहंकार और द्वैतभाव को दूर करता है।। २५ ।।

मनमुखि भूलै जम की काणि ॥ पर घरु जोहै हाणे हाणि ॥ मनमुखि भरमि भवै बेबाणि ॥ वेमारगि मूसै मंत्र मसाणि ॥ सबदु न चीनै लवै कुबाणि ॥ नानक साचि रते सुखु जाणि ॥२६॥

मनमुख व्यक्ति यम का मोहताज बना भटकता रहता है। वह पराये घर के धन और स्त्री को ताकता रहता है जोकि घाटे ही घाटे का काम है। मनमुख व्यक्ति भ्रमों में पड़ा जादू टोने के चक्कर में निर्जन स्थानों पर भी भटकता रहता है और इस प्रकार शमशान आदि में मंत्र पढ़कर कुमार्ग पर पड़ा व्यक्ति लूटा और ठगा जाता है। वह शब्द को नहीं पहचानता और बुरी बातें कहता करता रहता है। हे नानक, सुख तो सत्य में लीन होकर ही जाना जाता है।। २६ ।।

गुरमुखि साचे का भउ पावै ॥ गुरमुखि बाणी अघड़ु घड़ावै ॥ गुरमुखि निरमल हरि गुण गावै ॥ गुरमुखि पवित्रु परम पदु पावै ॥ गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै ॥ नानक गुरमुखि साचि समावै ॥२७॥

गुरमुख व्यक्ति उस सच्चे प्रभु के भय में बना रहता है और गुरु की वाणी के माध्यम से असाध्य मन को साध लेता है अर्थात् उबड़ खाबड़ मन को सुन्दर बना लेता है। गुरमुख व्यक्ति निर्मल होकर प्रभु के गुण गाता है तथा गुरमुख ही पवित्र परमपद को प्राप्त कर लेता है। गुरमुख अपने रोम-रोम के माध्यम से तन मन से उस प्रभु का सुमिरन करता है और हे नानक, गुरमुख ही सत्य में लीन बना रहता है।। २७ ।।

गुरमुखि परचै बेद बीचारी ॥ गुरमुखि परचै तरीऐ तारी ॥ गुरमुखि परचै सु सबदि गिआनी ॥ गुरमुखि परचै अंतर बिधि जानी ॥ गुरमुखि पाईऐ अलख अपारु ॥ नानक गुरमुखि मुकति दुआरु ॥२८॥

(पद ४२ तक गुरमुख व्यक्ति के लक्षण और चरित्र का वर्णन है) गुरमुख बना व्यक्ति इस प्रकार सन्तुष्ट हो जाता है जिस प्रकार अन्य लोग ज्ञान का चिंतन करते हुए सन्तुष्ट बने रहना चाहते हैं। गुरमुख के रूप में सन्तुष्ट व्यक्ति संसार सागर से तैर जाने वाला होता है। गुरमुख बनकर सन्तुष्ट हुआ व्यक्ति ही शब्द के माध्यम से ज्ञानवान होता है और गुरमुख बने सन्तुष्ट व्यक्ति ने ही आन्तरिक जीवन की विधि को जाना होता है। गुरमुख बनकर ही उस अदृष्ट अपरम्पर प्रभु को प्राप्त किया जाता है और हे नानक, वास्तव में गुरमुख होना ही मुक्ति का द्वार है।। २८ ।।

गुरमुखि अकथु कथै बीचारि ॥ गुरमुखि निबहै सपरवारि ॥ गुरमुखि जपीऐ अंतरि पिआरि ॥ गुरमुखि पाईऐ सबदि अचारि ॥ सबदि भेदि जाणै जाणाई ॥ नानक हउमै जालि समाई ॥२६॥

गुरमुख उस अकथनीय प्रभु का अपने विचारों के माध्यम से कथन करता है और गुरमुख अपने परिवार में रहता हुआ अपने धर्म को निभाए चला जाता है। गुरमुख बनकर और हृदय में प्रेम धारण करके उस प्रभु का सुमिरन किया जाए क्योंकि गुरमुख बनकर ही शब्द के अनुरूप आचरण प्राप्त किया जाता है। शब्द के रहस्य को अनुभव करके वह उसे स्वयं जानता है और दूसरों को भी बताता है। हे नानक, वह अपने अहंकार को जलाकर उस प्रभु में लीन हो जाता है।। २६ ।।

गुरमुखि धरती साचै साजी ॥ तिस महि ओपति खपति सु बाजी ॥ गुर कै सबदि रपै रंगु लाइ ॥ साचि रतउ पति सिउ घरि जाइ ॥ साच सबद बिनु पति नही पावै ॥ नानक बिनु नावै किउ साचि समावै ॥३०॥

उस सच्चे प्रभु ने इस धरती की रचना गुरमुखों के लिये ही की है और इस धरती पर जीवों का पैदा होना तथा मरना उसका एक खेल है। गुरमुख शब्द-गुरु में लीन होकर

उसी में रंगा रहता है और सत्य में समाया हुआ वह सम्मानपूर्वक अपने मूल घर में प्रवेश कर लेता है। जीव सच्चे शब्द के बिना सम्मान नहीं प्राप्त कर सकता इसलिये हे नानक, प्रभु-नाम के बिना वह सत्य में कैसे लीन हो सकता है।। ३०।।

गुरमुखि असट सिधी सभि बुधी ॥ गुरमुखि भवजलु तरीऐ सच सुधी ॥ गुरमुखि सर अपसर बिधि जाणै ॥ गुरमुखि परविरति नरविरति पछाणै ॥ गुरमुखि तारे पारि उतारे ॥ नानक गुरमुखि सबदि निसतारे ॥३१॥

गुरमुख बनकर आठों सिद्धियाँ तथा सभी प्रकार की बुद्धियाँ प्राप्त होती हैं और गुरमुख बने व्यक्ति को सत्य की समझ आ जाने से वह भव सागर से पार उतर जाता है। गुरमुख व्यक्ति ही अच्छे बुरे अवसर की और उसकी विधि को जानने वाला होता है और गुरमुख ही प्रवृत्ति (ग्रहण करना) और निवृत्ति अर्थात त्यागने का रहस्य पहचानता है। गुरमुख स्वयं पार उतर जाता है, दूसरों को भी पार उतारता है परन्तु यह सारा पार उतारा गुरमुख बना व्यक्ति शब्द के माध्यम से ही करता है।। ३१ ।।

नामे राते हउमै जाइ ॥ नामि रते सचि रहे समाइ ॥ नामि रते जोग जुगति बीचारु ॥ नामि रते पावहि मोख दुआरु ॥ नामि रते त्रिभवण सोझी होइ॥ नानक नामि रते सदा सुखु होइ ॥ ३२॥

प्रभु नाम में लीन होने से अहंकार चला जाता है और नाम में लीन व्यक्ति ही सत्य में समाया रहता है। नाम में लीन बने रहने से ही योग की युक्ति का वास्तविक चिंतन होता है और नाम में लीन होकर व्यक्ति मोक्ष के द्वार को प्राप्त करता है। नाम में लीन व्यक्ति को तीनों लोकों की सूझ प्राप्त होती है। हे नानक, नाम में लीन व्यक्ति को सदैव सुख प्राप्त होता है।। ३२ ।।

नामि रते सिध गोसटि होइ ॥ नामि रते सदा तपु होइ ॥ नामि रते सचु करणी सारु ॥ नामि रते गुण गिआन बीचारु ॥ बिनु नावै बोलै सभु वेकारु॥ नानक नामि रते तिन कउ जैकारु ॥३३॥

नाम में लीन होकर ही कोई गोष्ठी सिद्ध और सफल होती है और नाम में लीन बने रहना ही सदैव तपस्या में बने रहने के समान है। सत्य आचरण का सार तत्व नाम में ही लीन बने रहना है और गुणों तथा ज्ञान का चिंतन भी नाम लीनता ही है। प्रभु नाम से विहीन बने जो लोग भी बोलते हैं वह सब व्यर्थ है। हे नानक, जो नाम मे लीन हैं उन्हीं की जय-जयकार होती है।। ३३ ।।

पूरे गुर ते नामु पाइआ जाइ ॥ जोग जुगति सचि रहै समाइ ॥ बारह महि

जोगी भरमाए संनिआसी छिअ चारि ॥ गुर कै सबदि जो मरि जीवै सो पाए मोख दुआरु ॥ बिनु सबदै सभि दूजै लागे देखहु रिदै बीचारि ॥ नानक वडे से वडभागी जिनी सचु रखिआ उर धारि ॥३४॥

पूर्ण गुरु से ही नाम प्राप्त किया जाता है तथा सत्य में लीन बने रहना ही वास्तव में योग की युक्ति है। योगी बारह सम्प्रदायों में तथा संन्यासी दस सम्प्रदायों में बँट कर भटक रहे हैं परन्तु वास्तव में जो शब्द-गुरु में ही खुद को मिटा देते हैं वे ही मुक्ति के द्वार को प्राप्त करते हैं। इस बात को हृदय में विचारकर देख लो कि शब्द से विहीन सभी लोग द्वैतभाव में ही पड़े हैं। हे नानक, वे भाग्यशाली ही बड़े लोग हैं जिन्होंने सत्य को हृदय में धारण कर रखा है।। ३४ ।।

गुरमुखि रतनु लहै लिव लाइ ॥ गुरमुखि परखै रतनु सुभाइ ॥ गुरमुखि साची कार कमाइ ॥ गुरमुखि साचे मनु पतीआइ ॥ गुरमुखि अलखु लखाए तिसु भावै ॥ नानक गुरमुखि चोट न खावै ॥३५॥

गुरमुख नाम रत्न में ही अपनी लौ लगाये रहता है और गुरमुख स्वाभाविक रूप से ही उस नाम रूपी रत्न को पहचान जाता है। गुरमुख ही सच्चा आचरण करता है और गुरमुख का मन सत्य में ही सन्तुष्ट बना रहता है। जब उस प्रभु को अच्छा लगता है तभी वह गुरमुख बने व्यक्ति को अपने अदृष्ट रूप की झलक देता है। हे नानक, गुरमुख कभी भी काल की चोट नहीं खाता।। ३५ ।।

गुरमुखि नामु दानु इसनानु ॥ गुरमुखि लागै सहजि धिआनु ॥ गुरमुखि पावै दरगह मानु ॥ गुरमुखि भउ भंजनु प्रधानु ॥ गुरमुखि करणी कार कराए ॥ नानक गुरमुखि मेलि मिलाए ॥३६॥

गुरमुख बनकर ही प्रभु नाम, दान और वास्तवकि स्नान के गुण प्राप्त होते हैं और गुरमुख ही सहज स्वाभाविक ध्यान में लीन बना रहता है। गुरमुख व्यक्ति को ही प्रभु दरबार में सम्मान मिलता है और गुरमुख व्यक्ति ही भय का नाश करने वाला तथा प्रमुख व्यक्ति बन जाता है। गुरमुख से ही वह प्रभु करने योग्य सभी कार्य करवाता है और हे नानक, गुरमुख को ही वह मिलता है और अपने में मिला लेता है।। ३६ ।।

गुरमुखि सासत्र सिम्रिति बेद ॥ गुरमुखि पावै घटि घटि भेद ॥ गुरमुखि वैर विरोध गवावै ॥ गुरमुखि सगली गणत मिटावै ॥ गुरमुखि राम नाम रंगि राता ॥ नानक गुरमुखि खसमु पछाता ॥३७॥

गुरमुख व्यक्ति शास्त्र, स्मृतियों और वेदों के ज्ञान को जानता ही है; वह घट-घट के रहस्य को भी जान जाता है। गुरमुख सभी विरोधों और शत्रुताओं को छोड़ देता है और

गुरमुख सांसारिक लाभ हानि की गणनाओं को भी समाप्त कर देता है। गुरमुख बना व्यक्ति प्रभु नाम के रंग में लीन बना रहता है और हे नानक, गुरमुख व्यक्ति ने ही वास्तव में अपने मालिक को पहचाना होता है।। ३७ ।।

बिनु गुर भरमै आवै जाइ ॥ बिनु गुर घाल न पवई थाइ ॥ बिनु गुर मनूआ अति डोलाइ ॥ बिनु गुर त्रिपति नही बिखु खाइ ॥ बिनु गुर बिसीअरु डसै मरि वाट ॥ नानक गुर बिनु घाटे घाट ॥३८॥

गुरु से विहीन व्यक्ति भ्रमों मे पड़ा भटकता रहता है और गुरु के बिना की हुई मेहनत सफल नहीं होती। गुरु विहीन व्यक्ति का मन अत्यन्त डोलता ही रहता है ; गुरु के बिना सन्तुष्टि नहीं होती। गुरु के बिना माया रूपी सर्प डंसता रहता है और व्यक्ति जीवन का सफर करता हुआ आधे रास्ते में ही मर जाता है अर्थात माया उसके मन को मार देती है। हे नानक, गुरु बिना तो घाटा ही घाटा है।। ३८।।

जिसु गुरु मिलै तिसु पारि उतारै ॥ अवगण मेटै गुणि निसतारै ॥ मुकति महा सुख गुर सबदु बीचारि ॥ गुरमुखि कदे न आवै हारि ॥ तनु हटड़ी इहु मनु वणजारा ॥ नानक सहजे सचु वापारा ॥३९॥

जिसे गुरु मिल जाता है वह उसे पार उतार देता है; अवगुणों को मिटा देता है और गुणों के माध्यम से उसका उद्धार कर देता है। शब्द-गुरु के चिंतन से ही महान सुख और मुक्ति प्राप्त होती है तथा गुरमुख कभी भी किसी भी कार्य क्षेत्र में हारता नहीं। यह शरीर एक दुकान है और मन इसमें व्यापारी है। हे नानक, इसी में ही सहज भाव से सत्य का व्यापार किया जाता है।। ३९ ।।

गुरमुखि बाँधिओ सेतु बिधातै ॥ लंका लूटी दैत संतापै ॥ रामचंदि मारिओ अहि रावणु ॥ भेदु बभीखण गुरमुखि परचाइणु ॥ गुरमुखि साइरि पाहण तारे ॥ गुरमुखि कोटि तेतीस उधारे ॥४०॥

विधाता प्रभु ने गुरमुख के लिये अपने लक्ष्य तक पहुँचने के वास्ते नाम रूपी पुल बना दिया है। इसी नाम रूपी पुल के माध्यम से ही लंका लूटी गई और काम, क्रोध आदि के दैत्य दुखी हो गए। गुरमुख रूपी राम चन्द्र ने अहंकार रूपी रावण को मारा और विभीषण का भेद को बताना वास्तव में उस का गुरमुख बनकर ज्ञानवान होना ही है। पत्थर बने जीव भी गुरमुख बनकर संसार सागर से पार उतर जाते हैं और गुरमुख बने हुए करोड़ों व्यक्तियों का उद्धार हो चुका है।। ४० ।।

गुरमुखि चूकै आवण जाणु ॥ गुरमुखि दरगह पावै माणु ॥ गुरमुखि खोटे खरे पछाणु ॥ गुरमुखि लागै सहजि धिआनु ॥ गुरमुखि दरगह सिफति समाइ ॥ नानक गुरमुखि बंधु न पाइ ॥४१॥

गुरमुख का आवागमन चुक जाता है और गुरमुख़ को प्रभु के दरबार में सम्मान प्राप्त होता है। गुरमुख को ही खरे-खोटे की पहचान होती है और गुरमुख का ध्यान उस प्रभु में सहज स्वाभाविक रूप से ही लगा रहता है। गुणानुवाद के माध्यम से गुरमुख व्यक्ति प्रभु दरबार में स्थिर बना रहता है और हे नानक, गुरमुख व्यक्ति के सामने कोई रुकावट नहीं आती।। ४१ ।।

गुरमुखि नामु निरंजन पाए ॥ गुरमुखि हउमै सबदि जलाए ॥ गुरमुखि साचे के गुण गाए ॥ गुरमुखि साचै रहै समाए ॥ गुरमुखि साचि नामि पति ऊतम होइ ॥ नानक गुरमुखि सगल भवण की सोझी होइ ॥४२॥

गुरमुख व्यक्ति ही निरंजन प्रभु का नाम प्राप्त करता हैं और गुरमुख ही शब्द के माध्यम से अहंकार को जलाकर नष्ट कर देता है। गुरमुख ही सच्चे गुरमुख के गुण गाता है और गुरमुख ही सदा सत्य में लीन बना रहता है। सच्चे नाम के माध्यम से गुरमुख का सम्मान सबसे ऊँचा होता है और हे नानक, गुरमुख़ व्यक्ति को ही सभी भुवनों की सूझ प्राप्त हो जाती है।। ४२ ।।

कवण मूलु कवण मति वेला ॥ तेरा कवणु गुरू जिस का तू चेला ॥ कवण कथा ले रहहु निराले ॥ बोलै नानकु सुणहु तुम बाले ॥ एसु कथा का देइ बीचारु ॥ भवजलु सबदि लंघावणहारु ॥४३॥

(प्रश्न) इस जीवन का मूल अर्थात आरम्भ कहाँ है और यह समय किसकी शिक्षा लेने का है। तेरा गुरु कौन है जिसका तू चेला है। किन विचारों को अपनाकर तुम अलिप्त बने रहते हो। हे बालक नानक, तुम सुनो और इस बात को हमें बताओ। शब्द को ही संसार सागर से पार करने वाला जो तुमने बताया है इस तथ्य का विचार भी हमें बताओ।। ४३ ।।

पवन अरंभु सतिगुर मति वेला ॥ सबदु गुरू सुरति धुनि चेला ॥ अकथ कथा ले रहउ निराला ॥ नानक जुगि जुगि गुर गोपाला ॥ एकु सबदु जितु कथा वीचारी ॥ गुरमुखि हउमै अगनि निवारी ॥४४॥

(उत्तर) प्राण रूप में वायु ही इस सारे अस्तित्व का मूल आधार है और यह समय सच्चे गुरु की शिक्षा ग्रहण करने का है। मेरा सच्चा गुरु शब्द है और शब्द में सुरति का लगातार लीन बने रहना ही उसका चेला होना है। उस अकथनीय प्रभु की सत्य कथा को हृदय में लेकर मैं अलिप्त अवस्था में बना रहता हूँ और हे नानक, युगों-युगान्तरों में धरती का पालन कर्ता वह प्रभु ही गुरु है। केवल शब्द ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से प्रभु की कथा का चिंतन होता है और व्यक्ति गुरमुख बनकर अहंकार की अग्नि का नाश कर देता है।। ४४ ।।

मैण के दंत किउ खाईऐ सारु ॥ जितु गरबु जाइ सु कवणु आहारु ॥ हिवै का घरु मंदरु अगनि पिराहनु ॥ कवन गुफा जितु रहै अवाहनु ॥ इत उत किस कउ जाणि समावै ॥ कवन धिआनु मनु मनहि समावै ॥४५॥

(प्रश्न) मोम के दाँतों से लोहा कैसे खाया जा सकता है और वह कौन सा आहार है जिससे अभिमान समाप्त हो जाता है। यह शरीर रूपी घर तो बर्फ का घर है और इसका लिबास अग्नि का है अर्थात् तामसिक मन इस नाशवान शरीर में रहता है और जैसे बर्फ को अग्नि गला देती है वैसे ही इस शरीर रूपी घर के साथ यह मन व्यवहार करता है। वह कौन सी गुफा है जहां मन स्थिर बना रह सकता है। इधर-उधर वह किसको जानता हुआ उसमें लीन बना रहे और ऐसा कौन सा ध्यान है जिससे यह मन अपने अंदर ही सिमटा रहे।। ४५ ।।

हउ हउ मै मै विचहु खोवै ॥ दूजा मेटै एको होवै ॥ जगु करड़ा मनमुखु गावारु ॥ सबदु कमाईऐ खाईऐ सारु ॥ अंतरि बाहरि एको जाणै ॥ नानक अगनि मरै सतिगुर कै भाणै ॥४६॥

(उत्तर) अहंकार और मैं मैं की भावना को अन्तर्मन से दूर करके व्यक्ति जब द्वैतभाव मिटा देता है वह सबके साथ एक रूप हो जाता है। यह संसार तो मनमुख और गँवार व्यक्ति के लिये ही कड़ा है ; जब शब्द के अनुरूप आचरण बनाया जाता है तो संसार रूपी लोहा स्वाभाविक रूप से ही खा लिया जाता है। हृदय में और बाहर सब ओर जब एक प्रभु को ही जाना जाता है तो हे नानक, सच्चे गुरु की रज़ा में तृष्णाओं की अग्नि मर जाती है।। ४६ ।।

सच भै राता गरबु निवारै ॥ एको जाता सबदु वीचारै ॥ सबदु वसै सचु अंतरि हीआ ॥ तनु मनु सीतलु रंगि रंगीआ ॥ कामु क्रोधु बिखु अगनि निवारे ॥ नानक नदरी नदरि पिआरे ॥४७॥

सत्य प्रभु के भय में लीन होकर अहंकार का निवारण किया जाता है और शब्द के चिंतन से ही उस एक प्रभु को जाना जाता है। सत्य शब्द जब अन्तर्मन में बस जाता है तो तन मन शीतल होकर उस प्रभु के रंग में रंगा जाता है। यह शब्द काम, क्रोध और विषय-विकारों की अग्नि का निवारण करता है और हे नानक, ऐसा सब कुछ उस प्रभु की कृपादृष्टि से ही होता है।। ४७ ।।

कवन मुखि चंदु हिवै घरु छाइआ ॥ कवन मुखि सूरजु तपै तपाइआ ॥ कवन मुखि कालु जोहत नित रहै ॥ कवन बुधि गुरमुखि पति रहै ॥ कवनु जोधु जो कालु संघारै ॥ बोलै बाणी नानकु बीचारै ॥४८॥

(प्रश्न) किस प्रकार मन रूपी चन्द्रमा ठंडक का घर और गुफा की तरह अंधकार वाला बना रहता है और किस प्रकार ज्ञान का सूर्य निकल कर प्रचंड होता है। किस प्रकार काल की दृष्टि से बचा जाता है और किस प्रकार बुद्धि से गुरमुख बना जाता है और सम्मान प्राप्त होता है। ऐसा कौन सा शूरवीर है जो काल को मार डालता है। नानक इन प्रश्नों का विचारपूर्वक अपनी वाणी के माध्यम से उत्तर दो।। ४८ ।।

सबदु भाखत ससि जोति अपारा ॥ ससि घरि सूरु वसै मिटै अंधिआरा ॥ सुखु दुखु सम करि नामु अधारा ॥ आपे पारि उतारणहारा ॥ गुर परचै मनु साचि समाइ ॥ प्रणवति नानकु कालु न खाइ ॥४६॥

(उत्तर) शब्द का उच्चारण करते ही चन्द्रमा रूपी मन की क्षीण ज्योति अपार ज्योति में बदल जाती है और जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होकर अपना अंधेरा दूर करता है उसी प्रकार मन रूपी चन्द्रमा का अंधकार दूर हो जाता है। हे योगियो, प्रभु नाम का आसरा लेकर सुख और दुख को समान भाव से जानो ; वह प्रभु स्वयं ही सब को पार उतारने वाला है। गुरु से सन्तुष्टि प्राप्त करके मन सत्य में लीन हो जाता है और नानक विनती करता है कि इस प्रकार काल व्यक्ति को खाता नहीं है।। ४६ ।।

नाम ततु सभ ही सिरि जापै ॥ बिनु नावै दुखु कालु संतापै ॥ ततो ततु मिलै मनु मानै ॥ दूजा जाइ इकतु घरि आनै ॥ बोलै पवना गगनु गरजै ॥ नानक निहचलु मिलणु सहजै ॥५०॥

प्रभु का नाम तत्व ही सर्वशिरोमणि है और प्रभु-नाम से विहीन लोगों को काल का दुख और संताप भोगना पड़ता है। जब जीव तत्व परमात्म तत्व से मिल जाता है तो मन सन्तुष्ट हो जाता है ; फिर द्वैतभाव चला जाता है और केवल एक प्रभु नाम के घर में ही मन एकाग्र हो जाता है। अब जीवन की लहर चलने लगती है और गगन का दशम द्वार गरजने लगता है अर्थात् प्रभु मिलाप की अवस्था और अधिक बलवान हो जाती है। हे नानक, मन स्थिर हो जाता है और स्वाभाविक रूप से ही इसका मेल प्रभु से हो जाता है।। ५० ।।

अंतरि सुंनं बाहरि सुंनं त्रिभवण सुंन मसुंनं ॥ चउथे सुंनै जो नरु जाणै ता कउ पापु न पुंनं ॥ घटि घटि सुंन का जाणै भेउ ॥ आदि पुरखु निरंजन देउ ॥ जो जनु नाम निरंजन राता ॥ नानक सोई पुरखु बिधाता ॥५१॥

जीव के अन्दर भी शून्य रूप प्रभु है बाहर भी शून्य रूप प्रभु है और तीनों लोकों में शून्य और स्थिर अवस्था में वह व्याप्त है। अन्दर बाहर और तीनों लोकों के शून्य से उपर उठकर जो चौथे पद को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात चौथे सर्वातिशायी शून्य को जान

जाते है उनको पाप और पुण्य नहीं लगता। जो घट-घट में बसते हुए शून्य का रहस्य जान जाता है वही स्वयं आदि पुरुष प्रभु निरंजन का रूप हो जाता है। जो व्यक्ति उस अलिप्त प्रभु के नाम में लीन बना रहता है। हे नानक, वही विधाता प्रभु का रूप हो जाता है।। ५१ ।।

सुंनो सुंनु कहै सभु कोई ॥ अनहत सुंनु कहा ते होई ॥ अनहत सुंनि रते से कैसे ॥ जिस ते उपजे तिस ही जैसे ॥ ओइ जनमि न मरहि न आवहि जाहि ॥ नानक गुरमुखि मनु समझाहि ॥५२॥

प्रत्येक व्यक्ति प्रभु की शून्य अवस्था की बात तो करता है, परन्तु सदैव स्थिर शून्य अवस्था भला कैसे प्राप्त हो सकती है। जो अनहद शून्य में लीन हो जाते हैं वे कैसे होते हैं। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि वे जिससे उत्पन्न होते हैं उसके जैसे ही बन जाते हैं; वे न जन्म लेते हैं ना मरते हैं और ना आते जाते हैं। हे नानक, ऐसे गुरमुख व्यक्ति मन को समझा लेते हैं।। ५२ ।।

नउ सर सुभर दसवै पूरे ॥ तह अनहत सुंन वजावहि तूरे ॥ साचै राचे देखि हजूरे ॥ घटि घटि साचु रहिआ भरपूरे ॥ गुपती बाणी परगटु होइ ॥ नानक परखि लए सचु सोइ ॥५३॥

जब शरीर के नौ गोलकों को भर कर दसवें द्वार रूपी सरोवर में इनके बहाव को डाल दिया जाता है तो गुरमुख व्यक्ति एक रस शून्य अवस्था के वाद्य बजाते हैं अर्थात अब उनके अन्दर और संकल्प विकल्प नहीं उठते। इस अवस्था के लोग निरन्तर बने रहने वाले प्रभु को अपने आस-पास ही देखकर उसी में टिके रहते हैं। उन्हें अब वह सच्चा प्रभु घट-घट में व्याप्त दिखाई देता है। इस प्रकार जिसके अन्दर दैवी जीवन की अप्रकट लय प्रकट हो जाती है, हे नानक, ऐसे जीव उस सच्चे प्रभु के मूल्य और महानता को जान जाते हैं।। ५३ ।।

सहज भाइ मिलीऐ सुखु होवै ॥ गुरमुखि जागै नीद न सोवै ॥ सुंन सबदु अपरंपरि धारै ॥ कहते मुकतु सबदि निसतारै ॥ गुर की दीखिआ से सचि राते ॥ नानक आपु गवाइ मिलण नही भ्राते ॥५४॥

स्वाभाविक रूप से ही प्रभु से मिलाप होने पर सुख प्राप्त होता है और गुरमुख व्यक्ति अज्ञान की निद्रा में ना सोकर सदैव सावधान बना रहता है। शून्य शब्द अर्थात अनहद नाद उसे अपरम्पर प्रभु में स्थित किए रहते हैं। वह प्रभु नाम का उच्चारण करता हुआ मुक्त हो जाता है और शब्द के माध्यम से पार उतर जाता है। जो सत्य के माध्यम से गुरु की शिक्षा में लीन हो जाते हैं हे नानक, वे अहंकार भाव गँवा कर प्रभु से मिलते हैं और अब उन्हें कोई भी भ्रान्ति नहीं रहती।। ५४ ।।

कुबुधि चवावै सो कितु ठाइ ॥ किउ ततु न बूझै चोटा खाइ ॥ जम दरि बाधे कोइ न राखै ॥ बिनु सबदै नाही पति साखै ॥ किउ करि बूझै पावै पारु ॥ नानक मनमुखि न बुझै गवारु ॥५५॥

(प्रश्न) जो कुबुद्धि के बोल बोलता है उसका ठिकाना कहाँ होगा। यह जीव क्यों सार तत्व को नहीं बूझता और चोटें खाता रहता है। यम के द्वार पर इस बँधे हुए की कोई भी रक्षा नहीं करता और वास्तव में शब्द से विहीन बने हुए इसकी ना तो कोई साख होती है ना कोई सम्मान होता है। यह कैसे इस रहस्य को जाने और पार हो जाए ; हे नानक, मनमुख बना व्यक्ति गँवार बना रहकर इस बात को नहीं जानता।। ५५ ।।

कुबुधि मिटै गुर सबदु बीचारि ॥ सतिगुरु भेटै मोख दुआर ॥ ततु न चीनै मनमुखु जलि जाइ ॥ दुरमति विछुड़ि चोटा खाइ ॥ मानै हुकमु सभे गुण गिआन ॥ नानक दरगह पावै मानु ॥५६॥

शब्द-गुरु के चिंतन के फलस्वरूप ही दुर्बुधि मिटती है और सच्चे गुरु से भेंट होने पर ही मोक्ष का द्वार दिखाई देता है। मनमुख व्यक्ति तत्व को नहीं पहचानता और अंततः मर खप जाता है। दुर्मति में वह प्रभु से बिछुड़कर चोटें खाता रहता है। यदि वह प्रभु के हुकुम को मानता रहे तो सारे गुण और ज्ञान उसके पास रहते हैं और हे नानक, वह प्रभु के दरबार में सम्मान प्राप्त करता है।। ५६ ।।

साचु वखरु धनु पलै होइ ॥ आपि तरै तारे भी सोइ ॥ सहजि रता बूझै पति होइ ॥ ता की कीमति करै न कोइ ॥ जह देखा तह रहिआ समाइ ॥ नानक पारि परै सच भाइ ॥५७॥

सत्य रूपी पदार्थ का धन उसके पल्ले में होता है और वह स्वयं तो तैरता ही है अन्यों को भी पार उतार देता है। पूर्ण ब्रह्म में लीन होकर वह उसे बूझ लेता है और उसका सम्मान होता है। उसके मूल्य को फिर आँका नहीं जाता। अब वह जिधर देखता है उध ार उसको सबमें समाया प्रभु दिखता है और हे नानक, सत्य को चाहता हुआ वह इस संसार सागर से पार उतर जाता है।। ५७ ।।

सु सबद का कहा वासु कथीअले जितु तरीऐ भवजलु संसारो ॥ त्रै सत अंगुल वाई कहीऐ तिसु कहु कवनु अधारो ॥ बोलै खेलै असथिरु होवै किउ करि अलखु लखाए ॥ सुणि सुआमी सचु नानकु प्रणवै अपणे मन समझाए॥ गुरमुखि सबदे सचि लिव लागै करि नदरी मेलि मिलाए ॥ आपे दाना आपे बीना पूरै भागि समाए ॥५८॥

(प्रश्न) उस सुन्दर शब्द का निवास कहाँ पर कहा जाता है जिसके माध्यम से संसार

सागर को तैर लिया जाता है। दस अंगुल तक बाहर आने वाली प्राण वायु का भला अन्दर आधार क्या है। जो जीव सत्ता अन्दर बोलती खेलती है वह कैसे स्थिर बनी रहे और उस अदृष्ट प्रभु को समझ ले। नानक कहता है कि हे स्वामी, मैंने इस प्रकार अपने मन को समझाया है। गुरमुख बनकर शब्द के माध्यम से सत्य में लौ लगती है और जब वह कृपा दृष्टि करता है तो उससे मेल मिलाप हो जाता है। वह प्रभु स्वयं ही जानने वाला और सब कुछ देखने वाला है। भरपूर भाग्य के फलस्वरूप ही उसमें लीन हुआ जाता है।। ५८ ।।

सु सबद कउ निरंतरि वासु अलखं जह देखा तह सोई ॥ पवन का वासा सुंन निवासा अकल कला धर सोई ॥ नदरि करे सबदु घट महि वसै विचहु भरमु गवाए ॥ तनु मनु निरमलु निरमल बाणी नामो मंनि वसाए ॥ सबदि गुरू भवसागरु तरीऐ इत उत एको जाणै ॥ चिहनु वरनु नही छाइआ माइआ नानक सबदु पछाणै ॥५६॥

उस सुन्दर शब्द का निवास तो निरन्तर अन्दर बाहर बना है और जिधर भी हम देखते हैं उधर वह ही दिखाई देता है। जिस प्रकार पवन का वास है उसी प्रकार शून्य का भी निवास है अर्थात प्रभु पवन की तरह सर्वव्यापक है। जैसे पवन सर्वव्यापक है प्रभु भी अपनी कलाओं समेत सर्वव्यापक है परन्तु फिर भी उसमें किसी कला की बनावट नजर नहीं आती। प्रभु कृपा दृष्टि करे तो शब्द हृदय में आ बसता है और अन्तर्मन से भ्रम नष्ट हो जाता है। वाणी, तन और मन निर्मल हो जाते हैं और नाम मन में आ बसता है। शब्द-गुरु को यहाँ वहाँ एक ही रूप में जानकर संसार सागर को पार किया जाता है और उस शब्द-गुरु रूप प्रभु को कोई भी वर्ण, चिन्ह, छाया, माया इत्यादि नहीं है तथा हे नानक, शब्द को पहचानना ही वास्तव में उसको पहचानना है।। ५६ ।।

त्रै सत अंगुल वाई अउधू सुंन सचु आहारो ॥ गुरमुखि बोलै ततु बिरोलै चीनै अलख अपारो ॥ त्रै गुण मेटै सबदु वसाए ता मनि चूकै अहंकारो ॥ अंतरि बाहरि एको जाणै ता हरि नामि लगै पिआरो ॥ सुखमना इड़ा पिंगुला बूझै जा आपे अलखु लखाए ॥ नानक तिहु ते ऊपरि साचा सतिगुर सबदि समाए ॥६०॥

हे योगी, दस अंगुल बाहर आने वाले श्वासों के माध्यम से प्रभु नाम का जाप करना और सत्य बोलना यही प्राणों का आसरा है। गुरमुख तत्व का मंथन करता है और उस अदृष्ट अपार प्रभु को पहचान लेता है। शब्द को मन में बसाकर जब वह तीनों गुणों को मिटा देता है तो मन का अहंकार भी समाप्त हो जाता है। जब अन्दर बाहर उस एक प्रभु को ही जाना जाता है तो उस प्रभु नाम में प्रेम लग जाता है। जब प्रभु अपने आपको दिखाता है तो जीव उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है जो इड़ा पिंगला, सुषुम्ना में श्वास के अभ्यास

के साथ प्राप्त होता है। हे नानक, इन तीनों नाड़ियों की साधनाओं से उपर सच्चा गुरु परमात्मा है जिसमें शब्द के माध्यम से लीन हुआ जाता है।। ६० ।।

मन का जीउ पवनु कथीअले पवनु कहा रसु खाई ॥ गिआन की मुद्रा कवन अउधू सिध की कवन कमाई ॥ बिनु सबदै रसु न आवै अउधू हउमै पिआस न जाई ॥ सबदि रते अंम्रित रसु पाइआ साचे रहे अघाई ॥ कवन बुधि जितु असथिरु रहीऐ कितु भोजनि त्रिपतासै ॥ नानक दुखु सुखु सम करि जापै सतिगुर ते कालु न ग्रासै ॥६१॥

मन का प्राण पवन को कहा जाता है परन्तु पवन को रसपूर्ण आहार कहाँ से मिलता है। हे अवधूत, ज्ञान की मुद्रा अर्थात मर्यादा अर्थात साधन कौन सा है और सिद्ध व्यक्ति की वास्तविक कमायी क्या है। शब्द के बिना हे योगी, आनन्द नहीं आता और अहंकार में बने रहकर प्यास नहीं बुझती। शब्द में लीन बने रहने से ही अमृत रस प्राप्त होता है और सत्य में बने रहकर ही तृप्ति बनी रहती है। वह कौन सी बुद्धि है जिससे स्थिर बना रहा जाता है और कौन से भोजन से वास्तविक तृप्ति प्राप्त होती है। हे नानक, जब सुख दुख समान रूप से लगता है तो सच्चे गुरु के माध्यम से मन स्थिर हो जाता है और काल जीव को खाता नहीं।। ६१ ।।

रंगि न राता रसि नही माता ॥ बिनु गुर सबदै जलि बलि ताता ॥ बिंदु न राखिआ सबदु न भाखिआ ॥ पवनु न साधिआ सचु न अराधिआ ॥ अकथ कथा ले सम करि रहै ॥ तउ नानक आतम राम कउ लहै ॥६२॥

जिसका हरि रंग में मन नहीं लगा और ना ही वह हरि रस में लीन हुआ है वह शब्द गुरु के बिना जलता हुआ संतप्त बना रहता है। उसने शब्द का गायन नहीं किया इसलिये यह मान लो कि उसने शरीरिक संयम भी नहीं अपनाया। सत्य की उसने आराध ना नहीं की इसलिये उसने अपना प्राणायाम भी नहीं किया है। यदि वह उस प्रभु की अकथनीय कथा को कहता हुआ सुख दुख में समान भाव से रहता है तो हे नानक, वही वास्तव में अपनी आत्मा में प्रभु को खोज लेता है।। ६२ ।।

गुर परसादी रंगे राता ॥ अंम्रितु पीआ साचे माता ॥ गुर वीचारी अगनि निवारी ॥ अपिउ पीओ आतम सुखु धारी ॥ सचु अराधिआ गुरमुखि तरु तारी ॥ नानक बूझै को वीचारी ॥६३॥

गुरु की कृपा से वह प्रभु के रंग में लीन होता है और अमृत पीकर सत्य में मस्त हो जाता है। गुरु का चिंतन करता है कि और उसकी आन्तरिक अग्नि दूर हो जाती है; वह अमृत पान करता है और आत्म सुख को धारण किये रहता है। गुरमुख बनकर उसने

सत्य की आराधना की होती है और वह संसार सागर से पार हो जाता है। हे नानक, इस रहस्य को बिरला विचारवान ही समझ पाता है।। ६३ ।।

इहु मनु मैगलु कहा बसीअले कहा बसै इहु पवना ॥ कहा बसै सु सबदु अउधू ता कउ चूकै मन का भवना ॥ नदरि करे ता सतिगुरु मेले ता निज घरि वासा इहु मनु पाए ॥ आपै आपु खाइ ता निरमलु होवै धावतु वरजि रहाए ॥ किउ मूलु पछाणै आतमु जाणै किउ ससि घरि सूरु समावै ॥ गुरमुखि हउमै विचहु खोवै तउ नानक सहजि समावै ॥६४॥

(प्रश्न) यह हाथी रूपी मन कहाँ बसता है और यह श्वास रूपी पवन कहाँ निवास करती है। हे अवधूत (नानक), यह शब्द कहाँ बसता है जिसके माध्यम से मन की भटकन समाप्त हो जाती है। (उत्तर) यदि प्रभु कृपा दृष्टि करे तो सच्चे गुरु से मिला देता है और यह मन अपने मूल (ज्योति) स्वरूप में स्थित हो जाता है। जब यह मन स्वयं ही अहंकार को खा लेता है तो वह निर्मल हो जाता है अर्थात इसका भागना दौड़ना रुक जाता है। (प्रश्न) यह अपने मूल स्वभाव को और आत्मतत्व को किस तरह जाने और पहचाने ; किस प्रकार ठंडे और जड़ चन्द्रमा रूपी अन्तःकरण में सूर्य रूपी उर्जा का प्रवेश हो। (उत्तर) हे नानक, जब यह जीव गुरमुख बनकर अन्तर्मन से अहंकार खो देता है तो यह अपने सहज स्वभाव में लीन हो जाता है।। ६४ ।।

इहु मनु निहचलु हिरदै वसीअले गुरमुखि मूलु पछाणि रहै ॥ नाभि पवनु घरि आसणि बैसै गुरमुखि खोजत ततु लहै ॥ सु सबदु निरंतरि निज घरि आछै त्रिभवण जोति सु सबदि लहै ॥ खावै दूख भूख साचे की साचे ही त्रिपतासि रहै ॥ अनहद बाणी गुरमुखि जाणी बिरलो को अरथावै ॥ नानकु आखै सचु सुभाखै सचि रपै रंगु कबहू न जावै ॥६५॥

यह मन स्थिर हृदय में निवास करता है और गुरमुख बनकर अपने मूल को पहचानता है। यह नाभि रूपी घर में श्वास अर्थात् पवन के आसन पर बैठा रहता है और गुरमुख बनकर इसके सारतत्व को खोजा और देखा जाता है। जब वह शब्द रूपी प्रभु जो निरंतर बना रहने वाला है हृदय रूपी घर में आ जाए तो तीनों लोकों में बसने वाली प्रभु की ज्योति शब्द के माध्यम से मिल जाती है। उस सच्चे प्रभु की भूख (जिज्ञासा) ही सभी दुखों को खा जाती है और सत्य में ही तृप्ति बनी रहती है। इस अनहद वाणी (शब्द) को गुरमुख बनकर ही जाना जाता है और कोई बिरला ही उसके अर्थ को समझता है। नानक कहता है और सत्य कहता है कि यदि सत्य में मन को रंगा जाए तो यह रंग कभी भी नहीं छूटता।। ६५ ।।

जा इहु हिरदा देह न होती तउ मनु कैठै रहता ॥ नाभि कमल असथंभु न

होतो ता पवनु कवन घरि सहता ॥ रूपु न होतो रेख न काई ता सबदि कहा लिव लाई ॥ रकतु बिंदु की मड़ी न होती मिति कीमति नही पाई ॥ वरनु भेखु असरूपु न जापी किउ करि जापसि साचा ॥ नानक नामि रते बैरागी इब तब साचो साचा ॥६६॥

(प्रश्न) यदि यह हृदय और शरीर ना होता तो फिर भला यह मन कहाँ रहता। यदि नाभि कमल (मूलाधार) का स्तम्भ ना होता तो ये पवन रूपी श्वास किस स्थान में स्थित बने रहते। जब कोई भी रूप और आकार नहीं था तो लौ लगाने वाला यह शब्द कहाँ निवास करता। यदि रक्त और बिन्दु से बना यह शरीर ही नहीं होता तो फिर शब्द रूपी प्रभु की सीमा और कीमत कैसे जानी जाती। जब कोई वर्ण, वेश और स्वरूप ही नहीं था तो सच्चे प्रभु का जाप अथवा सुमिरन कैसे किया जाता। (उत्तर) हे नानक, उस प्रभु के नाम में लीन अर्थात उसके गुणों को प्रेम करने वाले के लिये वह प्रभु हर समय हर स्थान पर सत्य के रूप में ही दिखाई देता रहता है।। ६६ ।।

हिरदा देह न होती अउधू तउ मनु सुंनि रहै बैरागी ॥ नाभि कमलु असथंभु न होतो ता निज घरि बसतउ पवनु अनरागी ॥ रूपु न रेखिआ जाति न होती तउ अकुलीणि रहतउ सबदु सु सारु ॥ गउनु गगनु जब तबहि न होतउ त्रिभवण जोति आपे निरंकारु ॥ वरनु भेखु असरूपु सु एको एको सबदु विडाणी ॥ साच बिना सूचा को नाही नानक अकथ कहाणी ॥६७॥

(उत्तर की और व्याख्या) यदि यह हृदय और शरीर ना होता तो हे अवधूत योगी, यह मन वैराग्यवान होकर परमशून्य, निर्गुण परब्रह्म में ही लीन बना रहता। यदि नाभि कमल का आधार भी ना होता तो ये श्वास रूपी पवन अपने मूल स्वरूप में ही लीन बनी रहती। जब कोई रूप रेखा जाति प्रजाति ना होती तो तत्व रूप शब्द तब उस कुल रहित प्रभु में ही स्थित बना रहता। जब आवागमन, आकाश आदि कुछ भी ना होता तो तीनों लोकों में वह निराकार प्रभु ज्योति स्वरूप में ही फैला रहता। वर्णो, वेशों और रूपों से परे वह एक ही प्रभु आश्चर्यपूर्ण शब्द के रूप में ही है। हे नानक, उस सत्य शब्द ब्रह्म को जाने बिना कोई भी पवित्र और सच्चा नहीं हो सकता तथा यह कथा वार्ता भी वास्तव में अकथनीय है।। ६७ ।।

कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा कितु कितु दुखि बिनसि जाई ॥ हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई ॥ गुरमुखि होवै सु गिआनु ततु बीचारै हउमै सबदि जलाए ॥ तनु मनु निरमलु निरमल बाणी साचै रहै समाए ॥ नामे नामि रहै बैरागी साचु रखिआ उरि धारे ॥ नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवै देखहु रिदै बीचारे ॥६८॥

(प्रश्न) हे बलशाली नानक, अब यह बताओ कि किस-किस विधि से यह संसार उत्पन्न होता है और किस किस दुख के कारण यह नष्ट होता रहता है। (उत्तर) हे बलवान योगी, यह संसार घोर अहंकार में ही उत्पन्न होता है और प्रभु-नाम भूल जाने से ही यह दुख पाता और विनष्ट हो जाता है। यदि व्यक्ति गुरमुख हो जाए तो वह ज्ञान तत्व का चिंतन करता है और शब्द के माध्यम से अहंकार को जला देता है। अब उसका तन मन निर्मल हो जाता है उसकी वाणी निर्मल हो जाती है और वह सत्य में लीन बना रहता है। वह नाम में ही लीन बना रहकर वैराग्यवान बना रहता है और उसने सत्य को हृदय में धारण किया होता है। हे नानक, प्रभु-नाम अर्थात उसके गुणों को जाने और धारण किये बिना कभी भी योग नहीं हो सकता ; इस तथ्य को तुम हृदय में अच्छी तरह विचार कर देख लो।। ६८ ।।

गुरमुखि साचु सबदु बीचारै कोइ ॥ गुरमुखि सचु बाणी परगटु होइ ॥ गुरमुखि मनु भीजै विरला बूझै कोइ ॥ गुरमुखि निज घरि वासा होइ ॥ गुरमुखि जोगी जुगति पछाणै ॥ गुरमुखि नानक एको जाणै ॥६९॥

कोई बिरला ही गुरमुख बनकर सत्य शब्द का चिंतन करता है। गुरमुख के लिये ही सच्ची वाणी प्रकट होती है। गुरमुख का ही मन उसमें भीगता है और कोई बिरला ही उस रहस्य को समझता है। गुरमुख का ही वास्तव में अपने मूल घर अर्थात् स्वरूप में निवास होता है। गुरमुख व्यक्ति ही योगी बनकर योग की वास्तविक विधि को जान लेता है और हे नानक, गुरमुख तो केवल उस एक प्रभु को ही जानता मानता है।। ६९ ।।

बिनु सतिगुर सेवे जोगु न होई ॥ बिनु सतिगुर भेटे मुकति न कोई ॥ बिनु सतिगुर भेटे नामु पाइआ न जाइ ॥ बिनु सतिगुर भेटे महा दुखु पाइ ॥ बिनु सतिगुर भेटे महा गरबि गुबारि ॥ नानक बिनु गुर मुआ जनमु हारि ॥७०॥

सच्चे गुरु (प्रभु) के सुमिरन के बिना योग नहीं होता और सच्चे गुरु से भेंट किये बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती। सच्चे गुरु के मिलाप के बिना प्रभु नाम भी नहीं पाया जा सकता और सच्चे गुरु से मिले बिना महा दुख मिलता ही रहता है। सच्चे गुरु के मिलाप से विहीन व्यक्ति के लिये अहंकार का घोर अंधकार ही बना रहता है और हे नानक, उस गुरु के बिना व्यक्ति अपने जीवन को हारकर मर खप जाता है।। ७० ।।

गुरमुखि मनु जीता हउमै मारि ॥ गुरमुखि साचु रखिआ उर धारि ॥ गुरमुखि जगु जीता जमकालु मारि बिदारि ॥ गुरमुखि दरगह न आवै हारि॥ गुरमुखि मेलि मिलाए सुो जाणै ॥ नानक गुरमुखि सबदि पछाणै ॥७१॥

अहंकार को मारकर गुरमुख अपने मन को जीत लेता है और गुरमुख ने सदैव

सत्य को ही अपने हृदय में धारण किया होता है। यम को मारकर अर्थात् मौत का भय समाप्त करके गुरमुख ने इस संसार को जीत लिया होता है और गुरमुख प्रभु के दरबार में कभी हारकर नहीं लौटता। गुरमुख व्यक्ति का संयोग बनाकर वह उसका मेल मिलाता है और इसकी विधि को वह खुद ही जानता है। हे नानक, गुरमुख ही शब्द के माध्यम से अपने को और उस प्रभु को पहचानता है।। ७१ ।।

सबदै का निबेड़ा सुणि तू अउधू बिनु नावै जोगु न होई ॥ नामे राते अनदिनु माते नामै ते सुखु होई ॥ नामै ही ते सभु परगटु होवै नामे सोझी पाई ॥ बिनु नावै भेख करहि बहुतेरे सचै आपि खुआई ॥ सतिगुर ते नामु पाईऐ अउधू जोग जुगति ता होई ॥ करि बीचारु मनि देखहु नानक बिनु नावै मुकति न होई ॥७२॥

हे अवधूत योगी, तू इस सारी गोष्ठी के सार तत्व को सुन ले कि प्रभु नाम के बिना योग सम्पन्न नहीं होता। जो नाम में रंगे हुए सदैव उसी में मस्त बने रहते है उनको प्रभु नाम के माध्यम से ही सुख प्राप्त होता है। प्रभु-नाम से ही सब कुछ प्रकट होता है और प्रभु नाम से ही सूझ बुद्धि प्राप्त होती है। प्रभु-नाम से विहीन अनेकों लोग अनेकों प्रकार के स्वांग बनाए रहते हैं और वह सच्चा प्रभु स्वयं ही उन्हें भटकाता रहता है। हे योगी, सच्चे गुरु से ही नाम प्राप्त किया जाता है और योग की युक्ति समझ आती है। हे नानक, सभी लोग मन में विचार कर देख लो कि प्रभु-नाम के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती।। ७२ ।।

तेरी गति मिति तूहै जाणहि किआ को आखि वखाणै ॥ तू आपे गुपता आपे परगटु आपे सभि रंग माणै ॥ साधिक सिध गुरू बहु चेले खोजत फिरहि फुरमाणै ॥ मागहि नामु पाइ इह भिखिआ तेरे दरसन कउ कुरबाणै ॥ अबिनासी प्रभि खेलु रचाइआ गुरमुखि सोझी होई ॥ नानक सभि जुग आपे वरतै दूजा अवरु न कोई ॥७३॥१॥

हे प्रभु, तेरी अवस्था और तेरी सीमा को तो केवल तू ही जानता है ; उसका भला कोई क्या बखान कर सकता है। तू स्वयं ही गुप्त रूप से बना रहता है, तू स्वयं ही प्रकट हो जाता है और तू स्वयं ही सभी रंगों का आनन्द लेता है। अनेकों साधक सिद्ध तथा कथित गुरु और चेले तेरे हुकुम के अन्तर्गत ही तुझे खोजते फिर रहे हैं। वे तेरे नाम को प्राप्त करने की भिक्षा माँगते है और तेरे दर्शन के लिये कुर्बान होने को तैयार बने रहते हैं। अविनाशी प्रभु ने यह सारा खेल स्वयं ही बनाया है परन्तु गुरमुख बनकर ही इसकी समझ पड़ती है। हे नानक, सभी युगों में वह प्रभु स्वयं ही कार्यशील है और उसके बिना अन्य कोई नहीं है।। ७३ ।। १ ।।

बारह माहा (तुखारी राग)।।

(गु. ग्रं. सा. पृ. ११०७-१११०)

यह कृति भी गुरु नानक देव जी की है जिसमें अपने चारों ओर फैले पर्यावरण के प्रति गुरु जी की जागरूकता का परिचय मिलता है। दशकों पहले अपने गांव के प्राकृतिक सौंदर्य को याद करते हुए उसे अध्यात्म के साथ जोड़ते हुए गुरु नानक प्राकृतिक सम्पदा का सूक्ष्म अध्ययन इस वाणी में प्रस्तुत करते हैं। वसन्त का खिला रूप, ज्येष्ठ मास की गर्मी और उठने वाले बवंडर क्रमशः गुरमुख और मनमुख की मन स्थिति को प्रकट करने वाले हैं और सावन-भादों की वर्षा में बोलने वाले पपीहा, कोयल आदि की हृदय की वेदना को प्रभु मिलाप की उत्कण्ठा के संदर्भ में देखा गया है। अन्त में यहां भी यही कहा गया है कि बारहों महीने, ऋतुएं तिथियां, दिन आदि वे ही भले हैं जिसमें स्वाभाविक रूप से प्रभु से मिलाप होता रहता है।

तुखारी छंत महला १ बारह माहा

१ ओं सतिगुर प्रसादि।।

तू सुणि किरत करंमा पुरबि कमाइआ ॥ सिरि सिरि सुख सहंमा देहि सु तू भला ॥ हरि रचना तेरी किआ गति मेरी हरि बिनु घड़ी न जीवा ॥ प्रिअ बाझु दुहेली कोइ न बेली गुरमुखि अंम्रितु पीवाँ ॥ रचना राचि रहे निरंकारी प्रभ मनि करम सुकरमा ॥ नानक पंथु निहाले सा धन तू सुणि आतम रामा ॥१॥

हे प्रभु, तू सुन, अपने पिछले किए हुए कर्मों के फलस्वरूप प्रत्येक जीव सुख अथवा दुख सहता है; जो तू देता है वही भला है। हे प्रभु, यह रचना तेरी ही है और इसमें भला मेरी क्या मजाल है; प्रभु के बिना तो मैं घड़ी भर भी जीवित नहीं रह सकता। प्रियतम के बिना मैं जीव स्त्री दुखी हूँ, मेरा कोई भी साथी नहीं है और गुरमुख बनकर ही मैं अमृत का पान करती हूँ। उस निराकार प्रभु की रचना में ही हम सब लीन हो रहे हैं परन्तु वास्तव में प्रभु को मन में बसाना ही सबसे उत्तम काम है। हे प्रभु, तू सुन, नानक का कथन है कि यह जीव स्त्री तेरा रास्ता देख रही है।। १ ।।

बाबीहा प्रिउ बोले कोकिल बाणीआ ॥ सा धन सभि रस चोलै अंकि समाणीआ ॥ हरि अंकि समाणी जा प्रभ भाणी सा सोहागणि नारे ॥ नव घर थापि महल घरु ऊचउ निज घरि वासु मुरारे ॥ सभ तेरी तू मेरा प्रीतमु निसि बासुर रंगि रावै ॥ नानक प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा कोकिल सबदि सुहावै ॥२॥

हृदय रूपी चातक प्रिय-प्रिय बोलता रहता है और जीभ रूपी कोयल वाणी का उच्चारण करती रहती है। वह जीव स्त्री इस प्रकार सभी रसों का आनन्द लेती हुई प्रभु पति की गोदी में बस जाती है। प्रभु को अच्छी लगने वाली जीव स्त्री ही उस प्रभु के अंक में लीन होती है और वही स्त्री सुहागिन कही जाती है। वही नौ द्वारों वाले शरीर को पति प्रभु का ऊँचा निवास स्थान बनाकर वहीं अपने वास्तविक स्वरूप में प्रभु का निवास देखती है। मैं सम्पूर्ण रूप से तेरी हूँ और तू मेरा प्रियतम है, इस भाव को मन में बसाते हुए वह रात दिन उसके रंग में लीन होकर उसका सुमिरन करती है। हे नानक, हृदय रूपी चातक प्रिय-प्रिय बोलता

रहता है और जीभ रूपी कोयल का शब्द भी शोभायमान बना रहता है।। २ ।।

तू सुणि हरि रस भिंने प्रीतम आपणे ॥ मनि तनि रवत रवंने घड़ी न बीसरै॥ किउ घड़ी बिसारी हउ बलिहारी हउ जीवा गुण गाए ॥ ना कोई मेरा हउ किसु केरा हरि बिनु रहणु न जाए ॥ ओट गही हरि चरण निवासे भए पवित्र सरीरा ॥ नानक द्रिसटि दीरघ सुखु पावै गुर सबदी मनु धीरा ॥३॥

तू ऐसे लोगों का हाल सुन जो अपने प्रभु प्रियतम के रस में भीगे हुए रहते हैं और जिनके मन-तन में सुमिरन के कारण प्रभु समाया हुआ है अर्थात् तू मेरा हाल सुन। मैं तुझ पर बलिहारी जाता हूँ, तुझे कैसे भुला सकता हूँ क्योंकि मैं तो तेरे गुणानुवाद के फलस्वरूप ही जीवित बना रहता हूँ। ना तो कोई मेरा है और ना ही यहाँ मैं किसी का हूँ; प्रभु के बिना मुझसे रहा नहीं जाता। मैंने तो उस प्रभु का ही आसरा पकड़ा है और उस प्रभु के चरणों का निवास हो जाने से मेरा शरीर पवित्र हो गया है। हे नानक, ऐसा जीव अब दूरदृष्टि वाला बन जाता है और शब्द-गुरु के माध्यम से उसके मन को धैर्य बना रहता है।। ३ ।।

बरसै अंम्रित धार बूंद सुहावणी ॥ साजन मिले सहजि सुभाइ हरि सिउ प्रीति बणी ॥ हरि मंदरि आवै जा प्रभ भावै धन ऊभी गुण सारी ॥ घरि घरि कंतु रवै सोहागणि हउ किउ कंति विसारी ॥ उनवि घन छाए बरसु सुभाए मनि तनि प्रेमु सुखावै ॥ नानक वरसै अंम्रित बाणी करि किरपा घरि आवै ॥४॥

सुहावनी अमृत की बूंद धारा प्रवाह बरस रही है; मेरी प्रभु से प्रीति बन गई है और वह मेरा प्रियतम मुझे स्वाभाविक रूप से ही मिल गया है। यदि प्रभु को भाता है तो वह प्रभु इस शरीर रूपी घर में आता है जहाँ जीव स्त्री खड़ी होकर अर्थात पूरी लगन के साथ उसके गुणों का सुमिरन कर रही है। हर सुहागिन के हृदय रूपी घर में वह प्रियतम रमण कर रहा है परन्तु मुझे मेरे पति ने क्यों भुला दिया है। झुके हुए बादल छाए हुए हैं, शोभायुक्त वर्षा हुई है और मन तन में प्रभु का प्रेम सुख दे रहा है। हे नानक, जब वह कृपा करके हृदय रूपी घर में आ बसता है तो उसकी अमृत वाणी की घनघोर वर्षा होती है।। ४ ।।

चेतु बसंतु भला भवर सुहावड़े ॥ बन फूले मंझ बारि मै पिरु घरि बाहुड़ै॥ पिरु घरि नही आवै धन किउ सुखु पावै बिरहि बिरोध तनु छीजै ॥ कोकिल अंबि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहीजै ॥ भवरु भवंता फूली डाली किउ जीवा मरु माए ॥ नानक चेति सहजि सुखु पावै जे हरि वरु घरि धन पाए ॥५॥

चैत्र के बसन्त ऋतु वाले समय में भँवरे सुहावने लगते हैं। यदि मेरा प्रियतम मेरे हृदय रूपी घर में लौट आए तो जैसे वन निर्जन स्थानों पर भी फल फूल उठता है उसी प्रकार मेरा हृदय भी खिल उठे। प्रियतम यदि घर नहीं आता है तो जीव स्त्री कैसे सुख पा सकती है; विरह की खींचतान में उसका शरीर टूटता जाता है। बाहर तो आम के वृक्ष पर सुन्दर कोयल बोलती है परन्तु मैं अपने अन्तर्मन के दुख को कैसे सहन करूं क्योंकि यह और भी तेज हो जाता है। फूलों से लदी हुई डालियों पर भँवरा घूम रहा है और इस सब खुशी को देखकर मैं वियोगिन कैसे जीवित बनी रहूँ। हे माँ, यह तो मेरे लिए मौत ही है। हे नानक, यदि जीव स्त्री प्रभु रूपी पति को घर पर पा जाए तो वह स्वाभाविक रूप से ही सुख प्राप्त करती रहती है।। ५ ।।

वैसाखु भला साखा वेस करे ॥ धन देखै हरि दुआरि आवहु दइआ करे ॥ घरि आउ पिआरे दुतर तारे तुधु बिनु अढु न मोलो ॥ कीमति कउण करे तुधु भावाँ देखि दिखावै ढोलो ॥ दूरि न जाना अंतरि माना हरि का महलु पछाना ॥ नानक वैसाखीं प्रभु पावै सुरति सबदि मनु माना ॥६॥

वैशाख के भले समय में पेड़ों की शाखाएं सुन्दर वेश धारण करती हैं। द्वार पर खड़ी जीव स्त्री प्रभु पति का रास्ता देखती हुई कहती है कि हे प्रभु, दया करके मेरे पास आ जाओ। हे प्यारे, तुम मेरे हृदय रूपी घर में आ जाओ, तुमने तो ना तैर सकने वालों को पार उतार दिया है; तेरे बिना तो मेरा मूल्य आधी कौड़ी के बराबर भी नहीं है। किस कीमत पर मैं तुझे अच्छी लग सकती हूँ और हे प्रियतम, मैं कैसे तुझे देखकर अपने हृदय की पीड़ा दिखा सकती हूँ। जिसने उस प्रभु को दूर नहीं जाना, अन्तर्मन में ही उसे मान लिया है उसने वास्तव में प्रभु के ठिकाने को पहचान लिया है। हे नानक, वैशाख के महीने में वही प्रभु को प्राप्त करता है जिसकी सुरति शब्द में लीन हो गई है और जिसका मन सन्तुष्ट हो गया है।। ६ ।।

माहु जेठु भला प्रीतमु किउ बिसरै ॥ थल तापहि सर भार सा धन बिनउ करै ॥ धन बिनउ करेदी गुण सारेदी गुण सारी प्रभ भावा ॥ साचै महलि रहै बैरागी आवण देहि त आवा ॥ निमाणी निताणी हरि बिनु किउ पावै सुख महली ॥ नानक जेठि जाणै तिसु जैसी करमि मिलै गुण गहिली ॥७॥

ज्येष्ठ माह में वह भला प्रियतम क्यों भूले। सारी धरती भट्ठी की तरह तप रही है और यह जीव स्त्री तेरे सामने विनती कर रही है। गुणों को याद करती हुई जीव स्त्री विनती करती है कि हे प्रभु, मैं तेरे गुणों का सुमिरन करती हूँ ताकि तुझे अच्छी लग सकूं। सत्य के महल में वह अलेप बना हुआ प्रभु निवास करता है और हे प्रभु, यदि तू मुझे आने

दे तभी मैं वहाँ आ सकती हूँ। विनम्र और बलहीन जीव स्त्री पति के महलों में सुख कैसे पा सकती है। हे नानक, ज्येष्ठ के महीने में यदि वह उस प्रभु का ही रूप होकर गुण ग्रहण करने वाली बन जाती है तो वह उसकी कृपा से प्रभु में लीन हो जाती है।। ७ ।।

आसाड़ु भला सूरजु गगनि तपै ॥ धरती दूख सहै सोखै अगनि भखै ॥ अगनि रसु सोखै मरीऐ धोखै भी सो किरतु न हारे ॥ रथु फिरै छाइआ धन ताकै टीडु लवै मंझि बारे ॥ अवगण बाधि चली दुखु आगै सुखु तिसु साचु समाले ॥ नानक जिस नो इहु मनु दीआ मरणु जीवणु प्रभ नाले ॥८॥

आषाढ़ का महीना भी भला है जिसमें सूर्य आकाश में तपता रहता है। धरती दुख सहन करती हुई उसकी आग को खाती हुई सूखती रहती है। अग्नि रूपी सूर्य जल रूपी रस को सुखा देता है और स्वयं ही जलता-जलता मरता रहता है परन्तु फिर भी अपना काम करने में हार नहीं मानता। इस सूर्य का रथ घूमता रहता है और जीव स्त्री इसकी गर्मी से बचने के लिए छाया को ढूंढती रहती है; निर्जन क्षेत्रों में टिड्डे अपनी ध्वनियाँ निकालते रहते हैं। जो जीव स्त्री यहाँ से अवगुणों की पोटली बांधकर चलती है उसे आगे जाकर दुख ही दुख मिलता है परन्तु जो सत्य को हृदय में बसाए रहती है उसे सुख प्राप्त होता है। हे नानक, जिसे सत्य को संभालने वाला मन प्रभु ने दे दिया है उसके जीवन मरण दोनों में ही प्रभु उसके साथ बना रहता है।। ८ ।।

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए ॥ मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ॥ पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए ॥ सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए ॥ हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए ॥ नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए ॥९॥

हे मेरे मन, सावन के महीने में तू रस से भर जा क्योंकि अब बादलों के बरसने का मौसम आ गया है। मुझे तन मन में मेरा पति प्रभु भाता है परन्तु मेरा प्रियतम मुझसे दूर परदेस में चला गया है। प्रियतम घर नहीं आता और मैं उसके वियोग में मरी जाती हूँ और संसार की चकाचौंध वाली बिजलियाँ चमक-चमक कर मुझे डरा रही हैं। हे माँ, मेरी सेज अकेली ही है और उस पर मैं दुखी होकर खड़ी हूँ और मेरा यह दुख मेरे लिए मौत के बराबर है। प्रभु के बिना यह नींद और भूख भला कैसे लगेगी तथा वस्त्र भी मेरे शरीर को अब सुख नहीं देते। हे नानक, अपने प्रिय की सुहागिन वही है जो प्रियतम के अंक में समाई रहती है।। ९ ।।

भादउ भरमि भुली भरि जोबनि पछुताणी ॥ जल थल नीरि भरे बरस रुते रंगु माणी ॥ बरसै निसि काली किउ सुखु बाली दादर मोर लवंते ॥ प्रिउ प्रिउ चवै बबीहा बोले भुइअंगम फिरहि डसंते ॥ मछर डंग साइर भर सुभर बिनु हरि किउ सुखु पाईऐ ॥ नानक पूछि चलउ गुर अपुने जह प्रभु तह ही जाईऐ ॥१०॥

भादों के महीने में द्वैतभाव के भ्रमों में भूली हुई यौवनपूर्ण जीव स्त्री पछताती रहती है। उसके चारों ओर प्रभु की कृपा की वर्षा का जल भरा रहता है और यह आनन्द लेने का मौसम होता है। काली रात में भी बेशक प्रभु की कृपा की वर्षा होती रहती है परन्तु मेंढक और मोरों के बोलते रहने के बावजूद भी प्रियतम से बिछुड़ी हई स्त्री को भला कैसे सुख मिल सकता है। पपीहा प्रिय प्रिय कहता रहता है और सांप भी डसते हुए इधर-उधर दौड़ते रहते हैं। तालाब पानी से पूरे भर जाते हैं और मच्छर काटते रहते हैं; उस प्रभु के बिना इन साँसारिक कष्टों से कैसे छुटकारा पाकर भला सुख प्राप्त किया जा सकता है। हे नानक, इस सब के बारे में ज्ञान देने वाले गुरु से पूछकर आगे बढ़ो और जहाँ प्रभु का निवास है उसी तरफ ही चल दो।। १० ।।

असुनि आउ पिरा सा धन झूरि मुई ॥ ता मिलीऐ प्रभ मेले दूजै भाइ खुई॥ झूठि विगुती ता पिर मुती कुकह काह सि फुले ॥ आगै घाम पिछै रुति जाडा देखि चलत मनु डोले ॥ दह दिसि साख हरी हरीआवल सहजि पकै सो मीठा ॥ नानक असुनि मिलहु पिआरे सतिगुर भए बसीठा ॥११॥

आश्विन के महीने में हे प्रियतम, तुम आ जाओ क्योंकि यह जीव स्त्री तो पश्चाताप में ही मर चुकी है। द्वैतभाव में इस रास्ता भूली हुई जीव स्त्री को यदि प्रभु ही मिला दे तो वह उससे जा मिलती है। वास्तव में जब वह झूठ में नष्ट हो गई तभी इसके प्रियतम ने इसे छोड़ दिया और अब इसके सरकंडे जैसे शरीर पर कास के सफेद फूल आ गए हैं अर्थात इसका यौवन व्यतीत हो गया और बुढ़ापा आ पहुँचा है। अब आगे इसे दुखों की गर्मी और पीछे इसे निष्क्रियता की घोर ठंडक दिखाई देती है; किसी ओर चलने में अब इसका मन घबराता है। अब यह देख पाती है कि दसों दिशाओं में शाखाएं हरी तभी होती हैं जब वे अपने मूल (प्रभु) के साथ ही धीरे-धीरे विकसित होती हैं ; अब वह यह भी जान जाती है कि जो धीरे धीरे पकता है वह मीठा होता है। नानक का कथन है कि हे प्रियतम, आश्विन मास में तो मुझे आ मिलो क्योंकि अब तो सच्चा गुरु भी मेरा बिचौलिया (वकील) बन गया है।। ११ ।।

कतकि किरतु पइआ जो प्रभ भाइआ ॥ दीपकु सहजि बलै तति जलाइआ॥

दीपक रस तेलो धन पिर मेलो धन ओमाहै सरसी ॥ अवगण मारी मरै न सीझै गुणि मारी ता मरसी ॥ नामु भगति दे निज घरि बैठे अजहु तिनाड़ी आसा ॥ नानक मिलहु कपट दर खोलहु एक घड़ी खटु मासा ॥१२॥

कार्तिक के महीने में वही फल मिला है जो उस प्रभु को अच्छा लगा है। वही दीपक स्वाभाविक रूप से जलता रहता है जिसे तत्व ज्ञान के तेल से जलाया गया हो; उस दीपक में प्रेम रूपी तेल होता है। जिस स्त्री का प्रभु पति के साथ मिलाप हो जाता है वह उत्साह पूर्वक प्रसन्न बनी रहती है। जीव स्त्री पापों की मारी हुई मरकर भी मुक्त नहीं होती। जब उसे गुणों के साथ मारा जाता है वह तभी मुक्ति प्राप्त करती हैं। हे प्रभु, जिन्हें तू अपना नाम और भक्ति देता है वे अपने वास्तविक घर में बैठे रहते हैं और सदा तुझ पर ही आस लगाए रहते हैं। नानक का कथन है कि हे प्रभु, अपने किवाड़ खोलकर हमसे आ मिलो क्योंकि वियोग की एक घड़ी भी छः महीने के बराबर हो रही है।। १२ ।।

मंघर माहु भला हरि गुण अंकि समावए ॥ गुणवंती गुण रवै मै पिरु निहचलु भावए ॥ निहचलु चतुरु सुजाणु बिधाता चंचलु जगतु सबाइआ ॥ गिआनु धिआनु गुण अंकि समाणे प्रभ भाणे ता भाइआ ॥ गीत नाद कवित कवे सुणि राम नामि दुखु भागै ॥ नानक सा धन नाह पिआरी अभ भगती पिर आगै ॥१३॥

प्रभु के गुण हृदय में समाने से अगहन का महीना भला हो जाता है। गुणवंती स्त्री उसके गुणों को याद करती है और कहती है कि काश! मुझे वह अटल प्रभु अच्छा लगता और मैं भी प्रभु को याद करती रहती। वह चतुर, सुजान, विधाता प्रभु अटल है और यह सारा संसार चलायमान है। ज्ञान ध्यान के गुणों से ही उस प्रभु के अंक में लीन हुआ जाता है और वह भी तब होता है यदि प्रभु को अच्छा लगे। प्रभु-नाम के गीत, नाद, कविताएं इत्यादि कवियों के मुँह से सुनकर दुख भाग खड़े होते हैं। हे नानक, वह जीव स्त्री प्रभु पति को प्यारी लगती है जो हृदय से उसकी भक्ति करती है और उसके सामने बनी रहती है।। १३ ।।

पोखि तुखारु पड़ै वणु त्रिणु रसु सोखै ॥ आवत की नाही मनि तनि वसहि मुखे ॥ मनि तनि रवि रहिआ जगजीवनु गुर सबदी रंगु माणी ॥ अंडज जेरज सेतज उतभुज घटि घटि जोति समाणी ॥ दरसनु देहु दइआपति दाते गति पावउ मति देहो ॥ नानक रंगि रवै रसि रसीआ हरि सिउ प्रीति सनेहो ॥१४॥

पौष के महीने में पाला पड़ता है और वन तथा वनस्पति का रस सूख जाता है।

तू जो हमारे मन तन और मुख में समाया हुआ है हे प्रभु, क्यों नहीं आता। वह संसार का जीवन प्रभु तन मन में बस जाता है और शब्द-गुरु के माध्यम से उसका आनन्द लिया जाता है। जीवन के चारों स्रोत अर्थात अण्डज, स्वेदज, उदभिज और माँ का गर्भ आदि सबमें तुम्हारी ही ज्योति भरी हुई है। हे दयालु दाता प्रभु, मुझे दर्शन दो और ऐसी मति प्रदान करो कि मैं ऊँची अवस्था प्राप्त कर सकूं। जिसे प्रभु के साथ प्रेम हो गया है हे नानक, वह उस रस में रसपूर्ण बने हुए के साथ प्रेमपूर्वक रमण करती है।। १४ ।।

माघि पुनीत भई तीरथु अंतरि जानिआ ॥ साजन सहजि मिले गुण गहि अंकि समानिआ ॥ प्रीतम गुण अंके सुणि प्रभ बंके तुधु भावा सरि नावा ॥ गंग जमुन तह बेणी संगम सात समुंद समावा ॥ पुन्न दान पूजा परमेसुर जुगि जुगि एको जाता ॥ नानक माघि महा रसु हरि जपि अठसठि तीर्थ नाता ॥१५॥

यदि अन्तर्मन में ही तीर्थ को जान लिया जाए तो माघ का महीना भी पवित्र बन जाता है। वह सज्जन प्रभु स्वाभाविक रूप से ही मिलता है और जीव गुणों को ग्रहण करके उसकी गोदी में लीन हो जाता है। हे बांके प्रभु सुन, गुणों के कारण ही तुझ प्रियतम के अंक में पहुँचा जाता है और यदि मैं तुझे भा जाऊं तो यही मेरे लिए सरोवरों में स्नान करने के तुल्य है। गंगा, यमुना, त्रिवेणी संगम और सातों समुद्रों का स्नान भी मेरे लिए यही है कि मैं तुझे भा जाऊँ। युगों-युगों में उस परमेश्वर को ही जानना पुण्य दान और परमेश्वर की पूजा के समान है। हे नानक, माघ महीने का मास और अड़सठ तीर्थों का स्नान केवल प्रभु का सुमिरन करना ही है।। १५ ।।

फलगुनि मनि रहसी प्रेमु सुभाइआ ॥ अनदिनु रहसु भइआ आपु गवाइआ॥ मन मोहु चुकाइआ जा तिसु भाइआ करि किरपा घरि आओ ॥ बहुते वेस करी पिर बाझहु महली लहा न थाओ ॥ हार डोर रस पाट पटंबर पिरि लोड़ी सीगारी ॥ नानक मेलि लई गुरि अपणै घरि वरु पाइआ नारी ॥१६॥

स्वभाव में प्रेम आ गया तो फाल्गुन के महीने में मन खिल उठता है। अपना अभिमान गँवाने से दिन रात प्रसन्नता बनी रहती है। जब उसको भा गया तो मेरे मन का मोह चुक गया; हे प्रियतम प्रभु, कृपा करके मेरे हृदय रूपी घर में आ जाओ। प्रियतम के बिना मैं अनेकों वेश कर रही हूँ परन्तु मुझे उसके महल में ठिकाना नहीं मिलता। यदि प्रियतम ने मुझे चाहा तो मैंने हार, डोरी, वस्त्र इत्यादि से शृंगार कर लिया है। हे नानक, अपने गुरु ने मुझे प्रियतम प्रभु से मिला लिया है और मुझ जीव स्त्री ने पति प्रभु को हृदय में ही पा लिया है।। १६ ।।

बे दस माह रुती थिती वार भले ॥ घड़ी मूरत पल साचे आए सहजि मिले॥ प्रभ मिले पिआरे कारज सारे करता सभ बिधि जाणै ॥ जिनि सीगारी तिसहि पिआरी मेलु भइआ रंगु माणै ॥ घरि सेज सुहावी जा पिरि रावी गुरमुखि मसतकि भागो ॥ नानक अहिनिसि रावै प्रीतमु हरि वरु थिरु सोहागो ॥१७॥१॥

दो और दस अर्थात बारहों महीने, ऋतुएं, तिथियां और वार सब भले हैं; घड़ियाँ, मुहूर्त और पल आदि भी सभी सच्चे हैं यदि स्वाभाविक रूप से ही प्रभु आ मिले। जब प्रभु मिलता है तो सभी काम सँवर जाते है; वह कर्ता परमात्मा सभी विधियों को जानने वाला है। जिसने यह शृंगार बनाया है जीव स्त्री उसी की प्यारी बन जाती है और उससे मिलाप करके आनन्दित बनी रहती है। यदि प्रियतम प्रभु ने रमण कर लिया तो हृदय रूपी सेज भी सुहावनी बन गई; गुरमुख बने हुए जीव के माथे पर भाग्य चमक उठा। हे नानक, वह प्रियतम दिन रात जीव स्त्री के साथ रमण करता रहता है अर्थात उससे मिला रहता है और प्रभु रूपी पति होने से जीव स्त्री का सुहाग स्थिर बना रहता है।। १७ ।।

१ ओं सतिगुर प्रसादि

सलोक महला ६ ।।

गुन गोबिंद गाइओ नही जनमु अकारथ कीनु ॥
कहु नानक हरि भजु मना जिह बिधि जल कउ मीनु ॥१॥
बिखिअन सिउ काहे रचिओ निमख न होहि उदासु ॥
कहु नानक भजु हरि मना परै न जम की फास ॥२॥
तरनापो इउ ही गइओ लीओ जरा तनु जीति ॥
कहु नानक भजु हरि मना अउध जातु है बीति ॥ ३॥
बिरधि भइओ सूझै नही कालु पहूचिओ आनि ॥
कहु नानक नर बावरे किउ न भजै भगवानु ॥४॥
धनु दारा सम्पति सगल जिनि अपुनी करि मानि ॥
इन मै कछु संगी नही नानक साची जानि ॥५॥
पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ के नाथ ॥
कहु नानक तिह जानीऐ सदा बसतु तुम साथि ॥६॥

श्लोक महला ६।। तूने प्रभु का गुणानुवाद नहीं किया और अपने जीवन को निरर्थक बना दिया है। हे नानक, अपने मन से कह कि वह प्रभु का सुमिरन उसी प्रकार करता रहे जैसे मछली जल को सदैव याद रखे रहती है ।। १ ।। विषयों में तू क्यों लीन बना हुआ है और एक क्षण भर के लिए भी उनसे परे नहीं होता। हे नानक, अपने मन से कह कि वह प्रभु का भजन करे जिससे यम का फंदा गले में नहीं पड़ता ।। २ ।। जवानी तो ऐसे ही चली गई और अब हे जीव, बुढ़ापे ने तेरे तन को जीत लिया है। हे नानक, अपने मन से कह कि वह प्रभु का सुमिरन करे क्योंकि आयु तो बीतती जा रही है ।। ३ ।। तुझे पता नहीं लग रहा कि तू वृद्ध हो चुका है और काल तेरे पास ही आ पहुंचा है। हे नानक, तू बावले जीव से कह कि अभी भी तू भगवान का भजन क्यों नहीं करता ।। ४ ।। धन, स्त्री, सम्पत्ति आदि सब को जिन्होंने अपना करके माना हुआ है, हे नानक, वे इस बात को सत्य समझ लें कि इनमें से कुछ भी साथी बनने वाला नहीं है ।। ५ ।।

अनाथों का नाथ प्रभु पतितों का उद्धार करने वाला और भय को दूर करने वाला है। हे नानक, तू कह दे कि केवल उसी प्रभु को ही इस प्रकार जानो कि वह सदैव तुम्हारे साथ बस रहा है ।। ६ ।।

तनु धनु जिह तो कउ दीओ ताँ सिउ नेहु न कीन ॥
कहु नानक नर बावरे अब किउ डोलत दीन ॥७॥
तनु धनु सम्पै सुख दीओ अरु जिह नीके धाम ॥
कहु नानक सुनु रे मना सिमरत काहि न रामु ॥८॥
सभ सुख दाता रामु है दूसर नाहिन कोइ ॥
कहु नानक सुनि रे मना तिह सिमरत गति होइ ॥९॥
जिह सिमरत गति पाईऐ तिह भजु रे तै मीत ॥
कहु नानक सुनु रे मना अउध घटत है नीत ॥१०॥
पाँच तत को तनु रचिओ जानहु चतुर सुजान ॥
जिह ते उपजिओ नानका लीन ताहि मै मानु ॥११॥
घट घट मै हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि ॥
कहु नानक तिह भजु मना भउ निधि उतरहि पारि ॥१२॥

तुझे जिसने तन और धन प्रदान किया है तूने उससे अपना प्रेम नहीं लगाया। हे नानक, तू कह दे कि हे बावले व्यक्ति अब तू धन-हीन और दीन होने पर क्यों घबरा रहा है ।। ७ ।। तन, धन, सम्पत्ति और जिसने सुन्दर घर तथा अनेकों सुख दिए हैं, हे नानक, तू कह दे कि हे मेरे मन, नू उस राम के नाम का सुमिरन क्यों नहीं करता है ।। ८ ।। सभी सुखों को देने वाला परमात्मा के अलावा अन्य कोई नहीं है। हे नानक, अपने मन को सुना कर कह दे कि केवल उस प्रभु के सुमिरन से ही मुक्ति प्राप्त होगी ।। ९ ।। जिसके सुमिरन से मुक्ति प्राप्त होती है हे मेरे मित्र, तू उसी का सुमिरन कर। हे नानक, तू अपने मन को सुना कर कह दे कि यह आयु निरन्तर घटती जा रही है ।। १० ।। हे चतुर और सुजान लोगो, इस बात को जान लो कि पाँच तत्वों वाला यह तन उस प्रभु ने ही बनाया है। हे नानक, यह जिससे उत्पन्न हुआ है इस तथ्य को मान लो कि यह उसी में ही लीन होगा ।। ११ ।। सन्तजनों ने यह पुकार-पुकार कर कहा है कि प्रत्येक शरीर में वह प्रभु बसता है। हे नानक, तू अपने मन से कह दे कि उस प्रभु का सुमिरन कर जिससे तू संसार सागर से पार उतर जाएगा ।। १२ ।।

सुखु दुखु जिह परसै नही लोभु मोहु अभिमानु ॥
कहु नानक सुनु रे मना सो मूरति भगवान ॥१३॥
उसतति निंदिआ नाहि जिहि कंचन लोह समानि ॥

कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि ॥१४॥
हरखु सोगु जा कै नही बैरी मीत समानि ॥
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि ॥१५॥
भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आन ॥
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखानि ॥१६॥
जिहि बिखिआ सगली तजी लीओ भेख बैराग ॥
कहु नानक सुनु रे मना तिह नर माथै भागु ॥१७॥
जिहि माइआ ममता तजी सभ ते भइओ उदासु ॥
कहु नानक सुनु रे मना तिह घटि ब्रहम निवासु ॥१८॥

जिसे सुख, दुख, लोभ, मोह और अभिमान स्पर्श भी नहीं कर पाते हे नानक, मन को सुना दे कि ऐसा व्यक्ति ही प्रभु का प्रतिरूप है ।। १३ ।। प्रशंसा, निन्दा जिसे प्रभावित नहीं करती और जिसके लिए लोहा तथा सोना एक समान हैं, हे नानक, मन को सुना कर कह दे कि ऐसे व्यक्ति को मुक्त हो चुका मानना चाहिए ।। १४ ।। हर्ष और शोक जिसे नहीं होता और शत्रु तथा मित्र जिसे समान नज़र आते हैं हे नानक, मन को सुना कर कह दे कि ऐसा व्यक्ति ही मुक्त हो चुका जाना जाता है ।। १५ ।। जो व्यक्ति किसी को भय नहीं देता और ना ही किसी का भय मानता है हे नानक, मन को सुनाते हुए कह दे कि उसे ही ज्ञानवान कहा कर ।। १६ ।। जिसने समस्त प्रकार के विकारों के विष को त्याग दिया है और इन सबके प्रति वैराग्यवान त्यागी बन गया है हे नानक, मन को सुनाकर कह दे कि ऐसे व्यक्ति के माथे पर ऐसे ही भाग्य लेख प्रभु की ओर से लिखे हुए हैं ।। १७ ।। जिसने माया और मैं-मेरी की भावना को त्याग दिया है तथा सब विकारों के प्रति उदासीन हो गया है हे नानक, मन को सुनाकर कह दे कि ऐसे व्यक्ति के हृदय में ही ब्रह्म का निवास होता है ।। १८ ।।

जिहि प्रानी हउमै तजी करता रामु पछानि ॥
कहु नानक वहु मुकति नरु इह मन साची मानु ॥१९॥
भै नासन दुरमति हरन कलि मै हरि को नामु ॥
निसि दिनु जो नानक भजै सफल होहि तिह काम ॥२०॥
जिहबा गुन गोबिंद भजहु करन सुनहु हरि नामु ॥
कहु नानक सुनि रे मना परहि न जम कै धाम ॥२१॥
जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहंकार ॥
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार ॥२२॥
जिउ सुपना अरु पेखना ऐसे जग कउ जानि ॥

इन मै कछु साचो नही नानक बिनु भगवान ॥२३॥
निसि दिनु माइआ कारने प्रानी डोलत नीत ॥
कोटन मै नानक कोऊ नाराइनु जिह चीति ॥२४॥

जिस व्यक्ति ने अहंकार को त्यागकर उस कर्ता प्रभु को पहचान लिया है हे नानक, तू मन को बता दे कि वह इस तथ्य को सत्य मान ले कि ऐसा व्यक्ति ही मुक्त व्यक्ति होता है ।। १६ ।। इस कलयुग में प्रभु का नाम ही भय का नाश करने वाला और दुर्मति को दूर करने वाला है। हे नानक, जो रात दिन उसका सुमिरन करता है उसके सभी कार्य सफल हो जाते हैं ।। २० ।। जीभ से प्रभु के गुणों का सुमिरन करते रहो और कानों से हरि नाम को सुनते रहो। हे नानक, मन को सुनाकर कह दे कि ऐसा करने से तुझे यम के निवास अर्थात नरकों में नहीं जाना पड़ेगा ।। २१ ।। जो प्राणी मैं-मेरी की भावना को तथा लोभ-मोह और अहंकार को त्याग देता है, हे नानक, तू बता दे कि वह स्वयं तो पार उतर ही जाता है अन्य कईयों का भी उद्धार कर देता है ।। २२ ।। जैसे सपने और प्रत्यक्ष देखने में अन्तर होता है हे जीव, तू इस संसार को ऐसा ही समझ। हे नानक, इसमें प्रभु के बिना कुछ भी सच्चा नहीं है ।। २३ ।। प्राणी दिन रात धन-सम्पदा के लिए सदैव भटकता रहता है और उसकी नीयत सदैव डोलती रहती है। हे नानक, करोड़ों में कोई बिरला ही होगा जिसके हृदय में प्रभु का निवास बना रहता है ।। २४ ।।

जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत ॥
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुनि मीत ॥२५॥
प्रानी कछू न चेतई मदि माइआ कै अंधु ॥
कहु नानक बिनु हरि भजन परत ताहि जम फंध ॥२६॥
जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह ॥
कहु नानक सुनि रे मना दुरलभ मानुख देह ॥२७॥
माइआ कारनि धावही मूरख लोग अजान ॥
कहु नानक बिनु हरि भजन बिरथा जनमु सिरान ॥२८॥
जो प्रानी निसि दिनु भजै रूप राम तिह जानु ॥
हरि जन हरि अंतरु नही नानक साची मानु ॥२९॥
मनु माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु ॥
कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम ॥३०॥

जिस प्रकार जल पर बुलबुला सदैव बनता और नष्ट होता रहता है, हे नानक, तू कह दे कि हे मेरे मित्रो, इस बात को सुन लो कि यह संसार की रचना भी उस बुलबुले के समान ही है ।। २५ ।। अभिमान और धन-सम्पत्ति में अन्धा होकर यह प्राणी कभी

भी परमात्मा के प्रति सावधान नहीं बनता। हे नानक, तू कह दे कि प्रभु के भजन के बिना ऐसे व्यक्तियों के गले में यम का फन्दा पड़ा ही रहता है ।। २६ ।। यदि तू चिरन्तन सुख को चाहता है तो परमात्मा की शरण को पकड़ ले। हे नानक, तू मन को सुना कर कह दे कि यह मनुष्य शरीर बहुत ही दुर्लभ पदार्थ है ।। २७ ।। मूर्ख और अन्जान लोग धन सम्पदा के लिए भाग दौड़ लगाए रहते हैं। हे नानक, तू कह दे कि प्रभु के भजन के बिना सारा जीवन व्यर्थ ही व्यतीत होता जाता है ।। २८ ।। जो व्यक्ति रात-दिन उस प्रभु का सुमिरन करता है उसे प्रभु का रूप ही जाना जाता है। हे नानक, इस तथ्य को तू सत्य समझ ले कि प्रभु के सेवक और प्रभु में कोई अन्तर नहीं होता ।। २६ ।। यदि व्यक्ति का मन माया में फँसा है और प्रभु का नाम उसे भूला हुआ है तो हे नानक, तू कह दे कि प्रभु-सुमिरन से विहीन यह जीवन किस काम का है ।। ३० ।।

प्रानी रामु न चेतई मदि माइआ कै अंधु ॥
कहु नानक हरि भजन बिनु परत ताहि जम फंध ॥३१॥
सुख मै बहु संगी भए दुख मै संगि न कोइ ॥
कहु नानक हरि भजु मना अंति सहाई होइ ॥३२॥
जनम जनम भरमत फिरिओ मिटिओ न जम को त्रासु ॥
कहु नानक हरि भजु मना निरभै पावहि बासु ॥३३॥
जतन बहुतु मै करि रहिओ मिटिओ न मन को मानु ॥
दुरमति सिउ नानक फधिओ राखि लेहु भगवान ॥३४॥
बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि ॥
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सभ ही मानु ॥३५॥
करणो हुतो सु ना कीओ परिओ लोभ कै फंध ॥
नानक समिओ रमि गइओ अब किउ रोवत अंध ॥३६॥

यह प्राणी माया के अहंकार में अन्धा होकर उस प्रभु का सुमिरन नहीं करता है। हे नानक, तू बता दे कि प्रभु के सुमिरन के बिना ऐसे व्यक्ति पर यम का फन्दा जरूर ही कसता जाएगा ।। ३१ ।। सुख में तो बहुत से साथी बन जाते हैं परन्तु दुखों में कोई संगी साथी नहीं रहता, हे नानक, मन से कह दे कि तू प्रभु का सुमिरन कर क्योंकि यही अन्त में सहायता करने वाला है ।। ३२ ।। जन्मों-जन्मों में मैं भटकता रहा हूँ परन्तु यम का भय मुझमें से मिट नहीं सका। हे नानक, तू मन को कह दे कि प्रभु का ही सुमिरन कर जिससे तू अभय पद में निवास कर सकेगा ।। ३३ ।। मैंने अनेकों प्रयत्न किए परन्तु मेरे मन का अभिमान मिट नहीं सका। हे नानक, यह जीव दुर्मति में ही फँसा हुआ है; हे प्रभु, इसकी रक्षा कर लो ।। ३४ ।। बचपन, जवानी और बुढ़ापा, ये तीन अवस्थाएँ

जीवन की मानी जाती हैं परन्तु हे नानक, तू कह दे कि प्रभु के सुमिरन के बिना ये सभी व्यर्थ ही मानी जाती हैं ।। ३५ ।। जो तूने करना था वह तो तूने किया ही नहीं और तू लोभ के फन्दे में पड़ा रहा है। हे नानक, अब तो समय आगे निकल गया और अब तू अज्ञानी बना क्यों रो रहा है ।। ३६ ।।

मनु माइआ मै रमि रहिओ निकसत नाहिन मीत ॥
नानक मूरति चित्र जिउ छाडित नाहिन भीति ॥३७॥
नर चाहत कछु अउर अउरै की अउरै भई ॥
चितवत रहिओ ठगउर नानक फासी गलि परी ॥३८॥
जतन बहुत सुख के कीए दुख को कीओ न कोइ ॥
कहु नानक सुनि रे मना हरि भावै सो होइ ॥३९॥
जगतु भिखारी फिरतु है सभ को दाता रामु ॥
कहु नानक मन सिमरु तिह पूरन होवहि काम ॥४०॥
झूठै मानु कहा करै जगु सुपने जिउ जानु ॥
इन मै कछु तेरो नही नानक कहिओ ब खानि ॥ ४१॥
गरबु करतु है देह को बिनसै छिन मै मीत ॥
जिहि प्रानी हरि जसु कहिओ नानक तिहि जगु जीति ॥४२॥

हे मित्र, मेरा मन माया में लीन बना हुआ है और उसमें से निकलता ही नहीं। हे नानक, यह वैसा ही है कि जैसे दीवार पर बनाई हुई मूर्ति दीवार को छोड़ती ही नहीं है ।। ३७ ।। व्यक्ति चाहता तो कुछ और है तथा हो कुछ और ही जाता है। हे नानक, वह ठगा हुआ देखता ही रह जाता है और उसके गले में मौत का फन्दा आ पड़ता है ।। ३८।। सुख की कोशिशें तो बहुत की गई परन्तु दुखों के लिए तो कोई भी प्रयत्न नहीं करता अर्थात दुखों को रोकने का प्रयत्न कोई नहीं करता। हे नानक, तू मन को सुनाकर कह दे कि जो प्रभु को अच्छा लगता है वास्तव में वही होता है ।। ३९ ।। सारा संसार भिखारियों की तरह भटक रहा है, परन्तु सबका दाता वह एक परमात्मा ही है। हे नानक, तू मन से कह दे कि केवल उस प्रभु का ही सुमिरन करे जिससे तेरी सभी कामनाएँ पूरी होंगी ।। ४० ।। झूठा ही अभिमान क्यों कर रहा है क्योंकि यह संसार तो सपने की तरह जाना जाता है। नानक ने तो विस्तारपूर्वक यह बता दिया है कि सांसारिक पदार्थों में से तेरा तो कुछ भी नहीं है ।। ४१ ।। तू इस शरीर का अभिमान करता है परन्तु हे मेरे मित्र, यह क्षण भर में विनष्ट हो जाएगा। हे नानक जिस प्राणी ने भी प्रभु का गुणानुवाद किया है वास्तव में उसी ने सारे संसार को जीत लिया है ।। ४२ ।।

जिह घटि सिमरनु राम को सो नरु मुकता जानु ॥

तिहि नर हरि अंतरु नही नानक साची मानु ॥४३॥
एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मनि ॥
जैसे सूकर सुआन नानक मानो ताहि तनु ॥४४॥
सुआमी को गृहु जिउ सदा सुआन तजत नही नित ॥
नानक इह बिधि हरि भजउ इक मनि हुइ इक चिति ॥४५॥
तीर्थ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ॥
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ॥४६॥
सिरु कंपिओ पग डगमगे नैन जोति ते हीन ॥
कहु नानक इह बिधि भई तऊ न हरि रसि लीन ॥४७॥
निज करि देखिओ जगतु मै को काहू को नाहि ॥
नानक थिरु हरि भगति है तिह राखो मन माहि ॥४८॥

जिसके हृदय में प्रभु-नाम का सुमिरन है उस व्यक्ति को ही मुक्त मानना चाहिए। हे नानक, इस बात को सत्य मानो कि ऐसे व्यक्ति और प्रभु में कोई अन्तर नहीं होता ।। ४३ ।। जिस प्राणी के मन में केवल एक परमात्मा की भक्ति नहीं है, हे नानक, उसके शरीर को तो सूअर और कुत्ते का शरीर ही समझना चाहिए ।। ४४ ।। कुत्ता जिस प्रकार अपने मालिक का घर कभी नहीं छोड़ता, हे नानक, उसी प्रकार एकाग्र मन और चित्त के साथ उस प्रभु का सुमिरन करते रहो ।। ४५ ।। तीर्थ, व्रत और दान आदि करके जो मन में अभिमान बनाए रहता है, हे नानक, उसके ये सभी कर्म उसी प्रकार निष्फल हो जाते हैं जैसे हाथी को नहलाना व्यर्थ साबित होता है ।। ४६ ।। सिर कांपने लगा है, पाँव डगमगाने लगे हैं और आँखों की रोशनी समाप्त हो गई है। हे नानक, तू बता दे कि व्यक्ति की यह स्थिति हो गई है परन्तु फिर भी वह प्रभु के रस में लीन नहीं होता ।। ४७ ।। मैंने सारे संसार को अपना समझा हुआ था परन्तु यहां तो कोई भी किसी का नहीं है। हे नानक, यहां केवल एक प्रभु की भक्ति ही स्थिर बनी रहने वाली है इसलिए केवल उसे ही मन में बसाए रखो ।। ४८ ।।

जग रचना सभ झूठ है जानि लेहु रे मीत ॥
कहि नानक थिरु ना रहै जिउ बालू की भीति ॥४९॥
रामु गइओ रावनु गइओ जा कउ बहु परवारु ॥
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ संसारु ॥५०॥
चिंता ता की कीजीऐ जो अनहोनी होइ ॥
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नही कोइ ॥५१॥
जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु कै कालि ॥
नानक हरि गुन गाइ ले छाडि सगल जंजाल ॥५२॥

दोहरा ॥
बलु छुटकिओ बंधन परे कछू न होत उपाइ ॥
कहु नानक अब ओट हरि गज जिउ होहु सहाइ ॥५३॥
बलु होआ बंधन छुटे सभु किछु होत उपाइ ॥
नानक सभु किछु तुमरै हाथ मै तुम ही होत सहाइ ॥५४॥

हे मित्रो, इस बात को जान लो कि संसार की यह रचना सदैव बनी रहने वाली नहीं है। नानक का कथन है कि यह उसी प्रकार स्थिर नहीं रहती जैसे रेत की दीवार स्थिर नहीं रह सकती ।। ४६ ।। राम और रावण जिनका बहुत बड़ा परिवार था उन्हें भी यहां से जाना पड़ा है। हे नानक, तू कह दे कि यहां कुछ भी स्थिर नहीं है और यह संसार सपने की तरह है ।। ५० ।। चिन्ता तो उसकी की जाए यदि कोई अनहोनी बात घटने वाली हो। हे नानक, संसार के इस मार्ग पर तो कुछ भी स्थिर नहीं है ।। ५१ ।। जो पैदा हुआ है वह आज अथवा कल विनष्ट हो जाएगा। हे नानक, तू सारे जंजालों को छोड़कर प्रभु का गुणानुवाद कर ले ।। ५२ ।। दोहा ।। सांसारिक बन्धनों में पड़े हुए व्यक्ति का बल अन्ततः समाप्त हो जाता है और फिर उसके पास कोई उपाय नहीं बचता। हे नानक, तू कह कि हे प्रभु अब तेरा ही आसरा है और जैसे हाथी को घड़ियाल से बचाने के लिए तूने उसकी सहायता की थी वैसे ही मेरी भी सहायता कर ।। ५३ ।। हे भाई, जब व्यक्ति के अन्दर अध्यात्मिक बल पैदा होता है तो सभी उपाय कारगर हो जाते हैं। हे नानक, तू प्रभु से कह कि सब कुछ तुम्हारे ही हाथ में है और वास्तविक सहायता तुम ही करते हो ।। ५४ ।।

संग सखा सभि तजि गए कोऊ न निबहिओ साथि ॥
कहु नानक इह बिपति मै टेक एक रघुनाथ ॥५५॥
नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुरु गोबिंदु ॥
कहु नानक इह जगत मै किन जपिओ गुर मंतु ॥५६॥
राम नामु उर मै गहिओ जा कै सम नही कोइ ॥
जिह सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारो होइ ॥५७॥१॥

अंतिम समय में सभी मित्र छोड़ जाते हैं और कोई भी साथ नहीं निभाता। हे नानक, तू बता दे कि ऐससी विपत्ति में केवल एक प्रभु का ही आसरा और सहारा होता है ।। ५५ ।। केवल प्रभु का नाम, साधू स्वभाव और गुरु के रूप में परमात्मा ही साथ बना रहता है। हे नानक, तू बता दे कि इस संसार में भला किस-किस ने गुरु के उपदेश का सुमिरन (और उसके अनुरूप आचरण) किया है ।। ५६ ।। हे प्रभु, जिस व्यक्ति ने भी तेरा वह नाम अपने हृदय में बसाया है जिसके बराबर अन्य कोई नहीं है; उसी के सुमिरन से उसके संकट दूर हो जाते हैं और उसे तुम्हारा दर्शन प्राप्त हो जाता है ।। ५७ ।। १ ।।

* * * *